मृणाल

श्री सत्य प्रसाद पाण्डेय

नव साहित्य प्रकाशन दिल्ली-६

परम श्रद्धेय

श्री अम्बा दत्त जी पाण्डेय

आई० ए० एस०

को

सादर समर्पित

१

जब सुबह हुई तो आकाश साफ था । सूर्य की सुनहली किरण खिड़कियों से झांक कर बिस्तरे पर लेटे हुए माणक की पीठ पर पड़ रही थी । प्रगाढ़ निन्द्रा में सोया हुआ शायद वह बाहर किसी झंझावात के स्वप्न देख रहा था । पर जब उसने करवट बदली तो सूर्य का प्रकाश उसके मुख पर पड़ा और उसकी निन्द्रा टूटी । बाहर कोई तूफान न था, न आकाश में बिजलियां चमक रही थीं, अपितु सोने की चादर के समान प्रातः की धूप चारों ओर फैली हुई थी । माणक हड़बड़ा कर उठा और एक लम्बी जम्हाई लेकर चौके की ओर लपका । स्टोव जला कर उसने चाय का पानी रखा और फिर आराम से एक ओर बैठ कर कल की तूफानी रात की याद ताजा करने लग गया । कितना पानी बरसा था कल, मानो प्रकृति बगावत करने पर उतारु हो गई थी । आसमान में चंचला दान्त कीट कर चाबुकें मार रही प्रतीत होती थी । मेघों का गर्जन-तर्जन और एक भीषण आंधी प्रलय को साक्षातकार कर रहे थे । ऐसी भयावनी तामसी रात में उसका मालिक कल एक सुन्दर तरुणी को साथ लिए घर आया था । माणक के सामने मालिक की और उस सुन्दर गुलाब से लाल कपोलों वाली युवती की मुख मुदा उभर आई ।

मालिक की नासिका से गर्म सांसें आरही थीं और आंखों में तेज व्याप्त था मानो किसी महानाग से युद्धोपरान्त विजयी बन कर उसकी नाग-मणी हर लाये हों। और वह युवती ? वह घबराई हुई हिरणी की तरह चंचल नजर आ रही थी। उसके बड़े बड़े नेत्रों में आश्चर्य तैर रहा था मानो पूछना चाहती थी कि प्रकृति के उस भीषण प्रकोप का क्या अर्थ था। वह स्वयं भी ऐसी डरावनी रात में मालिक को उस परी के साथ घर के अन्दर प्रवेश करते देख कर कुछ अचम्भित सा हो गया था। मालिक ने उसे इतना समय नहीं दिया था कि वह कुछ पूछ कर अपनी जिज्ञासा शान्त कर ले। उसे तुरन्त चाय और उसके साथ हल्का सा भोजन बनाने का आदेश देकर मालिक उस युवती को लेकर दूसरे कमरे में चले गये थे। घन्टे आधे घन्टे के बाद पुनः जब चाय आदि ले कर उस कमरे में गया तो दोनों अपने भीगे हुए कपड़ों को बदल कर आराम से पलंग के समीप लगी हुई कुर्सियों पर बैठे हुए बातें कर रहे थे। उसने उनके सामने मेज लगाई और चाय आदि का सामान रख दिया। फिर प्यालियों में चाय बना कर एक प्याली उसने मालिक की ओर बढ़ाई और एक उस युवती की ओर जो बड़े गौर से उसे ही देख रही थी। माणक की गर्दन झुकी हुई थी जिस में सेवक का समस्त विनीत भाव पुंजीभूत था। फिर भी पल भर के लिए उसने अपनी जिज्ञासु दृष्टि उस युवती पर डाल ही दी थी। उसके विनीत भावों को देख कर शायद वह युवती प्रसन्न दिखाई देती थी। क्योंकि चाय की प्याली होंटों पर लगाते हुए वह उसके विषय में मालिक से पूछ ही तो बैठी थी। मालिक का संक्षिप्त उत्तर भी उसने सुना था। मालिक ने बताया था कि वह उनका बहुत पुराना नौकर है जिसे भोजन आदि की व्यवस्था करने के लिये उसकी मां ने गांव से उनके साथ भेजा था। चाय आदि समाप्त करने के बाद वह फिर चौके वाले कमरे में आ गया था और वह कमरा जिसमें मालिक और वह युवती बैठे थे, अन्दर से बन्द हो गया था।

बाहर वर्षा की झड़ी लग रही थी और इसी प्रकार जब १२ का घन्टा बजने पर माणक अपने काम से निवृत हो बत्ती बुझा कर अपने बिस्तरे पर लेट गया तो उसके मन में भी सैकड़ों प्रश्नों की बौछार होने लग गई। उसके मालिक तो बड़े ही सद्चरित्र युवक थे फिर क्यों कर ऐसे रहस्यमय ढंग से इतनी रात बीते वह सैलाबी दरया सी जवान स्त्री को घर ला कर एकान्त में उसके साथ सहवास कर रहे थे। न मालूम कितनी देर तक उसके मन में एक के बाद एक शंकायें उठती गई और वह अपनी धारणा के अनुसार उनका समाधान करता हुआ आखिर थक कर सो गया। प्रातः शायद इसी लिये देर तक उसकी आंखें लगी रही। केतली पर चाय का पानी खौलने लगा तो माणक का ध्यान कल रात की घटना से हट कर फिर अपने कर्तव्य की ओर चला गया और वह जल्दी से चाय तैयार कर ट्रे सहित उस कमरे में प्रविष्ट हुआ जहाँ उसके मालिक सो रहे थे। उसने कमरे में पैर रखा ही था कि वह अकसमात ठिठक गया और तुरन्त द्वार बन्द करता हुए घबरा कर बाहर आ गया। कमरे में एक ही पलंग पर मालिक उस युवती के साथ सोये हुए थे। कुछ देर तो उसकी समझ में कुछ नहीं आया कि आखिर यह कौन सी लीला चल रही थी। पर वह सेवक था; समझता थां कि इन बातों पर काम काज के समय चिन्तन करना उसकी कर्तव्य-परिधि के बाहर था। उसने आहिस्ता से चाय की ट्रे नीचे फर्श पर रखी और फिर धीरे से द्वार खटखटाया। पहले तो कुछ उत्तर न मिला पर दुबारा जब उसने दस्तक दी तो महिम की आंखें खुल गई।

'क्या है माणक ?' महिम ने अन्दर से पूछा।

'मालिक ! चाय बन गई है। अगर हुक्म हो तो ले आऊं ?' माणक कमरे के बाहर खड़ा हुआ बोला।

महिम पलंग से उठा और द्वार खोलता हुआ बोला, 'चले आते, माणक ! संकोच की क्या बात थी।' पर कहते कहते सहसा वह मुस्करा उठा और जब माणक के साथ उसकी नजरें चार हुई तो उसने देखा

कि माणक के होटों पर भी संकोच भरी मुस्कान थी। माणक ने चाय की ट्रे मेज पर रख दी तो महिम खिल खिला कर हंस पड़ा। बोला—'माणक! सोचते होगे, मैं अपने साथ किसे ले आया। है न? लेकिन आश्चर्य न करो। यह तुम्हारी मालकिन है। कितने समय से तुम मालकिन की रट लगाए हुए थे। कल हमने तुम्हारी इच्छा पूरी कर दी। अब बताओ, चाय के साथ क्या क्या मिष्ठान खिलाओगे–इसी खुशी में।' महिम हंसते हुए उत्तर की प्रतीक्षा में था पर उसने देखा कि माणक के चेहरे पर कोई खुशी नहीं थी। वह विनीत मुद्रा में उन्हीं खोखली नजरों से ताकता जा रहा था मानो उन नजरों में अभी सैकड़ों प्रश्न तैर रहे थे। महिम ने पास आकर माणक की पीठ पर हाथ फेरा और सँयत हो बोला, 'माणक! मैं खूब समझता हूँ। यह इतनी हल्की बात नहीं कि मैं हंसी २ में इसे उड़ा दूं। लेकिन जो कुछ मैंने तुम्हें बताया है, वह सच है। बस कुछ ऐसा ही होना नियति ने निश्चित कर रखा था।

'लेकिन मालिक······?'

'लेकिन वेकिन······कुछ नहीं। सब पर पर्दा डालो। जो कुछ हो गया है वही केवल सत्य है।'

महिम ने फिर पलंग पर दृष्टि डाली। उसकी पत्नी गहरी नींद सोई हुई थी। वह माणक को लेकर दूसरे कमरे में आया और बोला, 'माणक! एक बात मैं तुमसे अभी कह दूं। तुम्हारी मालकिन को यह मालूम नही होना चाहिये कि मेरा ब्याह किसी अन्य लड़की के साथ निश्चित हो चुका है।'

माणक की ओर से कोई आश्वासन नही मिला।

महिम बोला, 'तुमने उत्तर नहीं दिया?'

'ठीक है। लेकिन मालिक······', माणक गिड़गिड़ाते हुए बोल ही रहा था कि महिम ने उसे टोक दिया, 'मैं इससे अधिक तुम्हें कुछ नहीं बताना चाहता कि मैंने ब्याह कर लिया है और अब मैं दुबारा कोई और ब्याह नहीं कर सकता। तुम लाखों बातें पूछना चाहोगे पर

मैं उन में से किसी एक का भी उत्तर न दूंगा। अब मैं जाता हूं। तुम दो गिलासों में पानी और ले आओ।' महिम दो कदम चल कर फिर रुक गया और बोला, 'देखो माणक ! अपनी मालकिन को तुम उतना ही समीप समझना जितना कि मुझे समझते आए हो। बिल्कुल भी संकोच न करना। तुम उसे बड़ी विशाल हृदया और उदार पाओगे।'

लौट कर महिम पलंग के पास आया और झुक कर अपनी पत्नी के अलकों पर हाथ फेरता हुआ बोला, 'मुन्नवर ! उठ जाओ काफी देर हो गई है।' पर जब मुन्नवर की नींद नहीं टूटी तो कुछ क्षण उसके मुख की ओर निहारता हुआ उसने फिर गुदगुदी की।

मुन्नवर की आँखें खुली। बोली, 'क्या खेल कर रहे हो ? जरा सोने दो न।'

महिम उसके कपोलों पर तैरती हुई लट को संवारता हुआ बोला, 'उठ जाओ अब। चाय कब की ठंडी हो रही है।'

मुन्नवर महिम की गोद में अपना सिर रख कर फिर सोने का उपक्रम करने लग गई।

माणक पानी का गिलास लेकर कमरे में आया तो महिम झटके के साथ मुन्नवर को गोद से उतारते हुए खड़ा हो गया। माणक संकुचित और लज्जित सा दिखाई दिया। मुन्नवर ने गोद से हटाये जाने का कारण ढूंढने के लिये आंखें खोलीं तो माणक को हाथों में पानी का गिलास लिए खड़े पाया। वह उठ बैठी और वक्ष पर आंचल डालते हुए मुस्कराने लगी।

महिम बोला, 'माणक ! अब बनाओ चाय। महारानी जी उठ गई है।'

मुन्नवर आँखों से कटाक्ष करती हुई हंसी और बोली, 'रहने दो, मैं बनाये देती हूं।'

माणक चला गया।

महिम बोला, 'तुम्हे देख कर तो माणक ने भी मेरे चुनाव की दाद दी होगी। जो कोई देखेगा, उसकी आँखें तो चौंधिया जायेंगी।'

मुन्नवर ने आसक्ति भरी नजरों से महिम को देखा और तनिक लजाती हुई बोली, 'तुम जब भी बात करोगे, हुस्न की ही चर्चा करोगे।'

'यह तो होता ही है। कौन सा पति है जिसे अपनी हसीन पत्नी पर गर्व न हो।'

मुन्नवर को गुदगुदी उठी। हंसती हुई बोली, 'पर उस समय तुम पर घड़ों पानी पड़ जाएगा, जब कोई तुम्हें याद दिलाएगा कि तुम्हारी बीवी तवाइफ थी।'

महिम ने चाय की चुस्की ली पर उसे लगा मानो कोई कड़वी घूंट उसके गले से उतर गई हो। वह बोला, 'मुन्नवर प्यारी ! क्यों पुरानी बातों को याद कर अपने मन को दुःखी करती हो।'

फिर आर्द्र स्वर में बोला, 'तुम्हें अपना कर ऐसा अनुभव कर रहा है मानो किसी दैवीय शक्ति की प्रेरणा से अपना कर्तव्य पथ प्रशस्त कर रहा हूं। तुम्हारा सौंदर्य निश्चय ही मेरे नेत्रों में ज्योति भरेगा—तुम्हारे मधुर कण्ठ से निकले हुए शब्द मेरे जीवन में मधु वर्षा करेंगे; तुम्हारा प्यार मेरे नीरस जीवन में कमनीयता लाकर उसे सरस बनायेगा; पर इन सबसे भी अधिक महत्व है इस बात का कि तुम्हारा सहचर्य मेरे जीवन को भव्य और व्यापक बनायेगा। यदि तुम समय-समय पर किसी भी हीन भावना से अपने को यूं दुःखित करती रहोगी तो मानव का विराट रूप अपनी आँखों से झर-झर आंसू बहायेगा। उस स्वरूप को देखने का मेरा संकल्प विक्षित हो जाएगा। तुम उस विराट रूप की प्रतिमा बन कर मेरे जीवन को प्रेरणाओं के नये स्रोत प्रदान करो।'

मुन्नवर गद्-गद् हो महिम के भावुकता से उद्वेलित मुख को देखती रही। उसके वक्ष से लिपट कर बोली, 'तुम जैसे शौहर को पाकर मेरी गुरंबत खत्म हो गई। किसी बिरली औरत को ही यह खुशनसीबी हासिल हो सकती है कि वह ऐसे पाक खयालात शख्स के कदमों में जिन्दगी गुजारे। तुम इन्सान नहीं हो मेरे महिम, फरिश्ता हो, फरिश्ता।'

महिम ने उसे हल्के से बाहुपाश में ले लिया।

महिम आगे बोला, 'हाँ मुन्नवर ! मैंने माणक को नहीं बताया कि तुम कौन हो। ऐसे ही, मेरे मित्र भी शायद तुम्हारे सम्बन्ध में पूछें। मैं समझता हूँ कि किसी से भी यह प्रकट करने की आवश्यकता नहीं कि तुम वेश्यालय में रहती आई हो। यह भेद ही बना रहे तो अच्छा है।'

मुन्नवर हंसी और बोली, 'ऐसा क्यों ? मुझे इससे कोई भी खौफ़ नहीं है। हमारी मुहब्बत कायम रहे; अगर दुनिया वाले मेरा मजाक उड़ाना चाहें तो उड़ायें।'

'ठीक है,प्यारी मुन्नवर ! लेकिन तुम मेरी पत्नी हो—तुमने मेरे बच्चों की मां बनना है। कुलवधु बनकर मेरे साथ पग पर पग मिला कर चलना है। मुहब्बत यकीनन जिन्दा रहेगी पर कर्तव्य पथ भी तो हमारा एक होना चाहिए। उसके लिए यह आवश्यक है कि हमारी इज्जत और आबरू, मान और मर्यादा भी एक रहें।'

मुन्नवर हंसी और बोली, 'खुदा कसम, जब तुम बोलते हो, मालूम पड़ता है कोई फरिश्ता बोल रहा है। मेरी तो समझ में ही नहीं आती तुम्हारी तकरीर। फिर भी यकीन दिलाती हूँ कि तुम्हारी नसीहतों पर अमल करूंगी।'

भोजन उपरान्त महिम मुन्नवर से बोला, 'आज मैटनी शो देखने चलेंगे और फिर वापसी में कुछ तुम्हारे लिए साड़ी आदि भी खरीद लेंगे।'

मुन्नवर ने खुशी में दोनों बाहें महिम के गले में डालते हुए उस का चुम्बन लेने को अधर ऊपर उठाये कि महिम ने उसे टोक दिया, 'हर समय नहीं । माणक साथ में है ।'

मुन्नवर ने महिम के गालों पर हल्की चपत लगाई और मुंह बनाकर बोली, 'ऊंह ! जख्म करते हो-देख लेगा तो क्या हुआ । शौहर बीबी ही तो हैं ।'

महिम हंसा और मुन्नवर के गालों की चुटकी भरता हुआ बोला, 'रानी ! अब जरा आदतें भी बदलनी होंगी । यह वैश्यालय नहीं है । यदि तनिक असामयिक हंसदी तो उंगलियाँ उठेंगी ।'

'ऊंह' गुस्ताखी से आंखें मटकाती हुई मुन्नवर ने मुंह बना लिया । महिम फिर अपना प्रस्ताव आगे बढ़ाता हुआ बोला, 'और कोई चीज खरीदनी हो तो बोलो । उसी हिसाब से पैसे ले चलें ।'

'मैं तो सारा सामान ही कोठे पर छोड़ आई । न क्रीम है न पौडर न लिपस्टिक······।'

'इन चीजों की तो यहाँ तुम्हें आवश्यकता भी न होगी । वे कोठे की नियामत थी—वहीं छूट गई—यदि कहो तो सुहाग सिन्दूर की एक डिबिया खरीद लायें ?'

'यह क्या बला होती है ?'

'वाह ! शादी करली और शृंगार के सबसे महत्वपूर्ण उपकरणों के प्रति इतनी अज्ञानता बरत रही हो । हाथों की चूड़ियाँ और माथे का सिन्दूर ही तो सुहागन के सुहाग की साक्षी देते हैं ।'

मुन्नवर चुनरी के पल्ले को मुंह में ठूंस कर अपनी हंसी रोकती हुई बोली, 'क्या-क्या कर्म करने पड़ते हैं बीबी बनने के लिए । न मालूम अगर यह सिन्दूर न लगाया जाये माथे पर, तो क्या गजब हो जाये । खैर बाबा, सब ढोंग कर लूंगी पर इस समय पौडर क्रीम वगैरह तो खरीदने ही होंगे ।'

महिम चुप हो गया। थोड़ा सा रुक कर बोला 'तो अब आराम कर लो। २ बजे चल पड़ेंगें। तुन दूसरे कमरे में सो जाओ और मैं इसी कमरे में लेटता हूँ।'

मुन्नवर आश्चर्य भरी दृष्टि से महिम को देखने लगी।

महिम उसके मन के भाव ताड़ते हुए बोला, 'यह घर तुम्हारा है रानी! तुम मेरी रखेल नहीं हो—धर्मपत्नी हो—बीवी। सारे मकान पर तुम अपना अधिकार बरतो। केवल एक कमरे में बन्द मत रहो। माणक से सारी व्यवस्था समझ लो और फिर स्वयं उसकी सहायता से गृहस्थी का संचालन करो।'

'लेकिन, महिम प्यारे! इस समय तो इकट्ठे सोने की बात चल रही थी—मुझे तुम अलग सोने की सलाह क्यों दे रहे हो?'

'मुन्नवर! हर घड़ी यूं शोभा नहीं देता! लोक लाज देखनी पड़ती है। अब तुम उस दुनिया में हो जहाँ एक पग उठाने से पूर्व तुम्हें दुनिया की नजरें देखनी होंगी। यदि दुनिया की नजरों में तुम्हारा कोई पग उपयुक्त न हो तो उसे उठाने से पूर्व उस पर गम्भीर सोच विचार आवश्यक है।'

मुन्नवर खीज उठी, 'अलग सो जाती हूँ, बाबा। छोटी सी बात पर पूरी तकरीर कर बैठते हो।'

महिम ने गौर से मुन्नवर की ओर देखा और फिर मुस्करा कर उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोला, 'जाओ सो जाओ। क्रोध नहीं किया करते। तुम्हें नहीं मालूम कि सब तुम्हारे हित में ही कह रहा हूँ।'

दो बजे महिम मुन्नवर को साथ लेकर पिक्चर देखने चला गया। पिक्चर देखने के बाद महिम ने मुन्नवर की मन पसन्द की दो एक साड़ियां खरीदी और फिर अन्य सामान भी जिनके लिए मुन्नवर का आग्रह था। इनमें एक पौडर का डिब्बा, लिपस्टिक, नेल पालिश, क्रीम और बालों का शैम्पो सम्मिलित था।

'तो चलो अब—एक डिबिया सिन्दूर की भी ले लेवें।' महिम बोला। मुन्नवर ने हंसते हुए महिम की ओर देखा मानो कह रही हो कि 'तुम भी इसके वगैर नहीं मानोगे।' एक डिबिया सिन्दूर की भी खरीद कर वह घर लौट आये।

घर पर माणक ने भोजन तैयार कर रखा था। भोजन से निवृत होकर महिम ने प्रस्ताव किया कि समीप ही किसी बाग में टहलने चला जाये और मुन्नवर से बोला 'वह जो नीले रंग की नाइलन की साड़ी खरीद कर लाये हैं, उसे पहिन लो।'

'अब तो अंधेरा होने जा रहा है। कौन देखेगा साड़ी को। कोठे की मैहफिल तो है नहीं कि तारीफ में वाह-वाह सुनाई दे। क्यों न शलवार ही पहन कर चलूं।'

महिम कट सा गया। आपत्ति करते हुए बोला 'मुन्नवर! प्रत्येक बात में तुम्हारा दृष्टिकोण अभी वैश्याओं का सा है। तुम क्यों मैहफिल को ही केवल एक मात्र ऐसा स्थान समझती हो जहाँ सौंदर्य प्रसादनों की आवश्यकता होती है एवं क्यों एक मात्र उस मैहफिल में बैठे हुए व्यक्तियों को ही सौंदर्य का एक मात्र पारखी समझती हो। वैश्यालयों से बाहर भी तो दुनिया बसी हुई है। उस दुनियां में कोई दस बीस नहीं, सैंकड़ों और हजारों सौंदर्य के पुजारी सौंदर्य को आंखों में पी जाने को लालायित रहते हैं। अन्तर केवल सौंदर्य, उसके मापदण्ड और शिष्टाचार में है।'

मुन्नवर बच्चों की भाँति हंस पड़ी और बोली 'फिर न जाने क्या-क्या बोल गये आप। पर इतना तो समझ ही गई कि आपकी ख्वाहिश यही है कि अब और बड़े पैमाने पर अपने हुस्न की नुमाइश करूं।'

'ये किसने कहा?'

'आपने अभी फरमाया नहीं कि कोठे से बाहर की दुनिया भी तो मेरे हुस्न की ताबानी देखने को बेताब हैं?'

महिम ने माथा ठोकते हुए कहा ओोह, मुन्नवर ! तुम केवल शब्दों को पकड़ती हो—उनका अर्थ नहीं लगाती ! हुस्न तो भगवान को भी प्रिय है। हसीन होना स्वयं एक सौभाग्य है—केवल हुस्न जैसी अमूल्य निधि को यूं ही व्यापार बना कर लुटा देना नीचता है—वैश्यापन है।'

मुन्नवर फिर मुस्कराई और बोली 'समझ गई। तवाइफ हुस्न को लुटाने के लिए उसकी नुमाइश करती है और घर की औरतें सिर्फ लज्जत हासिल करने के लिए। लेकिन यह तो कोई मकसद नहीं हुआ। बेमाइने की बात है। खुदा हुस्न-पसन्द चाहे हो, पर नुमाइश पसन्द भी हो—इसमें तो शक है। भला नुमाइश का मकसद फक्त तिजारत के और क्या हो सकता है ?'

महिम को कोई उत्तर न सूझा। कुछ सोच कर बोला, 'मुन्नवर प्यारी ! तुम तर्क छोड़ो और तैयार हो जाओ। मेरे लिए तो कम से कम तुम वह साड़ी पहन लो।'

मुन्नवर महिम की आँखों में अपनी आंखें गाड़ कर, उससे चिपक गई—और फिर हवा में चुम्बन छोड़, दूसरे कमरे में जाते हुए बोली, 'तुम्हारे लिए तो जान भी कुर्बान कर दूंगी। देखना जरा, कैसे बन-ठन कर आती हूँ। चन्द मिन्टों में हाजिर हुई।' और वास्तव में जब मुन्नवर लौटी तो उसे देख कर महिम की आँखें चौंधया गईं।

नीली आसमानी रंग की नायलन की झीनी साड़ी की पर्तों में बन्द अन्दर से उसका गदराया हुआ यौवन बाहर झाँक रहा था। नाइलन की साड़ी उसके देह से ऐसी चिपकी हुई थी कि उसके पुष्ट अंगों का स्पष्ट आभास हो रहा था।

वह सुन्दर तो थी ही—पर शृंगार कर उसकी सुन्दरता और भी निखर आई थी। फिर अभी वह उस अवस्था में थी जब कि खौलता हुआ जवानी का रक्त कपोलों पर अनार की सी लालिमा बिखेर देता है और देह की त्वचा में मक्खन जैसी मुलायमी भर देता है। शरीर का

गठन भी उसका कुछ ऐसा था कि महिम की आसक्ति भरी दृष्टि उसके कपोलों से फिसलते २ क्रमशः उसकी ग्रीवा वक्षस्थल और कटी से नीचे आकर—पैरों तक का मुआयना किये बिना न रह सकी।

मुन्नवर उसकी इस आसक्ति भरी नजर को देख रही थी। मद और उल्लास से उसके नयन चमक उठे। वह दर्प भरी मुस्कराहट में बोली, 'इतने फ़िदा हो गये हो कि होश-हवास ही खो बैठे ?'

महिम चौंक सा पड़ा। थोड़ा आगे बढ़ कर उसने मुन्नवर की क़लाई पकड़ी और फिर उसे खींच कर छाती से चिपकाता हुआ बोला, 'मुन्नवर प्यारी !' क्या इस अतुल सौन्दर्य-राशि का सचमुच मैं ही एक मात्र स्वामी हूँ ? क्या सचमुच मैं इतना भाग्यवान हूँ कि पत्नी के रूप में तुम जैसी अद्वितीय सुन्दरी को पाकर साक्षात सौंदर्य को ही वन्दी बना लाया हूँ ? न मालूम क्यों यह सव सत्य होते हुये भी स्वप्न सा लग रहा है।'

मुन्नवर के अधरों में कम्पन हुआ। अध मुँदे नेत्रों से महिम को देखती हुई बोली 'यह हकीकत है, प्यारे ! मैं तुम्हारी हूँ, केवल तुम्हारी। मेरे जिस्म का हर हिस्सा तुम्हारा है।'

महिम मुन्नवर के शब्दों को सुनकर पागल सा हो गया। ठीक उसी समय महिम के जूतों पर पालिस कर—दूसरे कमरे से माणक आ गया। महिम और मुन्नवर अलग हो गये।

'मालिक ! और कुछ ?' माणक बोला।

'वस माणक।' महिम बोला और मुन्नवर की ओर देख कर मुस्करा दिया। जूते पहन कर फिर उसने मुन्नवर की ओर इशारा किया और दोनों कमरे से निकल पड़े।

———

१

मुन्नवर दिल्ली में जी० बी० रोड की एक वैश्या थी और महिम स्थानीय स्कूल में अध्यापक। मित्रों के संग एक दिन नाच गाना सुनने के लिए मुन्नवर की महफिल में जा पहुंचा। उससे पूर्व वैश्यालय जाने की बात तो दूर रही, किसी वैश्या को उसने समीप से भी नहीं देखा था, यद्यपि पुस्तकों और फिल्मों में वैश्याओं पर की गई टिप्पणी और उनके जीवनके अनेक पहलुओं से वह अनभिज्ञ नहीं था। फिर भी प्रत्यक्ष में एक वैश्या से साक्षात होने का वह पहला अवसर था। स्वाभाविक था कि फिर उसे संकोच होता। अतः जहाँ उसके दूसरे मित्र खुल कर मुन्नवर की प्रत्येक भाव भंगिमा पर दीवानों की भाँति उछल रहे थे, वहां वह एक कोने में बैठा हुआ संकोच से गढ़ा जा रहा था। मुन्नवर कभी नाचते-नाचते उसकी ओर इशारा कर कोई शरारत कर जाती तो वह पानी पानी हो जाता। लज्जा से उसकी गर्दन नीचे को झुक जाती। न मालूम क्यों उसका यह शरमीलापन मुन्नवर को अति प्यारा लगा। वह अब पहले से अधिक उसे तंग करने लग गई। उसके मित्र और मैहफिल में बैठे हुए दूसरे व्यक्ति भी खिलखिलाकर हँसते हुए उसकी ही

ओर देखते जा रहे थे और इस प्रकार वह मुफ्त में ही बिना किसी कारण के सारी मैहफिल के आकर्षण का केन्द्र बन गया। उसकी शर्म अब आतंक में परिणित हो उसके पीले चेहरे से फूट कर बाहर निकल रही थी फिर भी कुछ समय तक वह अपनी सारी ताकत को बटोर कर उस हुल्लड़बाजी को सहन करता ही गया। पर जब अति हो गई तो अकस्मात ही उसका पीला चेहरा रक्ताभ हो उठा।

वह मुन्नवर को संबोधित करते हुये गर्ज उठा, 'आखिर वैश्या हो न, वरना मेरी शराफत से यूँ खिलवाड़ न करती। तुम्हारा नंगापन देखकर एक मर्द की आंखें शर्म में नीचे को गढ़ी जा रही हैं और तुम हो कि उससे और जोश हासिल कर रही हो मानो तुम्हारे अन्दर औरत न होकर कोई शैतान हरकत कर रहा हो।'

मुन्नवर के पैरों के घूँगरुओं की आवाज बन्द हो गई। महफिल में सन्नाटा छा गया। कुछ क्षणों तक कोई न बोला। सब पत्थर की मूर्ती की तरह जड़ सूनी नजरों से महिम को देखते रहे। महिम की आंखें मुन्नवर की ओर लगी हुई थी मानों वे उससे उत्तर का तकाजा कर रही थीं। उन में ज्वाला थी पर मुन्नवर निश्चेष्ट थी मानो जो कुछ हुआ था, उसे अभी वह समझ भी न पाई थी।

वह निस्तब्धता आखिर मिरासी ने तोड़ी। वह एक डंडा लेकर महिम की ओर बढ़ा।

महिम ने देखा तो उसके होश रफूचक्कर हो गये। उसे अब वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो आया। वह चुस्ती से भाग कर मुन्नवर के पीछे दुबक आया और बोला, 'मुझे बचाओ। अब फिर यहां कभी नहीं आऊँगा।'

मुन्नवर चेतन हुई मानो बेहोशी से होश में लौटी हो। महिम को पीठ पीछे करती हुई वह चिल्लाई, 'उस्ताद जी! नहीं खबरदार जो डंडा उठाया—फेंक दो इसे।'

उस्ताद उसी तरह क्रोध में बोला, 'हट जाओ बाईजी तुम। मैं इस मर्द को देख लूं जरा, जो तुम्हारी बेज्जती कर सकता है। गुस्ताख कहीं का। उसी थाली में खाना और फिर उसी में छेक करना।'

लेकिन मुन्नवर ने महिम को पूरे तौर पर समेट लिया था। यदि कोई वार होता तो उससे महिम नहीं, स्वयं मुन्नवर घायल होती।

महिम के मित्र, जो अभी तक ठगे, ठगे, बैठे थे, अब उठ कर उस्ताद को शान्त कर रहे थे और इसी प्रकार दूसरे व्यक्तियों ने भी अब खड़े होकर बीच बचाव करा दिया।

जब वातावरण शान्त हुआ तो मुन्नवर ग्राहकों को संबोधित करती हुई बोली, 'आज रूकसत चाहती हूं। गुस्ताखी मुआफ हो।'

समस्त व्यक्ति अपने-अपने जूते पहन कर जाने लगे। महिम ने भी जब खिसकने के लिए हरकत की तो मुन्नवर ने उसकी बाहें पकड़ ली। पैनी नजरों से देखती हुई बोली, 'अभी नहीं।'

महिम घबराया। अज्ञात भय से उसे कपकंपी छूट गई। न मालूम रोक कर मुन्नवर अपने अपमान का किस प्रकार प्रतिकार करेगी। वह रुवांसा होकर गिड़गिड़ाय। 'मुझ से भूल हुई, रानी जी! मुझे छोड़ दो। मैं कहीं का नहीं रहूँगा। आप की जो २ शर्तें हों, मैं उन सबको पूरी करूंगा; पर इस समय मुझे जाने दो।'

मुन्नवर ने सुना तो पसीज उठी। करुण विह्वल हो बोली, 'अरे रे! तुम तो डर रहे हो। तुम पर कोई सख्ती थोड़ी ही करूंगी। कसूरवार तो मैं ही हूं। जो कुछ हुआ उसे अपनी खताओं का अंजाम समझती हूं। तुम से तो दो बातें करनी हैं।'

महिम थोड़ा आश्वस्त तो हुआ पर उसका भय पूरा न गया। वह बोला, 'फिर किसी दिन आजाऊँगा पर इस समय जाने दीजिए'। उस्ताद और वैश्यालय के दूसरे लोगों ने मुन्नवर की बात सुनी तो बोले, 'रानी! क्यों इस मरदूद को मुँह लगा रही हो। टके की तो

इस की कीमत नहीं और तुम इस की भिन्नतें कर रही हो मानों कोई नवाबजादा हो।"

मुन्नवर ने सुना तो क्रोध से लाल हो बोली, 'उस्ताद जी ! मैं तुम्हारी लौंडिया नहीं हूँ जो तुम्हारी हुक्मअदूली करूं। मेरी मनशा है। तुम सब अपना काम करो।'

उस्ताद और दूसरे व्यक्तियों को मुन्नवर की बात कुछ अखर सी गई पर उसके कहे अनुसार वे चुपचाप गुस्से में अपने २ कमरों में चले गये।

मुन्नवर प्यार भरी दृष्टि से महिम को देखते हुए बोली "आओ अपने कमरे में चलें और फिर उसका हाथ पकड़ कर वह उसे अपने निजी कमरे में ले आई।

कमरा बड़ा सजा हुआ था। दो बड़े २ शीशे कमरे की दोनों ओर की दीवारें पर टंगे हुए थे और बीच में दीवारों पर कुछ सेठ साहूकार अथवा राजा व नवाबों की फोटो थीं। एक दो चित्र अर्द्ध नग्न स्त्रियों के भी थे जो कामुक और भद्दे थे। फर्श पर महीन कालीन बिछे हुए थे और कमरे के बीचोबीच एक बड़ा सा निहायत आलीशान पलंग बिछा हुआ था। कमरे के एक कोने पर श्रंगार मेज थी और दूसरे कोने पर उम्दा किस्म का सोफा सेट और दो एक आराम कुर्सियाँ लगी हुई थी। सब मिला कर कमरे की सजावट शानदार थी और उससे वैभव झलक रहा था। महिम खोया खोया उन उम्दा कालीनों पर पैर रखता हुआ और कमरे की सजावट देखता हुआ मुन्नवर के संकेत पर कौच पर आकर बैठ गया। मुन्नवर अन्दर से कमरे की चटखनी बन्द कर उसके पास ही उसी कौच पर आकर बैठ गई। आंखें तरेरती हुई बोली, 'अब सुनाओ किस लिए आये थे ?'

महिम अभी तक समझ नहीं पाया था कि उसे रोकने का आखिर मुन्नवर का उद्देश्य था क्या। फिर उत्तर क्या देता। वह चुप रहा।

मुन्नवर फिर बोली "तुमने बताया नहीं, किस लिए आए थे ?' महिम ने आखिर सकुचाते हुए उत्तर दे ही दिया। बोला 'मैं तो नहीं आया पर, कुछ मित्र ले आये।'

मुन्नवर जरा हंस दी, 'अच्छा ! तो कैसी लगी मैहफिल, कुछ मजा आया ?'

महिम झेंप गया। उसकी दृष्टि मुन्नवर के चेहरे से फिसल कर फर्श पर जा टिकी।

मुन्नवर बोली मजा नहीं आया, उल्टी नफरत हो गई। हैं न ? अच्छा उस वक्त किस बात पर खफ़ा हुए थे, जरा बताओ तो। देखो हिचक न दिखाना। इन्हीं बातों के लिए तो मैंने तुम्हें रोका है। महिम के मुख पर लाचारी के भाव थे। मुन्नवर की ओर देखता हुआ दीन स्वर में बोला 'वह मेरी नादानी थी। तनिक जोश आ गया। न जाने क्या बक गया। उसके लिए मैंने पहले ही तुम से क्षमा याचना कर ली है।'

मुन्नवर दुःखित स्वर में बोली 'देखा बाबू ! तुम अभी तक हिचक दिखा रहे हो। अब तुम्हें कैसे यकीन दिलाऊं कि मैं असलियत जानने के लिए बेताब हूँ। यदि तुमने दिल खोल कर अपनी बात न कही तो मुझे निहायत मायूसी होगी।'

महिम उसकी ओर टकटकी बांधे देखता ही गया।

वह बोली, 'हाँ-हां बोलो। देखो मैं तवाइफ जरूर हूँ पर इस वक्त औरत का दिल लिए तुमसे यह सवाल कर रही हूँ। अगर तुम समझते हो कि यह धोखा है तो इतना ही यकीन कर लो कि औरत बनने की हसरत शायद अभी मेरे अन्दर जिन्दा है। इस हसरत को कुचलो मत। तुम इतने तंग दिल तो नहीं हो सकते।'

मुन्नवर के शब्द महिम के मर्म को छू गये। वह बोला, 'मैं सच कहता हूँ कि तुम्हारे व्यवहार को देख कर अब मुझे अपने शब्दों पर

पश्चाताप हो रहा है। जो कुछ मैं समझता था, तुम उससे बिल्कुल ही भिन्न निकली।'

मुन्नवर की आँखों में एक चमक पैदा हुई। उसने पूछा, 'उस समय तुम क्या सोचते थे ?'

'सोच रहा था—कि वैश्या अपना सब कुछ लुटा देती है। उसके अन्दर न लज्जा होती है न शिष्टता। शायद अस्मत लुटाने के बाद उसके अन्दर की औरत ही उससे लूट ली जाती है। वरना क्यों जब मैं लज्जा से वर्फ के समान ठण्डा पड़ता जा रहा था तो तुम आंखों से मस्ती बिखेरते हुए—उन तमाशबीनों के दिल में वासना की आग प्रज्वल्लित करते हुए कबूतरी के समान फुदक रही थी निःसंकोच और निर्लज्ज। क्या यह औरत के लिए सम्भव है ?'

मुन्नवर दांतों से अपने अधर दवाती हुयी बोली, 'जब तुम घर से चले थे तो एक औरत के दर्शन करने चले थे या तवाइफ की लुटी हुई अस्मत का बांकापन देखने के लिए ?'

'मैं तो नहीं आना चाहता था।'

'चाहे तुम दोस्तों की इल्तजा पर ही आये, पर तुम्हें गुमान तो रहा होगा कि तुम्हारे कदम किसी को पनाह देने चले थे या किसी से पनाह लेने ?'

'क्या मतलब ?'

'मेरे शौकिये मुझे अपने कदमों में पनाह देने ही तो आते हैं।'

'मेरा कोई ऐसा उद्देश्य नहीं था।'

'तो तुम क्यों तशरीफ ले आये—इस उम्मीद पर कि तुम्हें पनाह मिल सके ?'

'ये क्या कह रही हैं आप ?'

'यही, कि जब तवाइफ की हर बात से आप वाकिफ थे, तो फिर आपके खफ़ा होने की क्या वजह हो सकती थी ?'

महिम को कोई उत्तर न सूझा पर कुछ क्षण रुक कर वह बोला, 'मुझे यह कहां मालूम था कि तवाइफ के अन्दर 'औरत' नहीं होती।'

मुन्नवर की आँखें चमक उठी। आश्चर्य में बोली, 'औरत? लेकिन—अस्मत लुटाने के बाद भी?'

'अस्मत की लूट को तो मैं परिस्थितियों का अभिशाप समझता हूँ।'

मुन्नवर की आंखें आश्चर्य से फट गईं। वह बोली, 'तो जहाँ तक अस्मत का सवाल है, आप तवाइफ और घर की औरत में कोई फर्क नहीं करते?'

'फर्क तो क्यों नहीं करता, पर वह फर्क, मैंने कहा न कि परिस्थितियों के मापदण्ड पर निर्भर है। यदि आज मुझे फांसी का दण्ड मिल रहा हो और मेरी पत्नी के समक्ष यह शर्त रख दी जाये कि मेरी मुक्ति उसकी अस्मत पर निर्भर है तो वह एक को नहीं—सैंकड़ों को अपनी अस्मत बेच सकती है।'

'और फिर भी उसका दामन पाक रहेगा?'

'हां, गंगाजल को हम बहुत पवित्र समझते हैं, वह गंगाजल से भी पवित्र होगी।'

मुन्नवर की बड़ी-बड़ी गोल आंखें, आश्चर्य में महिम के मुख पर टिक गईं उसके मन में बवंडर सा उठ गया। जलाशय में जिस प्रकार एक कंकर फेंकने से निरन्तर कुछ समय तक चक्करदार लहरें बनती रहती हैं, उसी प्रकार महिम के उत्तर को सुनकर मुन्नवर के दिल में अकस्मात सैंकड़ों प्रश्न चक्कर काटने लगे। वह उनको एक शृंखला में बांध नहीं पा रही थी और इसीलिए, अपलक, कुछ देर तक उसे देखती ही रही।

उसने पहला प्रश्न किया, 'तवाइफ में और घर की औरत में आप क्या फर्क समझते हैं?'

'घर की औरत मर्द का किला है—उसकी शक्ति का स्रोत–उसकी सृजन की अटूट कड़ी जो उसे बुलन्दी तक पहुंचाती है। वह स्त्रीत्व का व्यापार नहीं करती अपितु उसे पुरुष के निर्माण पर खर्च करती है। पर वेश्या उस शक्ति को व्यापार के तराजुओं पर चढ़ा कर पुरुष के विनाश पर लगा देती है।'

'इनका अपना-अपना अंजाम क्या है ?'

'घर की स्त्री एक की होती हुई भी भरपूर है। वेश्या सैंकड़ों की होती हुई भी अकेली है। एक दिन के प्रकाश में रहती हुई सत्य की अनुभूति करती है, दूसरी रात्रि के अन्धकार में छली जा रही है।'

आपके ख्याल में, घर की औरत में और तवाइफ में कहीं पर कोई बराबरी भी है ?'

'है! केवल यही कि दोनों औरत हैं।'

'क्या तवाइफ से आपकी कोई हमदर्दी नहीं है ?'

'हमदर्दी की तो आपने एक ही कही। यदि वेश्या से हमदर्दी न हो तो फिर हो किससे ? हमदर्दी हमेशा उसीसे की जाती है जो दीन हो, पतित हो, नीचे गिरा हुआ हो।'

मुन्नवर की आंखों की पलकें नीचे को झुक गई। उनमें कृतज्ञता भरी हुई थी, लेकिन तुरन्त फिर उसने दूसरा प्रश्न किया, 'लेकिन आप तो तवाइफ से नफरत करते हैं, फिर इस हमदर्दी के क्या माइने हुए ?'

महिम बोला, 'आप गलत समझ रही हैं। मैं तवाइफ से नहीं, उसके तवाइफपन से नफरत करता हूँ। वेश्या नाश नहीं, निर्माण का पथ आलोकित करे तो वेश्या शब्द की परिभाषा ही बदली जा सकती है।'

मुन्नवर के हृदय में गुदगुदी सी उठी। उसकी भारी पलकें फिर नीचे को झुक गई और वह अपनी बारीक उंगलियों से नीचे फर्श पर बिछे कालीन के रेशे कुरेदने लगी।

कुछ क्षण विचार मग्न रहने के बाद वह हंस पड़ी; न मालूम विचारों की कौन सी तरंग पर। हंसते हुए ही बोली, 'आप को तवाइफ के

घर पर रहना अखर तो नहीं रहा ?'

महिम मानो बेहोशी से होश में आते हुए बोला 'वास्तव में मैं बहुत देर तक रुक गया। अब चलूं' वह उठ पड़ा।

मुन्नवर उठकर फिर उसे कौच पर बिठाती हुई बोली 'ये क्या मजाक कर रहे हैं आप ? क्या मुझ नाचीज की मैहमाननवाजी कबूल नहीं है आप को ?'

महिम असमंजस में पड़ गया। भला एक वैश्या और उसका आतिथ्य सत्कार - कितना छल था, इस शिष्टाचार में भी।

उससे कुछ उत्तर देते न बन पड़ा और फिर चलने के लिये वह कौच से उठ गया।

मुन्नवर उसके भावों को ताड़ती हुई बोली 'आप की तकरीर को सुनकर तो मैं वाकई ही यकीन कर चल थी कि तवाइफ को आप चाहे कितना ही नापाक क्यों न समझते हों पर उससे अभी औरत का दर्जा नहीं छीनना चाहते। औरत समझ कर ही शायद आपने इतनी बातें भी की वरना आप जैसा नेकचलन शख्स तवाइफ से बातें कर उसकी इतनी इज्जत अफजाई करे–यह कैसे मुमकिन है, पर अब यह औरत की दावत नामंजूर कैसे ?'

महिम ने सुना तो अवाक हो चला।

'आज की रात आप की यहीं कटेगी।' मुन्नवर की आंखों में कटाक्ष और होंटों पर मुस्कान थी।

'नहीं' महिम के होंठ उत्तर में बुदबुदाये।

'हां कहो ! यह औरत की दावत है' उसी मुद्रा में मुन्नवर बोली। महिम का सिर चकराने लगा। उसके मन में एक ओर वैश्यालय का विचार आता और दूसरी ओर 'औरत' शब्द में भरा आकर्षण और वह अभ्यर्थना जिससे वह शब्द दोहराया जा रहा था। फिर उसकी आंखों के सामने मुन्नवर के मुख की मुद्रा और होंटों की मुस्कान नाच उठी। वह सिर पकड़ कर पुनः कौच पर बैठ गया।

मुन्नवर कुछ देर बाद दूध का गिलास और कुछ सेव अंगूर आदि फल लाई तो उसने बिना संसोच के सब ले लिया मानो यह उस की नित्य की क्रिया थी।

वह रात महिम की मुन्नवर के कोठे पर ही कटी और उसके बाद महिम ऐसा अनुभव करने लग गया मानो नित्य ही उसे मुन्नवर के निमन्त्रण मिल रहे हों और जैसे उन निमन्त्रणों को ठुकराना उस के बस की बात नहीं थी। वह नहीं जानता था कि कौनसा अज्ञात मोह उसे मुन्नवर के कोठे पर जाने की प्रेरणा देता। वह दूसरे तीसरे दिन मुन्नवर की महफिल में पहुंच जाता। उसे देखकर मुन्नवर के पांवों की थिरकन और तीव्र हो जाती। उसके नृत्य में जान आ जाती मानो महिम को देखकर उसकी रगों में विद्युत का संचार सा हो जाता हो। तमाशबीन प्रशंसा में 'वाह' २ करते और मुन्नवर उत्तर में केवल महिम की ओर देखकर उस 'वाह' २ को तसलीम करती। अब न महिम को नृत्य के दौरान मुन्नवर को अपनी ओर टकटकी लगाये हुये देखते झेंप महसूस होती और न महिम पर मुन्नवर की इस विशेष कृपा दृष्टि को लक्ष्य कर तमाशबीन कह कहे ही लगाते। अब तो महिम कुछ ऐसा अनुभव करता मानो उसी के सम्मान में ही महफिल का आयोजन होता हो मानो अन्य दूसरे केवल दर्शकमात्र हों और वह मुख्य अतिथि। यह था भी कुछ अंश तक सच ही क्योंकि जिस दिन महिम न आता मुन्नवर कुछ बेचैनी सी मैहसूस करती। वह गाती थी पर गाने का भाव अपनी अदाओं से अभिव्यक्त न कर पाती थी। वह नाचती थी पर उसके पद चाप कभी कभी तबले के बोलों से विमुख हो जाते।

महिम पर मुन्नवर की यह विशेष कृपादृष्टि उस्ताद और मुन्नवर के एक दो प्रेमियों से छुपी न रही। उस्ताद आरम्भ ही से महिम से जलता था। अन्दर ही अन्दर उसके प्रति मुन्नवर की बढ़ती हुई आसक्ति

से वह जल भुन कर राख हो जाता था। एक दिन मैहफिल के विसर्जन पर जब मुन्नवर महिम को लेकर अन्दर अपने कमरे में चली गई तो वही प्रेमी उस्ताद के हाथ पर पाँच रुपये का नोट रखता हुआ बोला, 'कमजोर दिखाई देते हो उस्ताद आजकल। क्या कुछ तकलीफ है ?'

उस्ताद उस बखशीश के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोला, 'मालिक की नजर सलामत रहे, गुलाम को क्या तकलीफ हो सकती है ? जरा इस लौंडिया के मिजाज ठिकाने नहीं हैं।'

'हां उस्ताद ! देख तो मैं भी रहा हूँ। है कौन ये जिस पर फिदा हुई जाती है ?'

'न मालूम कौन है कमवख्त। खाली जेब ही गुल छुर्रे उड़ा रहा है। दिल तो करता है कि दरवाजे से निकाल कर बाहर पटक दूँ पर वह लौंडिया है कि निकम्मे पर जान कुरवान किये बैठी है। मालिक ! आप ही कुछ तरकीब वतायें कि यह छोकरी अपनी बेअकली से बाज आये। खुदा कसम अम्मी जान का इन्तकाल क्या हुआ कि इसको अब किसी का खौफ नहीं। मजाल थी पहले किसी से आंख लड़ाये जो सौ–दो–सौ पहले पेशगी न रख दे। पर अब हालत यह है कि उल्टे उसी पर अपनी सब कमाई वरवाद कर रही है। कभी मरदूद के लिए उम्दा से उम्दा मिठाई आती है, तो कभी कुछ और कभी कुछ—गोया कि सब उसी के लिए कमाती है। चेहरा तो देखो सुसरे का सेब के मुआफिक लाल हो गया है—सब मुन्नवर बाई के पिस्ते खा कर।

मुन्नवर के उस घायल प्रेमी के मुख पर ईर्षा की एक लहर सी दौड़ गई। सिगरेट सुलगा कर धुयें का गुबार छोड़ते हुए बोला, 'आजकल आता भी तो वड़े ठाट बाट में है। जैसे वाकई ही किसी रईस का साहबजादा हो। सुनहरी फ्रेम का चश्मा और वसे ही कलाई पर सोने की चेन वाली उम्दा घड़ी……।'

उस्ताद बीच ही में बोल पड़ा, 'उसके बाप दादों ने भी पहना है सुनहरी फ्रेम का चश्मा और घडी। मुन्नवर बाई सलामत रहे। अभ

तो न मालूम क्या क्या पहनना है।……'

उस्ताद अभी बोले ही जा रहा था कि मुन्नवर की आवाज पड़ी, 'उस्ताद जी ! एक टैक्सी मंगवा लेना—बाबू को देर हो रही है।'

उस हताश प्रेमी और उस्ताद को लगा मानो मुन्नवर नहीं बोली, कोई गाज पड़ा हो। उस्ताद के साथ वह प्रेमी भी सीढ़ियाँ उतर आया।

कुछ देर बाद जब उस्ताद टैक्सी ले आया तो मुन्नवर के साथ महिम कमरे से बाहर आया और सीढ़ियां उतरते हुए टैक्सी पर जा बैठा। विदा करते हुये मुन्नवर बोली, 'कल सनीचर है, जल्दी आ जाना और देखो, तुम्हे कुछ हरारत भी है, अपनी हिफाजत रखना।' महिम ने मुस्कराते हुए गर्दन हिला दी और टैक्सी चल पड़ी।

दूसरे दिन मुन्नवर महिम की प्रतीक्षा करती रही पर वह नहीं आया। मुन्नवर का दिल जोरों से धड़क रहा था कि न मालूम महिम क्यों नहीं आया। वह पलंग पर लेटी हुई सोचती रही।

महफिल का समय हो गया था। उसे शृंगार कर तैयार होना था पर वह उपेक्षा करती गई।

उस्ताद उसके कमरे में आ कर बोला, 'रानी बाई ! तमायशी असँ से इन्तजार कर रहे हैं और अभी तुम तैयार भी नही हुई।'

मुन्नबर लेटे लेटे बोली, 'उस्ताद जी ! उन्हें कह दो, आज मुआफ फरमायें—जरा तबीयत नासाज है।'

उस्ताद गुस्से में बोला, 'मुन्नवर बाई ! ऐसे कैसे हो सकता है ? चन्द घड़ी पेश्तर तो तुम चंगी भली थी, नहीं तो दरवाजा ही न खुल-वाया होता।'

मुन्नवर फटकारते हुए बोली, 'उस्ताद जी ! तुम कुछ दिनों से हुज्जत करने लगे हो। मैं किसी की गुलाम नहीं हूँ कि रस्सी से बंध कर उनके पास चली आऊँ अगर नहीं जाते तो झाड़ू मार कर बाहर निकाल दो।'

उस्ताद बोला, 'मुन्नवर बाई ! ऐसा कहना तुम्हारी शान के शाया नहीं है। जिन की कदमबोसी में तुम्हारी गुजर बसर होती है, गर उन्हें ही झाड़ू मार कर निकाल दें तो क्या फिर उन्हें यहाँ आबाद करोगी जिनकी गुरबत टुकडे-टुकड़े की मोहताज है……'

उस्ताद ने देखा कि उसके पीछे एक छाया खड़ी थी। वह बोलते-बोलते रुक गया। पीठ पीछे महिम खड़ा उसकी और मुन्नवर की बातें सुन रहा था।

मुन्नवर ने उस्ताद की बातें सुनी तो क्रोध पर नियंत्रण न रख सकी। दांत पीसती हुई बोली, 'उस्ताद ! इतने गुस्ताख हो गए हो कि मुझ पर ही छींटे कसो। तुम्हारी जिन्दगी भी तो मेरी कदमबोसी पर ही सलामत है। फिर तुम कैसे ये हिमाकत कर बैठे कि बदजुबान हो मेरी तौहीन करो। मैं तुम्हारे मन्सूबों को सब समझती हूँ। महिम बाबू को यहाँ मालिक का सा हक होगा और वह यहाँ रहेंगे। गर तुम्हें भी यहाँ रहना है तो उनका वफादार गुलाम बन कर रहना होगा। नहीं तो तुम भी इन तमाशबीनों के साथ अपना बोरिया बिस्तरा गोल करो।'

उस्ताद एक ओर खड़ा महिम को देख रहा था मानो चोरी करते हुए पकड़ा गया और दूसरी ओर मुन्नवर की फटकार सुन रहा था मानो चोरी करने की सजा सुन रहा था। वह चुप रहा।

मुन्नवर जोर से चिल्लाई, 'उस्ताद ! अपना जवाब दो। मैं अभी तुम्हारा फैसला करना चाहती हूँ।'

उसे उत्तर मिला पर उस्ताद से नहीं, महिम से। महिम उसकी ओर बढ़ता हुआ बोला, 'क्यों व्यर्थ क्रोध कर रही हो, कारिन्दों से कभी भूल हो ही जाती है। जल्दी तैयार हो जाओ, महफिल में तुम्हारी प्रतीक्षा हो रही है।'

मुन्नवर ने महिम की आवाज सुनी तो ऐसे चौंक पड़ी मानो किसी

ने उसके आँचल में ढेर सारी अशर्फियां बिखेर दी हों। वह चुस्ती से पलंग से उठती हुई बोली 'बड़ी देर कर दी आने में ? कहाँ तो वायदा कर गये थे दोपहर के आने का और कहां अब रात के ग्यारह बज रहे हैं।'

महिम हंसता हुआ बोला, 'तुम तो सचमुच ही मुझ से प्रेम करने लगी हो ?'

मुन्नवर नदी की चंचल तरगों की भाँति लहरा उठी। नैनों में कटीलापन लिए उसमें मुस्कराते हुए कृत्रिम क्रोध प्रकट किया, 'बस तुम में भी गुस्ताखी आ रही है।'

'अच्छा ! यही सही, पर अब तैयार हो जाओ।'

'तुम बैठोगे मैहफिल में ?'

'मेरी तबीयत अच्छी नहीं। मैं लेटता हूँ।'

'तो आज महफिल नहीं जमेगी।'

महिम कुछ सोचता हुआ बोला, 'अच्छा मैं जाकर बाहर महफिल में ही बैठता हूँ।' और वह बाहर आकर महफिल में बैठ गया। मुन्नवर भी जल्दी से सज कर पायल छमकाते हुए महफिल में आ विराजी और उसके आते ही मैहफिल में समां बंध गया। उस्ताद के हाथों में सारंगी के तार झंकृत हो उठे और उसी के साथ—तबले के बोल और उन बोलों की लय पर धमकते हुए मुन्नवर के पायल।

तमाशबीनों की वाह-वाह मैहफिल में रंग लाने लगी !

कल वाले घायल प्रेमी ने जेब से दस रुपये का नोट निकाल कर मुन्नवर की ओर उड़ाते हुए हवा में एक बोसा छोड़ा और सारंगी का एक तार जोर से झनझना उठा।

मुन्नवर नृत्य करती जा रही थी। और प्रत्येक तमाशबीन की जेब से एक-एक दो-दो रुपये वाले नोट झड़ कर मुन्नवर के आँचल में पहुंच रहे थे।

कुछ देर बाद फिर उसी घायल प्रेमी ने एक और दस रुपये का नोट

निकाल कर हवा में फैंका और मुलायमी से मुन्नवर के गाल पर अपना हाथ फेर दिया।

मुन्नवर ठिठक गई पर कुछ रुक कर वह फिर नाचने लगी। सारंगी का तार फिर एक बार और जोर से बज उठा।

रुपयों के नोट तमाशबीनों की जेबों से उड़ कर नृत्य करती हुई मुन्नवर के पास पहुँच रहे थे मानो धुनते समय रूई के फुव्वे छटक कर ऊपर उड़ रहे थे।

घायल प्रेमी ने सौ का नोट निकाला और मुन्नवर को दिखाता हुआ अपने होटों पर रख दिया। मुन्नवर नाचता हुई उसके पास पहुँची और एक बांकी अदा से मचल कर उसने वह नोट अपने काबू में कर लिया पर उसकी कलाई उस घायल प्रेमी की मुठ्ठियों में जकड़ी हुई थी। वह घायल प्रेमी दिवानों की तरह बोला, 'मेरी जान ! यूं ही तड़पाती रहोगी—या कभी इन होंटों को भी तर करोगी।' और यह कहते हुए उसने मुन्नवर को अपने आलिंगन में कस लिया। सारंगी का तार फिर तीसरी बार जोर से बज उठा और उसी के साथ विद्युत की भांति महिम अपने स्थान से उठकर मुन्नवर को छुड़ाने लगा।

घायल प्रेमी मुन्नवर को छोड़ शेर की भांति दहाड़ता हुआ महिम पर टूट पड़ा। एक घूंसा उसकी कनपट्टियों पर कसता हुआ बोला, 'नामाकूल—महफिल के हुस्न को अपनी मलकियत समझे ठैठा है।'

महफिल में शोर शराबा मच गया। कई आवाजें एक साथ मुन्नवर के कानों में पड़ रही थी। कोई कह रहा था कि इसी की वजह से महफिल में फिसाद होना शुरु हुआ, तो कहीं से ताने कसे जा रहे थे कि खुद तो जूते रखने की दुअन्नी भी नहीं देता, सब महिम को ही गुनहागार बता रहे थे। उधर महिम बेहोश हो पास ही मुन्नवर के कदमों में पड़ा हुआ था। मुन्नवर प्रथा अनुसार तमाशबीनों को बिना दुआ सलाम किये महिम को सहारा देती हुई फुर्ती से अन्दर अपने कमरे में ले गयी। जाते-जाते उसके कानों में उस्ताद के शब्द सुनाई दिये।

'सारंगी के तीन तार तो टूट गये' और फिर उसके बाद एक जोर का ठहाका मारते हुए उस घायल प्रेमी का प्रत्युत्तर भी 'बाकी तार भी टूट जायेंगे। साज का बजना तो अब शुरू हुआ।'

मुन्नवर महिम को पलंग पर लिटा कर फिर बाहर आई। तमाश-बीन सब जा चुके थे। उस्ताद के हाथ में दस-दस के पाँच नोट रखती हुई बोली, 'उस्ताद जी! डाक्टर को बुला लाओ। तुम्हें और इनाम दूंगी। और हाँ इस बाबू को लेकर तुम्हारे और मेरे बीच जो कुछ कही सुनी हुई उसे अपने दिल से मिटा दो। मैं अपना रास्ता बदल लूँगी।'

उस्ताद ने सुना तो उसका सीना फूल गया। मुस्कराता हुआ वह विजयोल्लास में मन्थर गति से सीढ़ियां उतरने लगा।

'जरा फुर्ती से उस्ताद जी,' मुन्नवर फिर बोली।

अभी लो मुण्नवर बाई, 'कहता हुआ उस्ताद तेज कदम बढ़ाता हुआ चला गसा।'

मुन्नवर लौठ कर अपनं कमरे में आई ओर महिम की छाती में सिर रखकर फफक-फफक कर रो पड़ी। न मालूम कितनी देर से उसने अपनी षीड़ा को रोक रखा था।

महिम को उसके रोने का आभास हुआ तो बोला, 'वह क्या मुन्नवर? ये आँसू क्यौं गिरा रही हो।'

महिम के शब्दों ने उसे ओर छू दिया और वह महिम के बालों और गालों पर हाथ फॅरती हुई अश्रु झड़ी बहाने लगी। रोते हुए बोली 'यही फर्क है तवाइफ में और घर की औरत में। तबाइफ से मोहब्बत करने का करने का अन्जाम देख लिया आपने। मैं तो तवाइफ थी, मेरी आबरू की फिक्र कर क्यों तुमने यह मुसीबत मौल ली?' महिम मुन्नवर के अन्तरस्थल से फूट कर निकली हुई आत्मीयता की पराकाष्ठा को अनुभव कर अपनी पीड़ा भूल गया। उसे महसूस हुआ कि मुन्नवर पहले स्त्री थी और फिर वेश्या। उसकी अन्दर की स्त्री शायद इस

समय तीव्र पीड़ा में कराह रही थी , शायद इस समय तवाइफ का उस के अन्दर नामों निशान न था ।

मुन्नवर फिर बड़बड़ाई, 'यह सब उस्ताद की करतूत है। मैं उसे जरूर मजा चखाऊँगी—लेकिन इस समय कैसे अपने आप को तसल्ली दू ?'

महिम मुस्कराया। धीमे स्वर में बोला, 'मुन्नवर ! बदला लेने की भावना छोड़ दो। यह वैश्यालय है। चिनगारियाँ परस्पर टकरा कर प्रचण्ड ज्वाला का रूप ले लेंगी। यह स्थान तुम्हारे योग्य नहीं है। तुम मेरे साथ चलना।'

'कहां ?'

'मेरे घर मेरी धर्मपत्नी—वीवी बन कर।'

मुन्नवर का रोना बन्द हो गया। महिम के वक्ष से सिर उठा कर वह गौर से उसका मुँह देखने लगी। मन्द स्वर में बोली, 'बाबू ! तवाइफ जरूर हूँ लेकिन इतने खतरनाक मजाक की मुस्तहिक नहीं । तवाइफ आवरू नहीं रखती पर उसके जिगर में दर्द जरूर होता है। तुम इस हकीकत से वाकिफ होते तो यूँ मजाक न करते।'

महिम गम्भीर हो बोला, 'मजाक नहीं मुन्नवर—यह मेरा संकल्प है जिसे कर्तव्य की कसौटी पर चढ़ाना चाहता हूं।'

मुन्नवर बोली, 'हर नामुमकिन इरादा फक्त एक मजाक ही है और फिर यह मजाक तो काबिले यकीन भी नहीं–अमलीजामा पहनाने की बात तो दूर रही।'

महिम बोला, 'मुन्नवर यदि तुम मेरे संकल्प पर यूँ शंका करोगी तो मैं समझूंगा तुम मेरे प्रेम का परिहास कर रही हो। मैं निश्चय कर चुका हूँ और चाहता हूँ कि इस रात के विदा होते ही तुम्हारी कालिमा भी घुल जाय। कल जब प्रातः क्षितिज पर सूर्य मुस्कराये तो तुम भी इस नर्क से विदा लेकर नये जीवन में पग रख मुस्कराओ। बाहर की दुनिया तुम्हारी मुस्कान से खिल उठे। तुम्हारे जीवन के

क्षितिज से भी आभा बिखरे और मेरा पथ आलोकित हो उठे। बोलो तत्पर हो इस महा प्रयाण के लिए ?'

महिम का मुख दीप्त था। मुन्नवर ने उस तेज को देखा तो आंखें मीच कर उसकी छाती पर लुढ़क पड़ी। उससे कुछ न बोला गया। उसकी आंखों के सामने एक भयंकर झंझावात चल रहा था। उसे लगा मानो आकाश से प्रलय की वृष्टि हो रही हो और उस वृष्टि से बाजारों और गलियों में मानो पानी ही पानी हो गया हो। शहर के गन्दे नालों में उसे सैलावी सा दिखाई दिया और फिर महसूस हुआ मानो महिम उसे पकड़ कर उन सैलावी गन्दे नालों के पार सा ले जा रहा हो जहां बिल्कुल भी कीचड़ न था; स्वच्छता ही विराज रही थी।

मुन्नवर से कोई उत्तर न पा कर महिम गुस्से में बोला, 'मुन्नवर! उत्तर क्यों नहीं देती ?'

मुन्नवर ने सिर उठाया और कातर स्वर में बोली, 'जैसा तुम कहोगे वैसा हा करूंगी बाबू। मैं अब अपने काबू की नहीं रही। मेरे दिल और दिमाग पर तुम्हारा कब्जा हो गया। नेकी और बदी...में कुछ भी नहीं समझ पा रही।'

महिम ने सुना तो उसकी गर्दन नीचे कर अपने वक्ष से चिपका दी।

थोड़ी देर बाद डाक्टर को ले कर उस्ताद आ गया। कनपट्टी पर लगी चोट की परीक्षा कर वह मरहम पट्टी कर गया और फिर उस्ताद के साथ वापिस चला गया।

मुन्नवर ने अब अन्दर से चटखनी लगा दी और पलंग पर ही महिम के पास बैठ गई।

महिम का माथा दवाते हुये बोली, 'अब दर्द कैसा है ?'

महिम हँसा और बोला, 'तुम तो राई का पहाड़ बना रही हो। थोड़ी सी ही तो चोट आई है। बिना मरहम पट्टी के भीं आराम आ ज़ाता।'

मुन्नवर कुछ न बोली।

कुछ देर कमरे में खामोशी रही। दोनों गम्भीर चिन्तन में लीन थे। आखिर उस खामोशी को तोड़ते हुए महिम बोला, 'मुन्नवर ! एक बात पूछूं ?'

'क्या ?'

'तुम वेश्या कैसे बनी ?'

मुन्नवर वैसी ही बैठी रही। कुछ नहीं बोली।

महिम ने फिर प्रश्न किया, 'बताओगी नहीं मुन्नवर ?'

'क्या करोगे जान कर ?'

'वैसे ही ! तुम्हारे बताने में हर्ज क्या है ?'

मुन्नवर के मुख पर अचल गम्भीरता व्याप्त थी और आँखों में स्थिर नैराश्य। उसने एक बार महिम को देखा और फिर कमरे की छत पर टकटकी लगाये हुये बोली, 'मैं बेसहारा हो गई थी। धोका दे कर यहाँ लाया गया।'

महिम उसके सिर पर हाथ रखते हुये बोला, 'विस्तारपूर्वक बताओ। क्या तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं।'

'अब कोई भी नहीं। बाप तो पहले भी नहीं था लेकिन अम्मी जरूर थी। वह इसी शहर में एक मुहल्ले में रहती थी और कहारन का काम कर अपनी गुजर बसर करती थी। करीब आठ दस घर थे जहाँ वह बर्तन मांजने जाती थी। कोई आठ रुपये तो कोई दस रुपये माहवार दे देते थे। मुझे याद नहीं कि उ।का यह धन्धा कब से चला आ रहा था। मैं ने जब से होश सम्भाला तो उसको यही धन्धा करते हुये देखा।'

'तुम्हारी अम्मी अकेली ही रहती थी। तुम्हारे पिता···?'

'मैं कुछ नहीं जानती। मेरे अब्बाजान थे भी या नहीं। फक्त मैं और मेरी अम्मी ही एक छोटी सी अन्धेरी कोठड़ी में गुजारा करते थे। न तो मैं ने अब्बाजान को कभी देखा और न अम्मी ने ही कभी

उनके मुतलिक कुछ बताया। कैसे कहदूं कि फिर वे जिन्दा थे। होते तो अलग क्यों रहते। और फिर अम्मी को भी क्या ज़रूरत पड़ी थी कि घर-घर जा कर लोगों के बर्तन मांजती। मुमकिन है मेरे अब्बाजान का मेरे होश सम्भालने से पेश्तर ही इन्तकाल हो गया हो। मेरा तो यही अन्दाजा है।'

महिम बोला, 'मुन्नवर! तुम्हारी अम्मी कुछ खूबसूरत भी थी?'

मुन्नवर के होठों में काफी देर बाद अब हंसी दिखाई दी। मुहब्बत भरी नजर महिम पर डाल कर बोली 'मुझे देख कर अम्मी के हुस्न का अन्दाजा लगा रहे हो?'

महिम कुछ सोच रहा था। चिन्तनशील मुद्रा में बोला, 'हां तुम्हारा कहना भी ठीक ही है पर यह प्रश्न मैंने इस लिए किया कि तुम्हारी अम्मी जरूर कुछ हसीन रही होगी जिसके हुस्न पर फिसल कर कोई तुम्हारी अम्मी को अपनी निशानी दे गया है।'

मुन्नवर आश्चर्य में चौंक पड़ी, 'निशानी से आपका मतलब मुझ से है?'

'यह मुमकिन हो सकता है।'

मुन्नवर कुछ देर उसी तरह आश्चर्यवत सोचती रही फिर अविश्वास में गर्दन हिलाती हुयी बोली, 'नहीं यह मुमकिन नहीं। अम्मी बड़ी ऊंचे चाल चलन की हसीना थी। गर ऐसी नहीं होती तो वह उस अंधेरी कोठरी में गुजर न करती। और फिर चाहे वह वहाँ ही रहती, जरूर उसके चाहने वाले उसकी फिराक में कभी कभार वहां तशरीफ लाते ही। पर वहां मैंने कभी किसी को आते न देखा।'

महिम बोला 'मैं तुम्हारी अम्मी के चरित्र को लांछित नहीं कर रहा। मेरा कहना तो यह है कि वह किसी से मुहब्बत कर अपनी अस्मत लुटा बैठी हो और मुमकिन है फिर उससे फरेब किया गया हो वरना ऐसा नहीं होता तो जरूर तुम्हें पैदा करने वाला या तो तुम्हारी अम्मी को अपने ही पास रखता अन्यथा कभी न कभी तो उसकी सुध

लेने तुम्हारे घर आता ही।'

मुन्नवर सोचती हुई बोली 'पर यह भी तो मुमकिन है कि मेरे अब्बाजान मेरे पैदा होते ही फौत हो गये हों।'

महिम ने शंका, की 'यदि ऐसा होता तो तुम्हारी कुछ तो शाख होती। और फिर तुम्हारी अम्मी कभी न कभी तो तुम्हारे अब्बाजान का जिक्र करती। तुम्हारे रिश्तेदार होते। तुम यूं बिल्कुल वेसहारा न होता।'

मुन्नवर को महिम की शंका निर्मूल न लगी। उसे भी कुछ-कुछ विश्वास हो चला कि महिम का कहना ठीक हो। वह बोली, 'क्या बताऊँ क्या कुछ था। बड़ी होती तो अम्मी से कुछ पूछती। अब तो फक्त इतना ही जानती हूँ कि सिवा अम्मी के मेरा और कोई नहीं था। जब वह मरी तो मैं १५ साल की थी। उसके रहते हुए तो कोई भी मेरा बाल बांका नहीं कर सकता था। करता भी कोई कैसे। अम्मी खुद इतनी नेक चलन और दिलेर औरत थी कि कहारन होते हुए भी उसकी इज्जत और आवरू में फर्क नहीं आया था। जहां भी वह बर्तन मांजने जाती—किसी की मजाल क्या थी कि उसकी तरफ भद्दी नजर डाले। घर की बीवीयाँ उसके हुस्न को देख कर जल उठती थी। पर उसकी आव को देख कर मन में हार मान जाया करती थी उनके खाविन्द भी अम्मी के चेहरे की उस आव को देखते तो बजाय उसके हुस्न पर नजर डालने के, उसके तौर तरीकों को देखते थे। कभी भी उनके दिमाग में शायद अम्मी क मुताल्लिक नापाक ख्यालात नहीं आये। हर घर में उसका वे रोक टोक आना जाना था। बीवीयाँ—अम्मी के हुस्न से पहले चाहे जल भुन उठी हों पर बाद में वे वेखौ और वेफिक्र हो गईं। अम्मी काटने वाली नागन नहीं थी, दिवारों पर रेंगने वाली छिपकली थी। किसी भी बीवी को—उसके हुस्न से अपने कैखाविन्द के डसे जाने का गुमान नहीं था। ऐसी औरत की फिर इज्ज फर सेन होती,। मैं उसी इज्जतदार औरत की वेटी थी। जहाँ वह जा

मुझे भी साथ ले जाती। जब मैं थोड़ी वड़ी होकर काम करने लायक हुई तो फिर मैंने भी उसकी मदद करनी शुरू कर दी। पांच चार घरों में हमारा धन्धा और वढ़ गया। मुझे भी घरों के मालिक और बीवीयां बेटी के मुवाफिक समझते। केवल एक घर था जिसकी वजह से मेरी यह गत हुई। वह घर बड़ा अमीर था। पहले अम्मी और दोनों मैं ही वहां काम करने जाया करते थे पर फिर कुछ घरों में अम्मी मुझे अकेली भेज देती थी और बाकी कुछ घरों को खुद ही सम्भालती। जिस घर का मैं जिक्र कर रही हूं एक इज्जतदार घर था। उस घर के मालिक और बीवी भी निहायत उम्दा किस्म के आदमी थे—रहमदिल, नेक चलन और गरीब परवर। पर उनके यहां एक बद चलन अवारा किस्म का जवान भानजा आया हुआ था। पहली ही मुलाकात में मुझे देख कर उसकी आँखों में शैतान नाचने लगा। उसकी तीखी नजर मेरे सीने पर जाकर रुकती और फिर वहां ही ठहर जाती। मैं इन वातों से पहले बिल्कुल अनजान थी। उस भेड़िये को जब इस तरह घूर-घूर कर अपनी ओर देखती तो फिर खुद ब खुद उसका कारण मेरी समझ में आ गया। मुझे पहली वार पता चला कि मेरे जिस्म में जवानी की रंगत आनी शुरू हो गयी थी। इस ख्याल ने मेरी शोखी छीन ली। मैं अब झुकी-झुकी पलकों को लेकर कुछ इतरा कर चलती, मानो किसी के छू जाने से टूट न जाऊं बिना अम्मी के वताये मैंने अब चुनरी पहननी शुरू कर दी थी। उस घर के दरवाजों पर आकर पहले मैं यही देख लेती थी कि मेरा सीना ठीक तरह चुनरी से ढका हुआ है कि नहीं। कहने का मकसद यही है कि मैं इस सच से नावाकिफ नहीं थी कि अब मैं उस उम्र में कदम रख चुकी हूँ जिस उम्र में लोगों का वर्ताव तो वही होता है पर मकसद बदल जाते हैं, नजरें वहीं होती हैं—पर उनके अन्दर छुपी ख्वाहिशें और होती हैं।

'उस आवारा किस्म के नौजवान को देख कर मुझे ये सत्य और साक्षात नजर आने लगा। मैं चुप चाप अपना काम करती और लौट

आती। उसकी प्यासी नजरें मेरा पीछा किया करती। वह कभी किसी बहाने तो कभी किसी बहाने चौके में चला आता और एक साथ मज़ाक कर जाता। मुझे बहुत नागवारा न लगता पर एक दिन उसने मखौल ही मखौल में मेरे गाल छू दिये। मुझे बुखार सा आ गया। मैंने उसके हाथों को एक झटका देकर अलग कर दिया और कांपती हुई काम पर लग गई। गरीबी और अमीरी में उतना फर्क धन दौलत का नहीं जितना फर्क इस बात का है कि गरीब की इज्जत—बेकिले की होती है, उस पर जब चाहो हमला कर दो। रौंद कर उसे नेस्तोनाबूद किया जा सकता है। अमीर की आबरू-किलेदार होती है। पहले तो हमला करना ही दुश्वार होता है—और अगर उसपर कोई हमला करना भी चाहे तो उस हमले का अन्जाम हमलावर के हौसले को पहले ही पस्त कर देता है। जिस गरीब की आबरू पर हमला करने से कोई खौफ खाता है, वह चाहे फाका क्यों न करता हो, दरअसल गरीब नहीं है। गरीब और अमीर की तो मैं यही पहचान समझती हूँ। मेरी अम्मी दौलत की गरीब जरूर थी पर आबरू से गरीब नहीं थी। उसकी आब उसका किला थी। और मेरा किला मेरी अम्मी थी। जब तक मेरी अम्मी जिन्दा रही वह शैतान मुझ से छेड़ छाड़ तो जरूर करता था पर फिर भी उसे खौफ बना ही रहता कि मुझ पर हमला कर देने का अन्जाम-खौफनाक हो सकता था।'

मुन्नवर की आंखों से आंसू बहने लगे। रोनी सी आवाज में बोली 'जाड़ों का मौसम था—मेरी मां को निमोनिया हो गया और वह एक दिन मुझे अकेला छोड़ कर चल बसी। मेरा क़िला टूट गया। मैं बे सहारा हो गई। मेरे ऊपर पहाड़ टूट पड़ा था। कोई हमदर्द होता तो उसकी गोद में सिर रख कर शायद खूब रोती पर उस समय मैं दुनियां में अकेली रह गई थी। मेरी आँखों से एक भी बूंद पानी का नहीं टपका। जिनके घर मेरीं अम्मी बर्तन मांझती थी, उन्हीं में से किसी ने हिन्दू मजहब के मुताबिक मेरी अम्मी का शव जमुना के हवाले किया।

'तो तुम्हारी अम्मी हिन्दू थी ?' महिम बोला ।

'पक्की मजहबी ख्यालात की औरत थी । सुबह तुलसी के पौधे को पानी दिया करती तो शाम को रामायण का पाठ किये बिना खाना नहीं खाती थी । वह मोटी सी किताब अभी भी मेरे पास है-केवल यही एक निशानी है अम्मी की जिसे अभी भी मैं बड़ी हिफाजत से अपने पास रखती आई हूं ।'

'लेकिन तुम्हारा नाम तो—हिन्दुओं का सा नाम नहीं है ।'

'मेरा नाम मृणाल था—यहां की बड़ी बाई ने बदल कर मुन्नवर रख दिया ।'

महिम ने 'मृणाल' नाम सुना तो न जाने क्यों उसके रोंगटे खड़े हो गये । उसके होंट बुदबुदाये 'मृणाल' आह ! कितना प्यारा नाम है—साहित्यिक-उच्च कोटि का साहित्यिक नाम । वह फिर बोला, 'तुम्हारी अम्मी का क्या नाम था ?'

'शायद मृदुला था । लेकिन जिन घरों में वह बर्तन मांझती थी वहां उसे मीदू बाई कहते थे ?'

'तुम्हारी अम्मी कुछ पढ़ी लिखी भी थी ?'

'ये तो खुदा जाने कि कहां तक तालीम याफ्ता थी पर लिखना-पढ़ना हिन्दी में खूब आता था । कहा नहीं मैंने कि इस मोटी किताब को खूब पढ़ लेती थी । लिखती भी खूब थी । दिखाऊं उसकी वह कापी जिसे वह दोपहर रात बीते बाज वक्त लिखा करती थी ?'

महिम की उत्सुकता बढ़ती गई । 'जरूर' वह बोला ।

मुन्नवर पलंग से उठी और कमरे के कौने पर लगी हुई मेज की दराज से चाबियों का गुच्छा निकाल कर पलंग के नीचे रखे हुए सन्दूक को खोलने लगी । थोड़ी देर बाद एक मोटी सी पुस्तक और एक कापी महिम के हाथ मैं देती हुई बोली 'यही है अम्मी की निशानी या धरोहर जो कुछ भी समझो ।'

महिम ने पुस्तक खोली । वास्तव में तुलसीदास की रामायण थी ।

पहले ही पृष्ट पर लिखा हुआ था—'उपहार के रूप में जीवन संगनी को' नीचे भेंट करने वाले के हस्ताक्षर थे पर वह इतनी घसीट में लिखे हुये थे कि महिम पढ़ न पाया।

उसकी आँखों में कौतुहल और आश्चर्य था। उसी आश्चर्य की मुद्रा में वह बोला. 'मन्नवर ! तुम्हारा कहना ठीक था। तुम्हारा जन्मदाता कोई प्रेमी न होकर तुम्हारा पिता ही था। यह पुस्तक तुम्हारी अम्मी को बतौर तोफे के भेंट की गई थी। उनका वास्तव में देहान्त ही हो गया होगा। पर तुम्हारे कोई 'रिश्तेदार-आदि तो होते ?'

मुन्नवर निरुत्तर रही।

महिम सोचता गया। थोड़ी देर बाद बोला, 'शायद वह इस शहर में न रहते हों। किन्हीं प्रतिकूल परिस्थितियों में उनकी शादी हुई हो और उन्हें घर छोड़ शहर में बसना पड़ा हो। छोड़ो इन बातों को।'

उसने वह किताब बन्द की और फिर कापी हाथ में लेकर उसके पन्ने टटोलने लग गया।

'उसकी आंखों में अब पहले की उपेक्षा और तीव्र आश्चर्य था। वह प्रत्येक पृष्ठ पर सरसरी दृष्टि दौड़ाता हुआ बोला, 'मुन्नवर ! मेरा अनुमान भी कुछ हद तक सही था। तुम्हारा पिता—कोई निर्दयी व्यक्ति था जो सम्भवतः तुम्हारी अम्मी को धोखा दे गया।

इस कापी में तुम्हारी अम्मी ने वह दर्दभरे गीत लिखे हैं जो न केवल उनके शिक्षिता होने की साक्षी देते हैं अपितु उनके अन्तरस्थल के मर्म का भी दिग्दर्शन कराते हैं। प्रत्येक गीत में विरह का सजीव चित्रण मिलता है। आश्चर्य है कि कैसे मृत्यु पर्यन्त इतना बड़ा व्यक्तित्व रहस्य ही बन कर रह गया। लोग क्या तुम्हारी अम्मी को कहारन ही समझते चले ? किसी को भी क्या उनके इस विशाल व्यक्तित्व का पता न चला। वह अवश्य बड़ी दर्प वाली स्त्री रही होगी और उसी पर आखिर मर मिटी।'

महिम कापी के पृष्टों को पलटते हुए फिर बोला, 'ऐसा मालूम

पड़ता है कि कहारन बनकर वे प्रेम की मौन साधना करती रही। उनकी सम्भवतः और कोई आकांक्षा न रही। इन गीतों को लिखने में उन्होंने बाकी सारी दुनियां को भुला दिया। केवल अपने आराध्य को ही मन में प्रतिष्ठित रखा। कितनी असाधारण रही होगी तुम्हारी अम्मी।'

महिम कुछ देर फिर सोचता रहा और बोला, 'मुन्नवर ! तुम्हारी अम्मी तो इतनी तपी हुई उच्च कोटि की साहित्यिक थी। तुम्हें कुछ भी पढ़ा लिखा न सकीं ?'

मुन्नवर बोली' 'इतना उसके पास समय ही कहां था—सुबह ७ बजे से दोपहर २ बजे तक और फिर शाम के ६ बजे से रात के ६-१० बजे तक तो काम धन्धा करना ही पड़ता था। पढ़ाती कहाँ से। फिर भी ये बात नहीं कि मैं बिल्कुल ही अनपढ़ हूं। यहाँ आकर मैंने उर्दू पढ़ी है।'

'हिन्दी तो नहीं जानती।'

'समझती खूब हूँ। मुंह पर हिन्दी के अलफाज नहीं चढ़ते। कुछ यहाँ की फिजा ही ऐसी है। अम्मी के पास जब थी, तब उर्दू बिल्कुल नहीं जानती थी।'

कुछ देर के लिए फिर दोनों चुप हो गये। आखिर फिर महिम ने ही चुप्पी तोड़ी। बोला. 'तुम्हारा किस्सा तो अधूरा ही रह गया कि तुम्हें यहां कैसे लाया गया।'

मुन्नवर फिर चेतन हो उठी। बोली, 'हां उस आवारा नौजवान की बात कर रही थी न। जब मम्मी गुजर गई तो उस घर के मालिक और बीवी ने मुझे अपने ही पास नौकर रख लिया। न मालूम उस जालिम ने सिफारिस की थी या उन्हें ही मुझ पर रहम आया हो। दर-दर की ठोकर खाने से एक ही जगह नौकरी करना बेहतर था। मुझे भी अच्छा लगा और मैं उस घर में ही रहने लगी। अब उस जालिम के पौ बारह हो गये थे। जब चौके में अकेली होती, तब बेखौफ मुझे

जलील कर जाता। दिन व दिन उसकी ज्यादतियां बढ़ती ही जा रही थी। मुझे इतनी हिम्मत न हुई कि घर की बीवी से शिकायत कर सकूँ। वह बदमाश किसी बड़े अमीर जमींदार का लड़का था। खुद उसके मामा मामी उससे अदब से पेश आते थे। वह शायद किसी कौलेज में पढ़ता था। तभी तो इतना शौख, बेशर्म और बेहया था। एक दिन जब काफी रात बीते मैं काम धन्धे से फारिग होकर अपनी कोठरी में सोने की तैयारी कर रही थी तो वह बेरहम आ टपका और अन्दर से कोठरी की चटखनी चढ़ाने लग गया। मेरे होश हवास गुम हो गये। समझ गई कि जालिम मेरी आबरू पर हमला करने आया है। मैं पसीने से तर बतर हो गई। कांपते हुए बोली 'ये बात अच्छी नहीं है। मैं बीवी से शिकायत कर दूंगी।

वह चटखनी चढ़ाकर भूके बाघ की तरह मेरी ओर लपका। मेरे अन्दर भी मुकाबिला करने की ताकत आ गई थी। उसने मुझे पकड़ा तो मैं उसकी कलाई पर जोर का दांत काट कर दरवाजे की चटखनी खोलती हुई—कोठरी से बाहर आ गई। बीबी के कमरे की ओर दौड़ी कि शिकायत करूं? पर वह अन्दर से बन्द था अलबत्ता रोशनदानों से बिजली की रोशनी बाहर आ रही थी। मैं ठिठक गई। सोचने लगी कि इतनी रात बीते मालिकन को जगाना कहाँ तक दुरुस्त है। इतने में वह मरदूद आकर मेरे कदमों में लेट गया और मुआफी माँगने लगा। मैं कतई भी उसे मुआफ न करती पर हालात ने मुझे सब्र करने पर मजबूर कर दिया था। वह काला मुंह लेकर चला गया और मैं फिर अपनी कोठरी में आकर बत्ती बुझा कर लेट गई। मेरी साँसों में तेजी थी। खून खौल कर लग रहा था मानो गालों से टपक पड़ेगा।

अम्मी का गुजर जाना उस दिन मुझे बहुत खला। उसके उठ जाने से मैं बेपनाह हो गई थी—इसका गुमान मुझे उस रात को हुआ और तभी मैं रोई—इतना रोई कि मेरा सारा दर्द पानी बन कर आंखों से खारिज हो गया। मैं अपने-परायों के लिए तड़फ उठी। सोचती कि

काश मेरा कोइं अपना होता और मुझे पनाह बख्शता। पर मेरी तड़पन उस इन्सान की चीखो-पुकार के मुआफिक थी जो किसी वीरान जंगल के किसी गहरे कूंये में पड़ा हुआ जिन्दगी की दुआ माँगता हो। लेकिन एक दिन ऐसे लगा कि खुदा ने मानो मेरी सुन ली हो। एक अधेड़ उम्र की औरत एक मर्द को लेकर–मेरा नाम पूछती हुई उस घर में आई। बीबी से बात हुई तो उसने बताया कि वह अम्मी की जीजी थी। उसने अम्मी की मौत पर आंसू भी बहाये, छाती भी पीटी और न जाने क्या-क्या मसखरे किये। मैं वेसब्र हो चली। उसकी छाती से चिपक कर फफक-फफक कर रोने लगी। बीबी को ही क्या, किसी को भी उसके इन मसखरों पर कोई शुबाह नहीं हुआ फिर भी जब उसने मुझे अपने साथ ले जाने की तजवीज पेश की तो बीबी ने ऐतहात के तौर पर उसी जालिम भानजे को मेरे साथ कर दिया ताकि तसल्ली रहे कि कोई बेजा बात न हो। मैंने अपनी दरी चादर समेटी और अम्मी की ये दो निशानियां साथ लेती हुई खुशी-खुशी उस औरत के साथ चल दी। साथ में वह मक्कार भी था। कुछ दूर आकर जब उस औरत ने एक टैक्सी की तो मुझे कुछ हैरत सी हुई। क्या अम्मी की जीजी इतनी दौलत वाली हो सकती थी कि ताँगा छोड़ टैक्सी का भाड़ा दे सके ? लिबास और पहनावे से तो वह दौलतमन्द नजर नहीं आती थी।

पर मैंने इन चीजों पर गौर करना फिजूल समझा ; उल्टे जब मैं टैक्सी में चढ़ने लगी तो फख्र से मैंने एक नजर उस शैतान पर भी डाल दी मानो उसे जता दिया कि वह मुझे कहारन की बेटी ही न समझे, मैं दौलतमन्दों की रिश्तेदार भी थी। टैक्सी मुझे यहाँ ले आई और मुझे उस कमरे में टिकाया गया जहां उस्ताद रहता है। वह औरत और कोई नहीं, चुड़ैल, इसी कोठे की मालकिन थी जिसे बड़ी बाई कहते थे। ये सब माजरा मेरी समझ में तब आया जब रात को मुझे इसी कमरे में लाया गया।

वही शैतान फिर आया हुआ था और बड़ी बाई से सौदे की बातें

चल रही थीं। बड़ी बाई मेरी नथ तोड़ने के एक हजार रुपये मांग रही थी और वह पांच सौ पर इसरार कर रहा था। आखिर आठ सौ पर सौदा तय हुआ और बड़ी बाई रुपये गिन कर बाहर चली गई।

मैंने यह सौदा तय होते देखा तो—ऐसा मैहसूस किया मानो मेरे पैरों के नीचे की जमीन खिसक रही हो। वह शैतान अब मुस्कराता हुआ मेरी ओर वढ़ा और बोला, 'कितना लम्बा चक्कर लगवाया है तू ने भी। निभ तो वहां भी जाती पर तेरा दिल तंग निकला। मुझे तू ने देख ही लिया। कितना दिलदार हूं। तेरे ही सामने पूरे आठ सौ गिने हैं।'

वह बोले जा रहा था और मैं होश खो रही थी। तो क्या यह सब इसी शैतान की साजिश थी ? क्या वही इस चुड़ेल से गुफ्तगू कर मुझे इस जहन्नम में घसीट लाया था ?

मैं कुछ न बोल सकी पर मेरी भौवें तन गई। आँखों से अचानक अंगारे वरसने लग गये। सारा जिस्म फौलाद के मुआफिक सख्त हो गया। शायद वेहोशी की हालत थी वह या पागलपन। उसी पागलपन में मैं दांत पीसते हुये आगे वढ़ी—मानो उसे चबा जाऊंगी। उसने मेरी वह डायन की सी हरकत देखी तो चीख उठा, 'उस्ताद ! अन्दर आओ।'

दरवाजा खुला और एक काला कलूटा पहलवान अन्दर आ गया। उसके मुख पर दैहशियत थी और हाथों मैं चाबुक।

'क्यों, नहीं मान रही ?' उसने पूछा।

'यह तो मुझे नोच खायेगी।' यह बौला।

'वेफिक्र रहें आप। सब ठीक किये देता हूँ कहते हुये उसकी चाबुक बिजली की मांनिन्द मुझ पर टूट पड़ी। तड़ तड़ कर नजाने कितने वार उसने किये। मेरी आंखों के सामने अन्धेरा छा गया और मैं गश खाकर फर्श पर लुढ़क पड़ी। जब मुझे होश आई तो मैं नंगी पलंग पर लेटी हुई थी और रोशनदान से घूप की रोशनी इस वात का सबूत दे रही थी

कि सुवह हो चुकी थी। मेरे जिस्म पर चावुक के नीले डोरे नजर ग्रा रहे थे। जिस्म का हर हिस्सा दुख रहा था पर उस वेशर्मी की हालत में लेटे रहना मुझे गवारा न लगा। किसी तरह उठ कर मैं ने ग्रपने कपड़े पहन लिये जो करीव ही पड़े हुये थे ग्रौर ग्रपनी हालत का सही ग्रन्दाजा लगाने लग गई। ग्रब मैं वे ग्राब—वे मुरव्वत—जलील ग्रौरत थी जिस की ग्रस्मत लुट चुकी थी। ग्रब खौफ, हया, शर्म—किसी की भी मुझे जरूरत न थी क्योंकि जिस नूर की हिफाजत के लिए ये सव होते हैं वह लुट चुका था। मैं वह चिराग थी जिसकी लौ जाती रही—वह फूल थी जिसकी खुशबू उड़ गई।

मुन्नवर की ग्रांखें सूज गई। लगातार ग्रांखें पोंछते-पोंछते रूमाल भी तर हो गया।

वह फिर बोली, 'वाबू! इसी लिये जब भी मैं किसी शख्स को बेहया हो मजाक करते देखती हूं तो मेरा तवाइफपन उसे लूट लेने को उछलने लगता है। मेरी यह हसरत उन्हें नेस्तोनावूद करने के लिये मचल उठती है। मैं खूब नाचती हूँ, खूब मटकती हूँ ताकि वह मेरे चँगुल से किनारा न कर सकें। केवल तुम्हीं एक शख्स ऐसे ग्राये कि तवाइफ को देख कर खुद शर्म करने लगे। मुझे मैहसूस हुग्रा कि लोग मुझे नंगा देखना चाहते हैं, पर तुम मेरे नंगेपन से शर्म खा कर उस पर कपड़ा डालने की ख्वाहिश लिए बैठे थे। तुम्हारी उस घुड़की ने मेरे तवाइफपन को ग्रौर भी पस्त करके रख दिया।'

रात काफी बीत चुकी थी। मुन्नवर ने ग्रब बोलना बन्द कर दिया था। दोनों चुपचाप फिर कमरे की छत पर नजर गढ़ाये ग्रपने-ग्रपने विचारों में लीन थे।

कुछ देर बाद महिम बोला, 'मुन्नवर ग्रब बिजली बुझा दो।'

मुन्नवर उठी ग्रौर स्विच बन्द करती हुई पुनः पलंग पर ग्रा कर लेट गई।

थोड़ी देर बाद महिम बोला, 'कल सुबह अपना जो भी जरूरी सामान हो—सब बन्द कर तैयार हो जाना। यहाँ से सीधे आर्य समाज मन्दिर चलेंगे। फिर व्याह की रस्म पूरी कर रात को मेरे घर।'

मुन्नवर ने सुना तो महिम के वक्ष से चिपट गई।

३

महिम का स्कूल दो माह के ग्रीष्मावकाश पर बन्द हो गया था। इससे पहले प्रत्येक वर्ष वह छुट्टियां बिताने गाँव चला जाता था पर इस साल महिम ने दिल्ली में ही रुकना ठीक समझा। उसका कारण भी था। महिम ने अभी तक अपने घर वालों को मुन्नवर के साथ अपनी शादी की बात नहीं बताई थी। वह जानता था कि उसके माता पिता उसके इस कृत्य से विभ्रान्त ही उठेंगे। कारण एक तो यह था कि किसी भी माता पिता केलिए पुत्र वधू के रूप से एक वैश्या को ग्रहण करना असम्भव सी बात थी और दूसरा यह कि उसके माता पिता महिम की पहले ही किसी अन्य लड़की से शादी की बात पक्की कर चुके थे। उसे अपने ऊपर विश्वास था पर वह जानता था कि केवल अपने विश्वास के ही बल पर समाज में प्रचलित मर्यादाओं पर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। उसके लिये आवश्यक था कि परिस्थितियाँ भी अनुकूल बनें।

क्रान्तियां तो न मालूम इतिहास में कितनी हुई पर सफल केवल वही हो सकी जिनकी कुछ प्रष्टभूमि थी। असफल पग चाहे कितनी ही नेक प्रेरणाओं और महानतम् उद्देश्यों को लेकर उठाया गया हो-महत्व

से च्युत ही रहता है। महिम को आशा थी कि मनुष्य को अन्ततः परिस्थितियों से समझौता करना हीं पड़ता है और यही आशा उसके विश्वास को पुष्ट किये थी कि उसके माता पिता भी एक दिन मुन्नवर को पुत्र वधु के रूप में स्वीकार कर ही लेंगे। वह चाहता था कि मुन्नवर के साथ शादी की बात का भेद उसके माता पिता पर तब खुले जब थोड़ा बहुत वह वातावरण को अपने पक्ष में बना ले।

इस प्रकार जब वह छुट्टियां बिताने गांव नहीं गया तो उसके पिता का पत्र आ गया जिस में उन्होंने गाँव न आने का कारण पूछा था और साथ में कुशल क्षेम भेजने का आग्रह किया था। महिम ने बहाना लगा दिया कि छुट्टियों में स्कूल के छात्रों को पर्यटन पर ले जाने का कार्यक्रम—बन गया जिसकी वजह से उसका गांव आना न हो सका। उसे फिर भी भय था कि कहीं गाँव से उसके पिता या कोई अन्य व्यक्ति टपक न पड़े।

उसने मुन्नवर से अपना भय प्रकट किया। बोला, 'यह तो सम्भव हो नहीं सकता कि दिन रात साथ रहते हुये—हमारी शादी की बात रहस्य ही बनी रहे। अस्तु मेरा तो विचार है कि अन्य कहीं स्थान लिया जाय। भोजन आदि की व्यवस्था यहीं रहेगी। मुन्नवर उसका तात्पर्य समझ न सकी। सशंकित हो बोली यूं लुक छिप कर कब तक रहोगे ? तुम्हें इतना ही खोफ था तो कोठा छुड़वाने में इतनी बेताबी न दिखाई होती। मैं तो समझती थी कि एक तवाइफ के साथ गुजर बसर करनी मुमकिन नही पर तुम खुद ही इस हकीकत से नावाकिफ बनते रहे !' महिम कुछ लज्जित सा हो चला। वास्तव में उसी के आग्रह पर तो मुन्नवर ने सकुचाते हुए वैश्यालय छोड़ा था। ऊसका आग्रह भी आग्रह सा नहीं था बल्कि फौजी आदेश सा था जिसका तत्काल पालन होता है तथा जिस पर कहीं भी, वाद-विवाद या विचार विनिमय के लिए स्थान नहीं रहता। मुन्नवर को भी इसी प्रकार उसने सोचने समझने का मौका ही नहीं दिया था। वह उसे

सम्पूर्ण रूप से उसे अपनी ही जिम्भेदारी पर लाया था। आज उसका फिर इस प्रकार सकुचाना निःसन्देह ही उसके संकल्प की दृढ़ता को पुष्ट नहीं करता था। महिम कुछ देर सोचता रहा लेकिन उसे लगा कि वह अपने संकल्प से विमुख नहीं जा रहा। मकान बदलने का प्रश्न तो केवल औचित्य का है। उसके उत्तरदायित्व और उसकी भावनाओं से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। मुन्नवर मकान बदलने के प्रश्न का फिर क्यों उसकी भावनाओं से सम्बन्ध जोड़ रही है।

वह बोला, 'मुन्नवर ! सुख सुविधा के लिए भी तो हम मकान बदल सकते हैं। यहां केवल दो कमरे और एक रसोई है। यदि एकआध कमरा और कही अन्यत्र ले लेते हैं तो इसमें कौनसी अनुचित बात है ?

मुन्नवर हंसी और बोली, 'अभी तो तुम फक्त खोफ खा कर मकान बदलने की कह रहे थे और अब आराम और अमन की बात कर रहे हो ? छोड़ो तुम भी लौंडे ही रहे।

महिम तिलमिला सा गया। बोला, 'मैं खोफ नहीं खा रहा ! यदि तुम मकान बदलने के प्रश्न का मेरी भावनाओं से संबन्ध जोड़ती हो तो यहीं रहो। मेरा तात्पर्य केवल यही था कि व्यर्थ में यदि कोइ हमारे प्यार पर छींटाकशी करना शुरु कर दे तो क्या मुझे और तुम्हें दुःख नहीं होगा। इस समय कितने आनन्द में निभ रही है। यदि मेरे सम्बन्धियों में से किसी को हमारे सम्बन्धों का वस्तुतः ज्ञान हो जाय तो अवश्यमेव कोई न कोई तूफान खड़ा हो जायेगा। क्यों इस तूफान को व्यर्थ में अमन्त्रित करें ?

मुन्नवर बोली, 'तूफान को रोकना क्या इन्सान की कुव्वत में है ? वह तो आयेगा ही। बल्कि यूं कहो कि उसके बुखारात तो उसी दिन तूफानी फिजा अखितयार कर चुके जिस दिन तुम मुझे कोठे से उठा कर ले आये। अब तो प्यारे महिम, इस तूफान का मुकाबिला करने की ताकत हासिल करो।

महिम जोश में बोला, 'मुन्नवर तुम वास्तव में मुझे बच्चा समझ

रही हो। न जाने क्यों कुछ दिनों से तुम्हें मैं निर्बल दिखाई देने लगा हूं। तूफान तो क्या, मैं स्वयं ब्रह्मा से लड़ जाने को उद्यत हूँ। मुझे कोई मेरे संकल्प से नहीं डिगा सकता। यदि तूफान आता है तो आये। मैं अपने माता पिता को छोड़ दूंगा पर तुम्हारा हाथ कभी नहीं छड़ूंगा।'

मुन्नवर की आंखें खुशी से चमक उठीं। महिम के मुंह पर हाथ रखते हुये बोली, 'बस-बस ! ज्यादा जोश ठीक नहीं होता।"

महिम मुन्नवर का हाथ हटाते हुए उसी जोश में बोला, 'नहीं मुन्नवर ! फुसलाओ मत। तुम मुझे वास्तव में कमजोर समझने लगी हो, वरना क्या मेरे प्यार तक को लांछित करती।"

महिम बोले जा रहा था कि मुन्नवर चीख पड़ी, 'हाय अम्मी—। कहां की कहां ले गये।" महिम की ओर तेज दृष्टि से देखती हुई बोली, 'तुम्हारी मुहब्बत को कब मैंने जलील किया ? जिस घोंसले पर बैठी हुं, उसी से नाउम्मीद हो जाऊँ; यह कैसे हो सकता है ? यह ख्याल ही तुम्हारे दिमाग में कैसे आया, महिम प्यारे ?'

महिम कुछ ऊत्तर देता पर मुन्नवर उसके वक्ष से चिपट कर रो रही थीं। मुन्नवर के आँसू पोंछते हुये महिम ने उसकी ठोढ़ी ऊपर उठाई और मुस्कराते हुये प्यार भरे शब्दों में बोला 'बस रो पड़ी ? और मैं भी रो दूं, तो ?'

वह दोनों फिर आलिंगनबद्ध हो गये।

महिम ने मकान बदलने का प्रस्ताव फिर आगे नहीं बढ़ाया। उसी मकान में मुन्नवर और महिम की चुहुलबाजियां चलती रही। छुट्टियाँ तो थी ही। सुबह से शाम तक दोनों साथ रहते। या तो कभी गप्पें लड़ाते हुये ही दिन गुजार देते या फिर कभी पिक्चर देखने चले जाते। महिम को यूं चौबीस घण्टे मुन्नवर का खटमल की तरह अपने से चिपके हुए अच्छा न लगता पर मुन्नवर हठ की पक्की थी। कभी प्यार से, कभी आग्रह से और कभी रो धो कर वह हमेशा महिम

को परास्त करती आ रही थी। अपने आगे वह महिम की एक न चलने देती थी। महिम का अध्ययन, मित्रों से मेल जोल, एकान्त चिन्तन, सब समाप्त हो गया था। चौबीस घण्टे उसके सामने मुन्नवर होती जो या तो एक के बाद दूसरी वैश्यालय की घटनाओं को सुनाती रहती या फिर अपनी इच्छाओं की अपूर्ति का गिला करती।

महिम झुंझला कर बोलता, 'मुन्नवर! तुमने मुझे अपनी सारी शारीरिक और मानसिक खुशियों का अवलम्बन समझ लिया है। परिणाम ये होगा कि मेरे प्रति तुम्हारा आकर्षण शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा और ये अवलम्बन फिर अवलम्बन होते हुए भी तुम्हें कोई खुशी न दे सकेगा। तुम ऐसा क्यों करती हो?'

मुन्नवर की आंखें मानो पूछ उठती, 'कि क्या मतलब है तुम्हारा ऐसा कहने का?' महिम उसे समझाता, 'प्रेम एक प्यास के समान है—प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर प्यास होती है। प्यास जब उत्तेजित होती है तब इसे शान्त करने के लिए जल लिया जाता है पर ऐसा न कर यदि कोई जलाशय में ही डूबना पसन्द करे तो क्या फिर वह अपने अन्दर प्यास का आभास करेगा। जल की प्यास हो या प्रेम की प्यास, उसका सुख उसकी तीव्रता में है। इसी प्रकार दिन और रात हर घड़ी सारी दुनियाँ की उपेक्षा कर यदि तुम भी यूँ मेरे पास बैठी रहोगी तो प्रेम की प्यास क्या होती है, इसे भूल जाओगी।'

'तो तुम्हारी मन्शाह है मैं तुम्हारे पास फटकूं भी नहीं?'

'तुम मेरे हृदय में प्रतिष्ठित हो। पास फटकने का प्रश्न ही नहीं। मैं चाहता हूँ कि थोड़ा बहुत जी बहला लिया करो। कभी चौके में चले गये तो कभी झाड़ू बुहारी कर ली। काम करने से दिल हल्का रहता है। तब तुम्हें अपने शारीरिक और मानसिक सुखों के लिए इतनी मात्रा में मेरा अवलम्बन नहीं लेना पड़ेगा।'

मुन्नवर की भौंवें कुछ वक्र हो उठती और वह उठकर चौके में चली आती और माणक को एक ओर हठाते हुए भोजन पकाने बैठ

जाती। करछूल की तेज आवाज दूर दूसरे कमरे में बैठे हुए महिम को बता देती कि मुन्नवर के मिजाज का पारा कितने सैंटीमिटर तक चढ़ जाता था। पर यह स्थिति अधिक देर तक टिकती नहीं थी। मुन्नवर या तो हाथ काट लेती अथवा कोई और नुकसान कर बैठती। महिम का मन खिन्न हो जाता। वह चौके में जाकर बोलता, 'यदि मेरी बातों का बुरा मानकर काम पर हाथ लगाओगी तो तुम्हारा कोई काम ठीक नहीं होगा।'

मुन्नवर जल उठती, 'ऐसे शरीफ बनकर क्यों नसीहत देते हो? हाथ में डण्डा लो और कमचूर निकाल दो।'

महिम आश्चर्य में बोलता 'तुम्हें कुछ कहना तो आपत्ति मोल लेना, है। न मालूम तुम्हारा मिजाज क्यों इतना बदल गया है?'

मुन्नवर बीच में टोकती हुई बोल उठती, 'मेरा मिजाज नहीं, किस्मत ही बदल गई है। जब देखो टोकते रहते हो। पास बैठने की मनाही है। काम करो तो डाट-फटकार मिलने लगती है मानो मैं रसोयन थी— जो हर काम में अव्वल रहूँ। कभी चौके में आकर तो बैठी नहीं। कोई नुकसान हो गया तो क्या हुआ।' और वह रोते हुए चौके से उठकर कमरे में जाकर पलंग पर लेट जाती। महिम का मुख खिन्न हो जाता। सोचता हुआ वह अपनी किस्मत को दोष देता। वह मुन्नवर को हृदय से प्यार करता था तो भी उसे लगता कि न मालूम कौनसी चीज उसे अखरती रहती थी। वह फिर कमरे में जाकर मुन्नवर को मना लेता और फिर माणक को मुन्नवर की सिसकियां नहीं, कह-कहे सुनाई देते। वह भी मन में हंस देता मानो कहता हो कि निराली ही है उसकी मालकिन।

एक दिन सुबह महिम और मुन्नवर दोनों सोये पड़े थे कि माणक ने दरवाजा खटखटाया और कमरे के बाहर से ही बोला, 'मालिक। आपके दोस्त आये हैं।' महिम हड़बड़ा कर उठा और मुन्नवर को जगाने लगा।'

'उठो मुन्नवर ! दूसरे कमरे में चले जाओ। मेरे कुछ मित्र आये हैं।' मुन्नवर की आंखें खुली तो लेटे-लेते सोने का उपक्रम करती हुयी बोली, 'मेरी अभी नींद नहीं पूरी हुई। सोने दो जरा—थोड़ी देर और सो लूं।'

महिम घबराया हुआ उसी तरह उसे देखता रहा।

मुन्नवर ने जरा फिर आँख खोली और महिम को हाथ से खींचती हुयी बोली, 'आओ तुम भी सो जाओ—आओ न ! कितने खराब हो तुम।'

महिम को गुस्सा चढ़ गया, बोला 'मुन्नवर होश की दवा करो, शर्म नहीं आती तुम्हें ? मैं कह रहा हूँ कि मेरे मित्र आये हैं। उठो जल्दी से। सोना हो तो दूसरे कमरे में जाकर सोओ।'

मुन्नवर ने लेटे-लेटे जवाब दिया, 'मैं नहीं उठती। तुम्हारे दोस्तों को मेरा सोना पसन्द न हो तो उन्हें कह दो कि फिर कभी तशरीफ लायें।'

महिम गुस्से से लाल हो गया पर पूर्व कि कुछ कहता, उसके मित्र अन्दर आ गये थे। वह आगे बढ़ कर उनका स्वागत करते हुए बोला, 'हां हां, अन्दर आ जाओ।'

मुन्नवर की ओर इशारा करते हुए फिर उसने मुन्नवर का परिचय दिया. 'ये हैं तुम्हारी भाभी। भई, बहुत ही आलसी हैं। देखो तो आठ बज गये हैं पर अभी भी उठाने पर झगड़ा कर रही थीं।'

मुन्नवर भी मित्रों को देख कर उठ बैठी थी। उसने सलवार और कुर्ता पहन रखा था और उसकी दौड़ती हुई नजरों से मालूम पड़ता था कि वह अपनी चुनरी ढूंड रही थी।

मित्रों की संख्या तीन थी। उनमें से दोनों ने तो मुन्नवर को नमस्ते की पर तीसरा विस्मित हो उसे घूर रहा था। मुन्नवर ने उस तीसरे मित्र को देखा तो चौंक पड़ी। 'अरे ! तुम मोहन ?' वह बोली। 'जी जनाब। पहचान लिया ?' उसने एक जोर का ठहाका लगाया।

महिम की गर्दन नीचे को झुक गई थी और अन्य दो मित्र बारी-बारी मुन्नवर और मोहन को देख रहे थे, मानो जानना चाहते थे कि उनका पूर्व परिचय कैसे था ।

'आदाब अर्ज है, भाभी जान !' मोहन ने फिर हंसते हुए—तकल्लुफ से—मुन्नवर को देखा ।

'तसलीम' मुन्नवर ने भी सिर झुकाकर उत्तर दिया और खिलखिलाकर हंसती हुई महिम को संबोधित करते हुए बोली, 'इन्हीं से खोफ खाकर तुम मुझे दूसरे कमरे में भेज रहे थे ?'

मुन्नवर फिर पलंग से उठी और मोहन का हाथ पकड़ कर उसे उठाते हुए बोली, 'इधर नहीं, उधर पलंग पर तशरीफ रखिये ।'

महिम जल कर राख सा हो गया । उसने पैनी नजरों से मुन्नवर की ओर देखा पर मुन्नवर उसकी उपेक्षा करती हुई मोहन से बोली, 'कहां से पता लगा लिया मेरा ?' फिर हँसती हुई बोली, 'समझ गई ! गये होगे कभी कोठे पर फिराक में, पर जब उस्ताद ने बताया होगा कि 'बाई' तो रफूचक्कर हो गई है तो फिर तलाश करते-करते आगये इधर । क्यों हैं न ?'

मोहन मुन्नवर को उत्तर न देकर महिम की ओर मुड़ा और बोला 'क्यों भक्त जी ! तुम तो हमारे भी गुरु निकले ? हमें तो उपदेश देते थे कि जिसे बेटिकट ऐक्सप्रेस से नरक जाना हो वही उस रंगीली सड़क पर जाये और यहाँ आप स्वयं परमानेन्ट बुकिंग करा गये मानते हैं यार । 'मोहन मुन्नवर की भांति खिल खिला कर हँस पड़ा ।'

महिम का मुख पीला पड़ गया था । उस की झुकी हुई पलकों के अन्दर लज्जा और अपमान छुपा हुआ था ।

अन्य दो मित्र अभी मुन्नवर के प्रति असमंजस में थे पर अब एक भेद भरी मुस्कान उनके अधरों पर नाच उठी ।

उनमें से एक बोला, 'तुमने तो नहीं, पर भाभी जान ने अपना परिचय दे ही दिया ।'

दूसरा बोला, 'लेकिन मुहिम ! तुम तो ऐसे शर्मा रहे हो मानो स्वयं नहीं कोई दूसरा इन्हें यहां उठा कर लाया हो ।'

पहले मित्र ने अब उठकर महिम को अपने आलिंगन में लिया और उसे अपने पास बिठाते हुए बोला 'भगवान कसम, दीखने में तो मासूम लौंडे लगते हो एक नम्बर होसलेबाज ।'

मुन्नवर की ओर फिर इशारा करते हुए बोला, 'कब लाये इन्हें ?'

मोहन ने फिर एक ठहाका लगाया और हंसते हुए बोला 'मुझे तो हँसी इस बात पर आ रही है कि पट्ठे ने 'भाभी' बतला कर परिचय दिया ।'

सब की सम्मिलित हंसी से कमरा गूंज उठा ।

महिम परेशान हो गया । उसके होंट फड़कने लगे, मानो उसके क्रोध का विस्फोट होने वाला था पर इतने में माणक आ गया और बोला मालिक धोबी आया है । और चौदह आने मांग रहा है महिम के मुख पर अखसमात ही घबराहट उतर आई । हकलाता हुआ बोला 'चौदह आने ? ये लो ! कपड़े तो दे गया न ?'

'हां मालिक ।'

'गिन लिए ? साफ धुले हैं न ?'

'हाँ मालिक ।'

'मुन्नवर ! मेरे पास तो नहीं हैं, निकालना जरा ।' महिम जेब टटोलते हुए मुन्नवर से बोला ।

मुन्नवर उठी और सन्दूक से पैसे देते हुए बोलीं 'चुनरी धुल के आ गई हो तो इधर देदे, माणक ! बिना चुनरी के भी तो······'

मुन्नवर बोलते-बोलते रुक गई और मोहन एवं अन्य दो साथियों की ओर देखकर हँस पड़ी ।

'एक और हँसी कमरे में गूँज गई ।'

महिम और घबरा गया और माणक से बोला 'माणक ! तुम जाओ अब । कुछ चाय पानी का प्रवन्ध करो और हां ! सब्जी आदि भी ले आओ ।'

माणक चला गया पर फिर महिम ने उसे रोक दिया ।

'बोला, 'और हां माणक ! तुम्हें कुछ पूछना हो तो मुझे आवाज दे देना । अब जाओ ।'

माणक ने महिम के अन्तिम शब्दों को लक्ष्य किया और सोचता हुआ एक गहरी नजर महिम पर डाल कर चला गया । मुन्नवर ने ज़ब चुनरी ओढ़ ली तो मोहन बोला 'बाई जान ! हम से कब से पर्दा करने लग गई ?'

मुन्नवर हँसती रही ! हँसती हुई ही बोली 'मोहन बाबू ! पहले तब तुम मेरे आसामी थे और मैं थी तुम्हारी बाई, पर अब तो तुम देवर राजा हो । पर्दा क्यों न करूँ ?'

'एँ ! जरा फिर बोलना, मैं समझा नहीं—' मोहन लम्बे स्वर में बोला ।

उत्तर में मुन्नवर केवल हंस दी और हंसते-हंसते लोट-पोट हो गई । मोहन और अन्य दो मित्र भी उसी आश्चर्य में महिम की ओर मुड़े और बोले 'क्यों भाई जान ! क्या सच है कि मुन्नवर अब बाई न होकर भाभी बन गई है ।'

'महिम ने उत्तर में नजर ऊपर की और फिर गर्दन झुका दी ।

मुन्नवर की हंसी और तेज हो गई ।

तीनों मित्र पहले तो चुप रहे पर फिर उन्होंने क्रमशः मुन्नवर और महिम की ओर देखा और ठहाके पे ठहाका मार कर हंसने लगे । कमरा इन ठहाकों से गूँज रहा था और महिम को लग रहा था मानो उस पर हथोड़े पड़ रहे हों । वह बौखला कर कभी मुन्नवर को देखता, कभी मोहन को तो कभी उन अन्य दो मित्रों को, पर वे ये मानो हंसते-हंसते पागल हुए जा रहे थे ।

महिम आखिर सम्भल कर कुछ क्रुद्ध आवाज में बोला, 'क्या हंसना लगा लिया है यार तुमने ? कुछ मतलब की बातें करो ।'

मुन्नवर महिम के मुख पर उतरे हुए क्रोध को भाँप गई और चुप होकर उसके मन के भावों का अध्ययन सा करने लग गई पर मित्रों ने

महिम की बात सुनी तो उनकी हंसी और तीव्र हो उठी।

हंसता हुआ एक बोला, 'भाई जान! चुप तो हो जाते हैं पर तुम्हारी ये शर्मीली निगाहें चुप नहीं होने देती। क्या गजब का सीन है, इस समय आंखों के सामने कि दुल्हा तो शर्म खा रहा है और दुल्हन हंस रही है। अरे भई, तुम दोनों ने शादी कर ली है तो खुशी तो मना लें।' हंसी का सम्मिलित स्वर और भी तीव्र हो गया और मुन्नवर को लगा कि मानो महिम अब अपने क्रोध पर नियन्त्रण न रख सकेगा। वह स्थिति सम्भालते हुए बोली, 'देखो मोहन बाबू! इनको ये मजाक पसन्द नहीं। मेहरबानी कर खामोश हो जाइयेगा।'

मित्रों ने मुन्नवर की सुनी अनसुनी कर दी पर महिम मुन्नवर पर भबक उठा 'क्यों पसन्द नहीं है मुझे मजाक? मेरा अपमान करती हो? हंसी कराने वाली बातें तो तुम स्वयं करती गई और अब समझदार बन कर उन्हें रोक रही हो? यह समझदारी है या ढोंग?'

मुन्नवर सन्न रह गई। उसे जो आशंका थी वह सच निकली।

मित्रों ने महिम के क्रोध को लक्ष्य किया तो हठात चुप हो गये।

गम्भीर हो मोहन बोला, 'क्या बात है महिम! तुम इतने क्रोधित क्यों हो चले? ठट्ठा-मजाक चलता ही है। उस पर तुम इतना रोब क्यों डाल रहे हो? मजाक तो तुमने ही शुरू किया था।'

'कैसा मजाक?'

'आते ही तुमने भाभी के रूप में उसका परिचय नहीं दिया?'

'वही तो पूछ रहा हूँ, इसमें मजाक की क्या बात है? मैंने इससे शादी कर ली है। वह मेरी गृहणी है, कोठे की वेश्या नहीं और इसी लिए समझता हूँ कि जिस ढंग से वह तुम्हारे साथ व्यवहार कर रही है, वह ढंग एक वेश्या का है, कुलवधु का नहीं।'

मित्रों ने सुना तो उन्हें काठ सा मार गया। खोखली निगाहों से वह महिम को देखते ही रहे।

मुन्नवर की आंखों में पानी के कण दिखाई दिये। वह रोनी सी

आवाज में बोली 'मैंने क्या बेजा हरकत कर दी, जो तुम इतने गुस्सा हो गये ?'

'तुम चुप रहो। तुम्हारी भूलों को भी एकान्त पाकर अपना सुधार करना होगा। पति-पत्नि की प्रत्येक बात पर्दे में होती है, मैंहफिल में नहीं। यदि तुम्हें रोना आता है तो दूसरे कमरे में जाकर रोओ। दुनियाँ के सामने नुमाइस मत करो।'

मुन्नवर बीच में टोकती हुई बोली 'ये लो ! भला इसमें मैंने कौंनसी मैंहफिल वाली बात कर दी ?'

महिम उसी स्वर में बोला 'सब के सामने हँसना, सब के सामने रोना, यह मैंहफिल वाली बातें नहीं हैं तो और क्या हैं ?

वहाँ ये चीजें चलती हैं क्योंकि वहाँ तुम एक की न होकर मैंहफिल की थी। पर यहां तो तुम केवल मेरी हो। मेरे मित्रों के सामने रोने हंसने का फिर क्या मतलब ?'

मित्रों को तनिक भी ख्याल नहीं था कि वास्तव में महिम मुन्नवर को पत्नी बना कर घर ले आया था। और यह कि वह मुन्नवर को वास्तव में पत्नी जैसा सम्मान दे चुका था। उसकी बातों को सुनकर अब उन्हें लगा मानो सचमुच ही मुन्नवर के साथ अब तक का उनका हंसी मजाक कहीं भी मर्यादित और शिष्ट न था।

मोहन बोला 'हमें क्षमा करना महिम ? अनजाने की गलती इतनी भीषण नहीं होती कि वह अक्षम्य हो चले।'

महिम चुप रहा।

मुन्नवर रोना सा मुंह बनाती हुई उठकर दूसरे कमरे में चली गई।

महिम ने उसे जाते हुए देखा तो उसी क्रोधित स्वर में बोला, 'चाय भेजती जाना।'

कुछ देर फिर कमरे में सन्नाटा रहा। आखिर मोहन बोला, 'महिम ये तुम क्या कर बैठे ? क्या ये उसी प्रगतिशील विचारधारा का प्रभाव

है जो वैश्याओं को, अछूतों को और इसी प्रकार के दलित वर्गों के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाने की प्रेरणा देता है अथवा फक्त एक बैयक्तिक चाह की पूर्ति ?'

महिम चुप रहा।

दूसरा मित्र बोला 'हां हां बतलाओ तो यार। भगवान कसम, गजब कर दिया तुमने। बैयक्तिक चाह का यह तात्पर्य थोड़ा ही है कि तुम आगे पीछे कुछ न देखो। माना कि वह खूबसूरत है, पर खूबसूरती पर मिटकर इतना बड़ा दांव लगा देना तो केवल मजनुओं का ही काम है।'

महिम फिर भी कुछ न बोला। उसे सूझ नहीं रहा था कि कैसे वह इन अनेकानेक प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर दे। उसके पास कोई स्पष्टीकरण नहीं था। कैसे बताये वह उनको कि इसमें न तो किसी प्रेरणा का हाथ था और न खूबसूरती का जादू ही। सचाई केवल यह थी कि वह मुन्नवर को हृदय दे बैठा था। क्यों और कैसे का उसके पास कोई उत्तर नहीं था। यह तो एक विवेचना का विषय था। विवेचना नित्य सही निकले, इसमें महिम को सन्देह था और इसीलिए मुन्नवर के प्रति अपने प्रेम का वह कोई विवेचन प्रस्तुत नहीं करना चाहता था। अस्तु जब मोहन और अन्य दो साथियों ने प्रश्नों की एक झड़ी सी लगा दी तो महिम को स्थिति कुछ असह्य सी लगी।

वह बोला, 'क्या बताऊं कि यह सब कैसे हो गया। हकीकत यह है कि उसे देख कर स्वतः ही मेरे अन्दर प्रेम का पावन स्रोत झर-झर कर बहने लगा। कुछ ऐसा प्रतीत्त हुआ कि उसके साथ मेरे जन्मजन्मान्तर का रिश्ता है। वरना दुनियाँ पड़ी है, कौन अक्समात ही सौंदर्य पर मुग्ध होकर उसे अपनामे को कृत संकल्प हो उठता है। इसे देख कर मुझे लगा कि मानो यह मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। मेरी भुजाओं में बल आ गया। मेरा सीना कुछ खुल सा गया मानो मेरे अन्दर इसको आश्रय देने के लिये स्वतः ही स्थान रिक्त होता चला गया।'

"अच्छा, एक बात और बताओ। तुम कुछ आदर्शवादी हो !
क्या यह सम्भव नहीं कि एक पतिता का उद्धार कर कुछ श्रेय प्राप्त करने की महत्वांकाक्षा तुम्हें बहका ले गई हो ?"

"आदर्शों के प्रति मेरी आस्था कोरी सैद्धान्तिक नहीं। जब तक मन और हृदय किसी सिद्धान्त का संयुक्त रूप से समर्थन नहीं करते तब तक मैं उसे अपनाने में संकोच करता हूँ और मेरे विचार में प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण रूप से किसी भी चीज को तभी अपना पाता है जब उसके मन को हृदय का और हृदय को मन का समर्थन प्राप्त होता है। वरना तुम जानती ही हो कि हृदय की प्रेरणा केवल भावुकता कहलाती है और इसी प्रकार मन का संकल्प केवल प्रवंचना।"

महिम चुप हो गया और उसके मित्र भी कुछ मिण्टों तक मौन ही रहे। माणक आया और चाय रख गया। चाय बनाते हुए फिर महिम बोला, 'मुन्नवर को मैंने मन और हृदय से वरण किया है। अब केवल प्रश्न केवल यही है कि तुम लोग कहाँ तक मेरे इस कृत्य का समर्थन करते हो।"

मोहन ने चाय की चुस्की ली और बोला, 'समर्थन और असमर्थन की बात तो बहुत पुरानी हो चली, उतनी ही पुरानी जितनी कि सवारी के लिए आज घोड़ा गाड़ी हो चुकी हैं। विचार स्वातंत्र्य को कुचलने के लिये अब समाज में न उतना बल रहा है और न एक्य।

यदि आज वह किसी नूतन विचार धारा का विरोध करता हैं तो उसका विरोध घास चरने वाले घोड़े की अड़ के अतिरिक्त और कुछ विशेष महत्व नहीं रखता। डर इस अड़ियल घोड़े से नहीं अपितु नवीन परीक्षणों से है। न मालूम जो नया परीक्षण तुम करने ज रहे हो, वह सफल रहे या नहीं। प्रत्येक नया परीक्षण वैसे भयानक होता है।'

महिम बोला, 'तुम्हारे शब्दों से मुझे प्रोत्साहन मिलता है। यदि तुम मेरे ब्याह को एक परीक्षण मानते हो तो विश्वास रखो कि यह एक सफल परीक्षण होगा। जहां तक मेरा प्रश्न है मैं तो नहीं समझता

कि ऐसी शादी को हम परीक्षण कहें। यह प्रेम विवाह ही तो है।'

मोहन बोला, 'मेरा संकेत प्रेम विवाह की ओर नहीं बल्कि इस ओर है कि वैश्या एक सफल पत्नि नहीं बन सकती।"

महिम को अब हंसी आगई। वह जोर से हंसा मानो अब हंसने की उसकी बारी थी। वह दंद भरी हंसी में बोला "मैंने किसी निश्चित उद्देश्य से मुन्नवर के साथ शादी नहीं की, यह मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ, पर तुम्हारे शब्दों में मुझे एक चुनौती का संकेत सा मिला है और अब महसूस करता हूं कि क्योंन तुम्हारी चुनौती स्वीकार कर वास्तव में इस तथा कथित परीक्षण के सफल होने का श्रेय लूं।"

मोहन की जांघों पर फिर जोर की थपकी देता हुआ वह बोला "जब हम दुनियाँ में आए थे तो हमारा स्वरूप क्या था, बता सकते हो? नहीं। पर आज हम क्या हैं, यह हमारे विचार जान कर प्रत्येक व्यक्ति बता सकता है। स्त्रि प्रेम की प्रतिमा है या यूं कहो कि ऐसी बेल है जिसका प्रेम की तरल भावनाओं से सिंचन होता है। प्रेम मिलता रहा वह फलेगी फूलेगी अन्यथा सूख जाएगी। स्त्री को जब तक प्रेम नही मिलता तह विश्रृंखल सी रहती है। उसका नारी स्वभांव प्रेरणा शक्ति और जीवन दान सब मूक रहते हैं। निष्प्राण पत्थर के समान। उसे कोई नहीं समझ पाता। पत्थर का मान ही कितना होता है। उस से खेलो तो तुम्हें चोट लगेगी। पर जब उसी पत्थर पर कलाकार कीं छेनियाँ पड़ती हैं तो उसमें प्राण आ जाता है; पत्थर एक सजीव प्रतिमा बन जाता है। इसी प्रकार समझलो कि मुन्नवर एक वही पत्थर है जिस पर मेरी प्रेम की छेनी पड़ चुकी है। यदि मैं उसे प्रतिमा का रूप न दे सका तो समझूँगा कि नुक्स मेरी कला में था।"

मोहन और अन्य दो साथा हंस पड़ें। और उनके साथ ही महिम भी। मोहन बोला "इस समय रफ्तार में हो भई! हांके चलो। पर जिस दिन तुम्हारी छेनी टूट जायेगी, उस दिन तुम्हें पता चलेगा कि नुक्स तुम्हारी कला में था या कि पत्थर ही प्रतिमाँ घड़ने योग्य नहीं

निकता ।' सब फिर हंस पड़े । इस हंसी में व्यंग अधिक था, ऐसा कुछ महिम ने अनुभव किया ।

चाय समाप्त होने पर महिम बोला, 'यदि पूर्ववत् आते रहोगे तो समझूंगा कि मुन्नवर को तुमने भाभी के रूप में स्वीकार कर लिला है ।

'अन्यथा······।'

'अरे, कमाल करते हो यार । आयेंगे क्यों नहीं ? बल्कि मैं तो कहूँगा कि कोई दावत हो जाये । भाभी के हाथ का खाना तो खायें, एक मित्र बोला ।'

मोहन बोला, 'मैंने कहा न कि ये सब तुम पुरानी बातें कर रहे हो ।'

दूसरे कमरे में जाते हुए वह फिर मुन्नवर को संबोधित करते हुए बोला 'तुम यहाँ पड़ी हो । भाभी बनने पर यह व्यवहार तुम्हारा उचित है नहीं कहा जा सकता, चाय भी नौकर के हाथ भिजवाई ।'

मुन्नवर चारपाई पर लेटी हुई थी । मुंह उसका अभी भी फूला हुआ था ।

महिम और अन्य दो मित्र भी उसी कमरे में आ गये । एक मित्र बोला, 'ये खूब रही भई ! उधर तो मजनू मियाँ कलाकार के आवेश में बोल रहे थे और इधर उनकी मूर्ति को देखो तो मुंह फुलाये लेटी हुई है ।'

मोहन महिम की ओर देखते हुए बोला 'यदि कोई अशिष्टता नहीं हो तो भाभी को हाथ पकड़ कर उठा दूं ? यूं पहले ही दिन—तुम्हारी कला का अपमान होते नहीं देखा जाता ।'

कमरे में फिर सम्मिलित हंसी गूंज उठी । महिम को फिर उस हंवी में कुछ व्यंग छुपा हुआ महसूस हुआ पर कुछ भी हो उसने मित्रों की हंसी में पूरा योग दिया । मुन्नवर सबके मुख पर खुशी के भाव देख कर शान्त जरूर हुई, पर फिर भी कुछ नहीं बोली ।

महिम बोला, 'देख लिया तुम लोगों ने, जरा सा समझाने पर किस

सीमा तक रुष्ट हो चली। इतनी भी समझ नहीं है कि थोड़ा हंस बोल ले।'

मुन्नवर ने सुना तो मुंह बनाते हुए बारीक आवाज में बोली 'जब मेरा हंसना आपको पसन्द ही नहीं आया तो क्या करूं ?'

महिम ने माथे पर हाथ रख लिया 'हे भगवान ! कब समझेगी यह' और मित्रों की ओर मुड़ कर बोला 'ये तो नित्य का धन्धा है यार, देखते चले जाओ।'

मित्रों के चले जाने पर महिम मुन्नवर के पास आया और उसके समीप चारपाई पर बैठते हुए मृदुल हंसी में बोला 'यह मुंह कब तक फूला हुआ रहेगा ?'

मुन्नवर ने करवट बदल कर उसकी तरफ पीठ करली।

महिम ने उसकी यह हरकत देखी तो चिढ़ाने के उद्देश्य से उसकी वेणी हिलाता हुआ बोला 'चान्द छिप गया, चकोर देखता रहा 'ऊंह ! छेड़ो मत ! पहले तो जी भर कर रुला लिया और अब चले हैं मनाने।'

महिम उसी तरह गुनगुनाता रहा 'स्वप्न की रचना अधूरी रह गई,

नियती जो प्रहार कर उठी !
जल चुका शलम समझ के यूं,
बेहोशगी में ही शमा जलती रही।'

मुन्नवर कृत्रिम क्रोध करती हुई बोली, 'ये क्या गालियाँ निकाल रहे हो ?'

'गालियाँ नहीं, कविता है। यदि इसी तरह रूठती रही तो पता है इसका क्या परिणाम होगा ?'

'मैं कुछ नहीं जानती।'

'मैं बताये देता हूँ। मैं तंग आकर सन्यासी बन जाऊंगा और फिर तुम संसार में अकेली रह जाओगी, ठीक उसी चकौर की भाँति जो चन्द्रमा के उदित होने पर नृत्य करने के लिए मतवाला हो जाता

है पर जिस अभागे के पंख अभी नृत्य के लिए उठ भी नहीं पाते कि चान्द छुप जाता है और वह खोया-खोया देखता ही रह जाता है।'

मुन्नवर तपाक से उठ पड़ी और महिम के गले चिपटती हुई बाली, 'यह तुम क्या कह रहे हो महिम ?'

महिम प्यार से उसके गाल छू कर बोला 'हां सुनो—

'आसमाँ पे चान्दनी थिरक उठी—
भावना साकार हो गई।
पूर्ण फड़कन—पंख की होने को थी
कि चान्द छिप गया, चकोर देखता रहा।'

मुन्नवर उसके मुंह पर हाथ रखते हुए भावना-तिरेक हो चिहुक उठी—'नहीं महिम ! नहीं। तुम कभी भी मुझे छोड़ कर नहीं जा सकते। मैं तुम्हारे वगैर पल भर भी जी न सकूंगी। मेरी जितनी भी कमियां हों, उन्हें सब नजरअन्दाज कर देना।

महिम प्यारे !—इतनी इलतजा है।'

महिम ने उसे बाहुपाश में कस लिया। बोला, 'जानता हूँ मुन्नवर कि तुम्हारा अन्तर कितना उज्जवल है। कभी रोना, कभी रूठना-ये तो तुम्हारे मूड के भिन्न-भिन्न आकार हैं। सब मिलाकर तुम मेरी कल्पना के अनुरूप हो; तुम्हें पाकर मेरी कल्पना साकार हो गई हैं।'

मुन्नवर खिल उठी। महिम फिर आत्मविभोर हो बोला, 'चलो भोजन बन गया होगा, चौंके में चलें।'

'मुन्नवर महिम का सहारा लेती हुई एक लम्बी अंगड़ाई लेकर और आग्रह भरे शब्दों में बोली, 'आज मछली खाने की इच्छा हो रही है, मंगा दो।'

'महिम ने सुना तो संकुचित हो बोला, 'छी, ऐसी कुइच्छा कहां से जागृत हो गयी। मांस मछली खाना अच्छी बात नहीं।'

मुन्नवर महिम को और समीप खींचते हुए बोली, 'देखो, अब टाल-मटोल न करो। सच कहती हूं, माणक के बनाये हुये भोजन में जायका

नहीं आता। आज, हो भी तो कितने दिन गए कि न गोश्त ही लिया और न मछली ही खाने को मिली।'

'तुम ये छोड़ नहीं सकतीं ?'

'क्यों, तुम्हें ऐतराज है ? तुम भी तो अंडे खाते हो।'

'खाता अवश्य हूं पर पौष्टिक भोजन समझ कर। वैसे मांसाहारी भोजन के मैं पक्ष में नहीं हूँ।'

'देखो महिम ! मैं आज तली हुई मछली जरूर लूँगी। अब तुम्हें कसम है मेरी जो जरा भी बहस की। हर बात पर बहस करने की तुम्हारी तो आदत हो गई है। चलो, बाजार से ही तली तलाई मछली ले आवें।'

महिम कुछ न बोल सका। मुन्नवर ने झट से साड़ी पहनी और महिम की पेंट निकाल कर पास आते हुये बोली 'बस, बुत की तरह ही बैठे रहोगे क्या ? चलो, पहनो इस पेंट को।'

लाचार हो महिम ने पेंट और जूते पहने और मुन्नवर के साथ चल दिया। जब वे लौट कर आए और उनके हाथ में माणक ने मछली के पकौड़े देखे तो घृणा से सिकुड़ गया। मुन्नवर ऐंठती हुई बोली, क्यों माणक ! नाक सड़ गई है क्या तुम्हारी जो इस तरह उसे सिकोड़ रहे हो ? बदतमीज कहीं का चल जल्दी से भोजन परोस। इस बात का ख्याल रखना कि आइन्दा से मालिक को अलग थाल में भोजन न आये।'

माणक कुछ चकित और भयभीत हो महिम से बोला 'मालिक ! तो क्या आप भी इन पकोड़ों को लेंगे ?'

महिम को बोलने का मौका न देकर मुन्नवर क्रोधित स्वर में बोली 'क्यों' इन पकोड़ों में जहर मिला हुआ है ? तू नौकर है या पैगम्बर जो नसीहत देता फिरता है ?'

महिम की ओर मुड़ कर फिर वह बोली 'तुम्हारा भेजा इसी ने खराब किया है। मैं अन्धी थोड़ी ही हूँ। मेरी गैरहाजरी में यह न जाने

तुम्हें क्या-क्या पट्टी पढ़ाता रहता है।

मैं कई दिनों से गौर कर रही हूँ पर सब्र करती रही। सोचा कि इसकी मरम्मत उसी दिन करूंगी जिस दिन यह खुले तोर पर अपना कमीनापन दिखाये।'

महिम का मुंह लाल हो गया। दांत भीचते हुए वोला 'मुन्नवर तुम होश में तो हो? कमीनापन उसने दिखाया है या तुम दिखा रही हो? यह फिर पागलपन कहां से तुम पर सवार हो गया?'

मुन्नवर भी और उत्तेजित हो वोली, 'तुम इसकी होसला अफजाई करो, ठीक है। मैं ही जाहिल हूँ। लो मैं चली। अब जो तुम्हारी मरजी हो वह करो—' और कहते हुए उसने वाजार से लाये हुए पकोड़ों को पटक कर वाहर गली में फेंक दिया—और तेजी से सोने वाले कमरे में जाकर धड़ाम से पलंग पर जा पड़ी।

महिम आश्चर्य में सव देखता ही रहा। उसे ढूंड कर भी मुन्नवर के इस भांति उत्तेजित होने का कोई कारण न दिखाई दिया। वह खोया खोया कुछ देर तो वैसे ही खड़ा रहा पर फिर अचानक गुस्से से तमतमा उठा। उसने माणक को देखा जो घवराया हुआ सूनी आंखों से नीचे फर्श को देख रहा था। बोला, 'माणक! मुझे भोजन परोसो। इस रण्डी का दिमाग खराव है। आखिर है तो वैश्या ही। सोचता था कि धीरे-धीरे सुधर जायेगी पर दिमाग के पुर्जे जब सही सलामत हो न, तव,। नहीं खाती है तो मर जाये। व्यर्थ ही रुपया डेढ रुपया नष्ट कर डाला।'

माणिक गिड़गिड़ाता हुआ वोला 'मालिक! मुझे क्षमा कर दो। शायद गल्ती मेरी ही थी। मालकिन का कोई कसूर नहीं।

महिम उसी तरह गुस्से में वोला 'नहीं माणक! उठो! मैंने तुम्हें वताया ही कहां कि वह एक वैश्या है—वाजार औरत। तुम जैसे देवता स्वरूप भोले भाले आदमी को गालियां निकाले? आखिर उसने समझ क्या रखा है कि दिन और रात कोहराम मचाये रखती है। जव

देखो तब उसका दिमाग फिरा हुआ रहता है। आखिर धैर्य की भी सीमा होती है।'

माणक उसी तरह गिड़गिड़ाते हुए बोला, 'मैं मालिकन से माफी मांग लेता हूँ।'

खबरदार माणक ! जो तुम उधर गये। अपना काम करो ! तुम्हें कहा नहीं कि मेरे लिए भोजन परोसो। महिम गर्ज उठा।'

माणक ने महिम के क्रोध को लक्ष्य किया तो चुपचाप आकर भोजन परोसने लगा। महिम की आंखों से अंगारे बरस रहे थे।

महिम भोजन करने लग गया और माणक तन्यता से उसके मुख को देखे जा रहा था मानो यह अनुमान लगा सके कि जिस मयावह तूफान का प्रकोप कुछ क्षण पूर्व विद्यमान था वह कुछ शान्त हुआ या नहीं। महिम ने पानी का गिलास उठाया और फिर उसे रिक्त कर भोजन करने लग गया तो माणक गिलास में पानी उड़ेलता हुआ बोला, 'मालकिन अभी बच्ची है, मालिक ! धीरे-धीरे जब गृहस्थी समालनी आजायगी, तो सब ठीक हो जायेगी।'

महिम बोला, 'तो कुछ नहीं पर उसकी मुख की मुद्रा शान्त हो चली थी। प्रोत्साहन पाकर माणक ने बोलना जारी रखा।' नई नवेली दुल्हन का रूठना अपना एक हक होता है, वरना दूल्हा दुल्हन के करीब ही कैसे आये।'

महिम की मुख मुद्रा मम्भीर थी। गर्दन उठाकर उसने माणक को देखा तो गम्भीरता पिघल कर मुस्कान बन—उसके होठों पर नर्तन करने लगी। माणक खिलखिला कर हंस पड़ा, 'उन्हें मैंने गोद खिलाया है। मालकिन भी तो मेरी वैसी ही बच्ची के ही समान है। कभी यदि शुभ से विगड़ पड़ी तो क्या मेरी उससे बेइज्जती हो जायेगी ? मुझे तो इस रिम-झिम में आनन्द ही आयेगा। हरे भरे परिवार में रहते आया हूं।'

महिम ने माणक की बातें सुनी तो गद गद हो उठा। वह बोला

'तो कुछ नहीं पर उसकी आंखें डगमगा गई। एक गिलास और पानी का पीकर वह रुद्ध कण्ठ से बोला, 'माणक ! तुम पिता जी कीं ही अवस्था के होंगे, हैं न ?'

'हाँ मालिक ! उनसे डेढ़ दो साल ही तो छोटा हूं। जब तेरह साल का था तभी से इस घर का नमक खाता आ रहा हूँ।'

'ऐसा न कहो, माणक ! मैंने कभी तुम्हें नौकर की दृष्टि से नहीं देखा बल्कि परिवार के एक बुजुर्ग की भांति ही। मुझे तो तुम्हारे नाम लेने में भी संकोच होता है और इसी लिए जब यह तुम्हारा बिना बात के अपमान कर बैठी तो मुझे लगा कि उसने तुम्हारा नहीं तुम्हारे प्रति मेरी भावनाओं का अनादर किया है। खैर अब मैं तुम्हारा नाम नहीं लूंगा बल्कि 'बौडा' कहकर पुकारूंगा। बुजर्गों को स्नेह सिक्त भावना में कहीं-कहीं 'बौडा' भी कहते हैं।'

माणक महिम की बातों से गदगद हो उठा। बोला, 'मालिक ! तुम मुझे इतना समझते हो, यही क्या मेरे लिए कुछ कम है···?'

'फिर वही बात 'बीच में ही महिम ने टोक दिया।' यह 'मालिक' कह कर मुझे संबोधित न किया करो। मेरा और तुम्हारा रिश्ता अब 'बौडा' और बेटे का रिश्ता है।'

माणक की आंखों में आसू छलक गये। बोला, 'जैसी तुम्हारी खुशी हो। पहले मझे संकोच रहा पर आज तुम्हारे प्रेम को देख कर स्वतः ही यह उत्सुकता उमड़ पड़ी है कि मालकिन यादी बिटिया रानी के बारे में कुछ पूंछ लूं।'

'हाँ-हा, बौडा ! तुमसे कुछ भी नहीं छिपाऊंगा। दुर्भाग्य की मार से पीड़ित वह घोर नरक की बहनी में जल रही थी। मुन्नवर एक वेश्या हैं, बौडा ! कैसे बताता, तुम्हें यह सब कुछ ?'

माणक ने सुना तो ऐसा महसूस किया मानो कोई वज्र गिर पड़ा हो। वह फटी-फटी आंखों से महिम का मुख देखता ही रह गया।

महिम ने माणक के आश्चर्य को लक्ष्य किया और बोलीं, 'हाँ

बौडा ! मैंने कुछ देर पूर्व उसे वैश्या कहा था। वह गाली नहीं थी अपितु वास्तविकता थी। अब उसकी हरकतों को देखकर समझ में नहीं आता कि क्या करूं।'

कुछ देर दोनों चुप रहे। आखिर माणक बोला, 'बेटा ! यह तुमने ठीक नहीं किया। तुम्हारे पिता जी सुनेंगे, तो क्या कहेंगे ? मेरे कहने का तात्पर्य और कुछ नहीं, केवल यही है कि तुम्हारा व्याह-संवन्ध पहले ही एक लड़की से निश्चित हो चुका है, यदि व्याह करते ही तो कम से कम एक वैश्या से तो न करते।'

बौडा ! इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं। अधिक से अधिक यही तो होगा कि वे मुझे घर से निकाल देंगे। मैं कही अन्यत्र घर वसा लूंगा। चिन्ता तो इस बात की है कि इसके इन लक्षणों को देखकर घर वसाने का स्वप्न कहीं स्वप्न ही न रह जाये। बौडा ! जो हो गया, उसपर अब क्या सोचना। अब तो ये बताओ कि इसके साथ निभेगी कैसे ? तुम्हें मुझ से तो सहानुभूति है।'

माणक थोड़ा हंसा और बोला, 'मालिक बेटा ! तुम जैसा देवता मनुष्य शायद ही कही ढूंढने में मिले। भगवान जरूर निभायेगा। मैं तो बिटिया रानी को शुरू से ही गृहस्थ के तौर तरीके बताता गया हूँ। जरा वह अभी बच्ची है, बुरा मान जाती है। लेकिन मैं बुरा नहीं मानूंगा। आप का नमक खाया है, मालकिन समझ कर बिटिया रानी की सेवा करता जाऊंगा, चाहे वह ऊंचे घराने की हो या······'

'लेकिन बौडा ! उसे तो दिन में कई बार पागलपन के दौरे पड़ जाते हैं।'

माणक खिलखिला कर हंसा, 'जवान तो हो राजा बेटा पर जवानी को नहीं समझते। समझोगे भी कैसे। तुम इतने नेक संस्कारों में पले हो कि जवानी तुम्हारी सच्चाई और सादगी पर आंच न पहुंचा पाई वरना जवानी खुद एक पागलपन है जो मन को हृदय का गुलाम बना देती है। बिटिया रानी अभी तक वहाँ थी जहाँ जवानी नहीं नाचती

है। उसे फिर पागलपन के दौरे क्यों नहीं पड़ेंगे।

'बौडा ! ये बात आज कहाँ से आ गई तुम्हारे अन्दर ?' विस्मय में महिम बोला, माणक फिर खिलखिला कर हंस पड़ा, बोला 'इसे भी पागलपन न समझना राजा बेटा। बातें तो कहीं से नहीं आती यह सब तजुर्बा होता है। बूढ़ा हूँ तजुर्बा तो मुझे भी होगा ही, पर जैसे बगैर हमदर्दी के पीड़ा पानी बन कर आँखों से बाहर नहीं निकल पाती वैसे ही बगैर उत्साह के ज़बान भी तालू से चिपटी रहती है। बोलता कैसे ?'

महिम और माणक दोनों फिर जोर से खिलखिला कर हंस पड़े। महिम बोला, 'बौडा ! क्या तुम्हारा तजुर्बा और यह छलकती हुई आत्मीयता मुन्नवर का उद्धार नहीं कर सकती। यकीन करो कि यदि कहीं तुम मुन्नवर को बदल पाये तो तुम्हारी बुजुर्गीयत खुद भी गौरवान्वित हो उठेगी। (तुम्हारा यह करिश्मा गाण्डीव से छूटे हुए तीरों से कम न होगा जिन्होंने पृथ्वी की छाती फोड़ कर जल की पावन धारा प्रवाहित कर पितामह भीष्म की पिपासा शान्त की थी। फर्क केवल इतना है कि तीर तुम्हारा मुन्नवर पर लगेगा और पिपासा मेरी शान्त होगी।')

माणक और महिम की पारस्परिक वार्तालाप ने एक दूसरे के प्रति श्रद्धा और स्नेह विशेष जागृत तो किया ही पर साथ ही दोनों को एक नवीन सफूर्ति की सी अनुभूति हुई। मुन्नवर के प्रति दोनों फिर सहानुभूति से भर गये। अवश्यमेव वे अब मुन्नवर का खोट निकाल कर उसे चमका देंगे कसौटी पर से निकले हुए सोने के मुवाफिक। लेकिन ज्यूं ज्यूं दिन बीतते चले गये उन्हें कुछ ऐसा सा अनुभव हुआ कि मुन्नवर के संस्कार इतने जड़ हो चुके थे कि चमकाना तो दूर की बात रही, वह और कुरूप होती चली गई, मानो मुन्नवर में स्त्रीत्व रूपी सोना था ही नहीं—सब पीतल भरा पड़ा था।

एक दिन गली में गोलगप्पे लिए फेरी वाला आया तो मुन्नवर तुरन्त उसकी आवाज सुनकर सीढ़ियाँ उतरती हुई नीचे गली में आ गई और गोलगप्पे लेने लग गई। महिम घर पर नहीं था पर माणक ने उसे पेटीकोट पहने हुए ही सीढ़ियाँ उतरते देखा तो बोला, 'मालकिन बिटिया ! तुम न जाओ, मैं ले आता हूँ पर मुन्नवर उसकी सुनी अन-सुनी कर दौड़ती हुई उन्हीं वस्त्रों में नीचे गली में उतर आई। माणक देखता ही रह गया। खिड़की से उसने देखा कि गोलगप्पे वाला उसे गोलगप्पों पर पानी भर कर खिलाता जा रहा था और वह हंसती हुई आनन्द में गोलगप्पों का मजा ले रही थी। माणक कुछ सोच कर नीचे गली में आ गया और मुन्नवर से बोला 'मालकिन ! ऊपर चलो। इन कपड़ों में गली में यूं मुंह चलाते हुए कोई देखेगा तो क्या कहेगा ?'

फेरी वाले ने सुना तो कुछ संशकित हो मुन्नवर को घूरने लगा।

मुन्नवर बोली 'ओह ! तुम मेरी चौकीदारी भी करने लग गये ? तुम्हारे मालिक का हुक्म होगा न ?'

माणक आश्चर्यवत हो नम्र स्वर में बोला, 'नहीं, बिटिया रानी ! ऐसे अपवित्र विचार क्यों मन में ला रही हो—मैं ठीक ही कह रहा हूँ।'

मुन्नवर फेरी वाले से बोली, 'दो आने के दही भूल्ले भी दो' और फिर मुड़ कर माणक को तेज नजरों से देखता हुई बोली 'अपने मालिक को यकीन दिला देना कि मैं गोलगप्पे खाने नीचे उतरी थी, किसी यार दोस्त का इस्तकबाल करने नहीं।'

मुन्नवर ने फिर पैसे निकाल कर फेरी वाले को दिये और फिर सीढ़ियां चढ़ती हुई फेरी वाले को सँबोधित कर बोली 'दो चार गोल गप्पे मेरे इस बुजुर्ग दरबान को भी खिला देना ताकि यह घूस शायद आने वाली कयामत से मुझे मैहफूज रख सके।'

माणक ठिठका हुआ सा कुछ देर वहाँ पर खड़ा रहा और फिर लज्जित हो फेरी वाले को एक नजर देखता हुआ सीढ़ियां चढ़ने लग

गया ।

फेरीवाले ने उससे पूछा, 'कौन है यह ?'

'कोई नहीं। तुम जाओ, अपना काम करो।' व्यथित स्वर में माणक ने उत्तर दिया।

रात को जब महिम घर आया तो मुन्नवर ने छूटते ही उसपर भी आक्रमण कर दिया, बोली, 'दिल उक्ता गया है न, घर से, जो इतनी रात तक बाहर ही आवारागरदी करते रहे। तुम्हें साफ-साफ बताने में हिचक क्यों है कि अब मुझ से तुम्हारा दिल भर गया है।

'क्या बात है ?' गम्भीर हो सहज भाव में महिम ने पूछा।

'मुझसे पूछते हो ?'

'तुम्हीं से पूछूँगा क्योंकि तुम ही तो प्रश्न कर रही हो।'

'ठीक, कितने रुतबे से बात कर रहे हो। मैं जरा आज गोल गप्पे लेने नीचे गली में उतर गई तो तुम्हारा नौकर लठ्ठ लेकर मुझे जलील करने मेरे पीछे २ दौड़ पड़ा। पर इधर तुम रोजमर्रा बाहर यूँ गुलछर्रे उड़ाते रहो तो उसका कुछ नहीं। यदि पूछ लिया उल्टे तो सीना तान कर रोब जमाओ ?' महिम कुछ पूछता पर मुन्नवर अब फफक २ कर रोने लगी थी। वह मुन्नवर को चकित दृष्टि से ही देखता गया और कुछ न समझ कर माणक से बोला, 'आज फिर क्या कुछ हो गया ?'

'कुछ भी तो नहीं मालिक' धीमे स्वर में माणक बोला।

मुन्नवर ने माणक का उतर सुना तो चिल्लाती हुई रोनी आवाज में बोली, 'जाहिल कहीं का ! हिम्मत है तो बोल दे न सब। अब क्यों खिसिया गया है। आज तेरी मरम्मत न कराऊं तो मेरा नाम मुन्नवर नहीं।'

महिम अभी भी उसी तरह उसे देखता जा रहा था मानो उनके मन्तव्य को समझने की चेष्टा कर रहा था। पर उसे कोई भी सूत्र न मिला कि आखिर किस बात पर वह इतनी भिन्नाई हुई थी।

मुन्नवर उसी तरह अनर्गल बोले जा रही थी, 'सुबह से शाम तक मैं बस इसी कोठरी में सड़ती रहूँ। जरा नीचे उतर गई तो बेइज्जती बर्दाशत करनी पड़ती है और तुम्हारा हाल यह है कि कभी दोस्तों के साथ होटलों में तफरीह हो रही है तो कभी रात बीते लौंण्डियों को बगल में लिये न मालूम कहां २ की सैर होती है'

महिम झुँझला कर बोला, 'मालूम पड़ता है कि तुम्हें आज पागलपन का दौरा चढ़ आया है ?'

'हां, मैं तो पागल हूँ ! बाकी सब तुम ठीक हो।'

'निक्कमी कहीं की। तू पागल नहीं तो और क्या है जो अनर्गल बके जा रही है। कुछ बताए तो समझूं कि तू कहना क्या चाहती है।' आवेश में महिम बोला।

'कहां थे तुम, इतनी देर तक ?' मुन्नवर बोली। तेरे सिर में।' मुझे क्या और काम नहीं कि तुझसे ही चिपटा रहूँ।'

'मैं अकेली रहूँ घर पर।'

'तू नरक में जा।'

माणक ने महिम के क्रोधको लक्ष्य किया तो बोला, 'मालिक ! छोड़ो इन बातों को। बिटिया रानी एकान्त में बैठे २ उक्ता जाती हैं। स्वाभाविक ही है उनका क्रोध करना।'

माणक ने पति पत्नी के मध्य बढ़ते हुए तनाव को कम करने के लिये मध्यस्थता की थी पर उसके शब्दों से मुन्नवर को आगसी लग गई। वह बोली, 'तू चुप रह, शैतान कहीं का। आग लगाकर अब छिड़काव करता है ? चल हट यहाँ से। बड़ा आया है बुजुर्ग बन कर, शौहर बीवी की बातों में दखल अन्दाजी करने।'

माणक ने सुना तो लज्जित होकर दूसरे कमरे में जाने लगा, पर महिम ने उसे रोक दिया। बोला, 'तुम नहीं बौड़ा ! इस निकम्मी को ही निकालता हूं आज। बहुत जहर उगलना शुरु कर दिया इसने। 'कहता हुआ वह मुन्नवर की ओर बढ़ा। मुन्नवर भयभीत हो, मार पड़ने की

डर से दूसरे कमरे में दौड़ गई। महिम उसका पीछा करते हुए द्वार तक बढ़ा ही था कि मारणक उसके कदमों में लुढ़क पड़ा। आतुर स्वरमें बोला, 'अक्ल से काम लो राजा बेटा! यदि गुस्से पर काबू नहीं पा सकते तो मुझे गांव भेज दो। दोपक से रोशनी होती है पर तुम्हारा तो घर जलने लगा है।'

महिम ने सुना और धीरे से आकर पलँग पर लेट गया, बाहर काली अँधेरी रात व्याप्त थी और नीरव वातावरण।

देहरादून से हिमालय पहाड़ की तराई में एक सड़क ऋषिकेश को जाती है। देहरादून से करीब २० मील की दूरी पर इसी सड़क पर एक छोटा-सा कस्बा बस गया है, जिसका नाम महिपुर है। सब मिला कर करीब सौ दो सौ घर होंगे। सामने २, ३ मील की दूरी पर पहाड़ है, और पूर्व में १० मील पर ऋषिकेश। एक पक्की सड़क दक्षिण की ओर रायवाला होती हुई हरिद्वार को भी चली गई है।

१०-१५ वर्ष पूर्व यहाँ पर जंगल ही जंगल होता था पर आज कुछ लहलहाते हुये धान के खेत, कुछ लीची के बगीचे और साग सब्जी की क्यारियां देखने को मिलती हैं। कस्बे का वातावरण नीरव और शान्त है। रात को उत्तर-पूर्व की ओर पहाड़ पर बसा हुआ एक नगर बिजली के प्रकाश से टिम-टिमाता रहता है जिसका नाम नरेन्द्रनगर है और जो टिहरी गढ़वाल जिले का सदर मुकाम है। दिन में धुन्द के कारण वह कभी साफ नहीं दिखाई देता पर रात को तो ऐसा लगता है कि मानों मील दो मील पर ही तारों का एक छोटा सा झुरमुट जगमगा रहा हो। जब आकाश साफ होता है तो दूर पश्चिम में भी इसी प्रकार रात को एक और दीप मालिका दृष्टि गोचर होती है जो वस्तुतः और कुछ नहीं, पहाड़ों की रानी मंसूरी की रात की छटा होती है। एक और भी प्रकाश रात को दिखाई देता है—रेल का प्रकाश जो कस्बे से कुछ मील के फासले पर देहरादून से हरिद्वार और हरिद्वार से देहरादून को दौड़ती

रहती है। गांव के सामने पहाड़ की तल्हटी पर जंगलात विभाग की चौकी है जहाँ शायद एक डिप्टी रेंजर और कुछ फौरेस्ट गार्ड रहते हैं।

इस नगर के जन्मदाता हैं देहरादून के प्रसिद्ध रईस दीवान महिधर, जिन्होंने यहाँ के शान्त वातावरण को लक्ष्य कर आज से १४-१५ वर्ष पूर्व यहां एक आश्रम की स्थापना की जो बढ़ते-बढ़ते आज एक छोटे-मोटे विश्व विद्यालय का रूप धारण कर चुका है, आश्रम से तात्पर्य किसी भिक्षुओं के निवास से नहीं अपितु ऐसे विद्यालय से है जहाँ कि प्राचीन 'परिपाटी पर अध्यापन की व्यवस्था थी। विद्यालय के दो कक्ष थे, एक तो आयुर्वेदिक कॉलेज का और दूसरा संस्कृत कॉलेज का। कुछ समय बाद एक और कक्ष की स्थापना होगई जिसमें लड़कियों की शिक्षा-व्यवस्था की गई। इन तीन कक्षों के अतिरिक्त दो छात्र निवास—एक पुरुषों के लिए और एक स्त्रियों के लिए, और एक पुस्तकालय भी था। इन सब के लिए पृथक-पृथक छोटे किन्तु कलापूर्ण-भवन बनाये गये थे। आरम्भ में तो केवल २०-३० छात्रों को लेकर ही विद्यालय चला था पर कालान्तर छात्र-छात्राओं की संख्या बढ़ते-बढ़ते आज अनुमानतः ६००-७०० के मध्य पहुँच गई थी। स्वाभाविक था कि विद्यालय के समीप ही फिर एक छोटा-सा कस्बा बस जाता। आज महिपुर में दो चार छोटी-मोटी दुकान कपड़ों और बिसातखाने की, कुछ पान बीड़ियों का एक आध चमार, एक दो नाई धोबी—दो तीन हलवाई और इसी प्रकार—जीवन की छोटी-मोटी आवश्यकताओं को पूरा करने के सामान्य उपकरण जुट गये थे। बाद में इन्हीं लोगों में से किसी ने खेती बाड़ी का धन्धा भी शुरू कर दिया और इस प्रकार महिपुर एक वीरान बस्ती न होकर आज एक छोटा सा हरा-भरा कस्बा हो गया था। कस्बे के इस उत्तरोत्तर विकास में शायद दीवान महिधर की कोई चिरपोषित आकांक्षा काम कर रही थी, शायद उनका कोई भव्य स्वप्न साकार हो रहा था। दीवान साहब माह दो माह में अवश्य एक चक्कर महिपुर का लगा लेते

ग्रौर विद्यलय की व्यवस्था का सूक्ष्म निरीक्षण कर जाते। विद्यालय के अतिरिक्त वह कस्बे के अन्य निवासियों के विकास सम्बन्धी कार्यों में भी गम्भीर दिलचस्पी लेते थे ग्रौर यथा शक्ति उनकी ग्राथिक सहायता करते ग्रौर उनके सुख दु:खों का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। यही कारण था कि कस्बे का विकास एक ग्रादर्श ढंग पर उन्मुख होता जा रहा था। जीविका उपार्जन के साधन सीमित होते हुये भी कस्बे के निवासियों में दरिद्र ग्रौर ग्रसन्तोष नहीं था। घर साफ सुथरे थे। गलियों में भी पर्याप्त सफाई थी। मकानों के ग्राज-पास फूल तुलसी के पौधे हरी बेल, पपीते ग्रौर केले के पेड़ ग्रौर राई मेथी पालक ग्रादि की सब्ज क्यारियाँ दिखाई देती थीं।

शिक्षा ग्रौर वैद्यक सहायता के लिए तो विद्यालय था ही। कस्बे की ग्रौर कस्बे की ग्रास-पास की सारी जमीन दीवान साहब की थी जिसमें से वह कुछ टुकड़े विकासार्थ उन लोगों को बेचते गये थे जो यहां बसने के उद्देश्य से ग्राते गये। शर्त केवल यही थी कि विकास कार्य दीवान साहब की पूर्व निश्चित योजना के ग्रनुसार हो। कस्बा सादगी, प्रेम ग्रौर सहयोग का एक ग्रद्भुत प्रतीक बन गया था जहाँ ग्रविराम सुख ग्रौर शान्ति थी। सब के मन ग्रौर हृदयों में दीवान साहब का उदार ग्रौर दानशील व्यक्तित्व प्रतिष्ठित था। ग्रतः जब दीवान साहब कस्बे में ग्राते तो उनका उतने ही उत्साह ग्रौर प्रेम के साथ स्वागत् होता जितना कि किसी जमाने में महान् देशभक्तों का होते देखने में ग्राया है। यह तो थी महिपुर की ग्रन्दरूनी स्थिति लेकिन उसका महत्व यहीं तक सीमित नहीं था। टिहरी गढ़वाल, देहरादून ग्रौर दक्षिण में साहरनपुर, हरिद्वार तक महिपुर एक ग्रादर्श शिक्षा केन्द्र के रूप में विख्यात होता जा रहा था। समय-समय पर दीवान साहब की प्रेरणा से महिपुर में विद्वानों की गोष्ठियों का ग्रायोजन किया जाता था। उनसे इस सारे प्रदेश में एक नव ज्योति-सी जगती जा रही थी, नये विचार, नई भावनायें ग्रौर नई चेतना का प्रसार हो रहा था। जन-जीवन में प्रगतिशील विचारों

का सूत्रपात हो रहा था। लगता था मानो व्याप्त अन्धकार में महिपुर एक प्रकाशपुंज सा बन गया हो।

लड़कियों के स्कूल का वार्षिकोत्सव था। दीवान महिधर अपने दत्तक पुत्र मनोहर के साथ महिपुर आये हुये थे और स्कूल के प्रधानाचार्य से उत्सव के उपलक्ष में आयोजित व्यवस्था को समझ रहे थे। उन्होंने प्रधानाचार्य द्वारा तैयार किया गया वार्षिक विवरण पढ़ा औए प्रधानाचार्य से बोले, 'शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन कीर आवश्यकताओं को तो मैं समझता हूँ। अतः विवरण में जो उल्लेख आपने नवीन 'कैरीकुलर' का किया है, मुझे उससे कोई आपति नहीं है। अर्थ-व्यवस्था का अवश्य प्रश्न है, लेकिन उसका हल ढूंडना ही होगा······।'

'हाँ दीवान साहव ! ललित कलायें भी आर्य संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग रही है। विवरण में उन्हें भी पर्याप्त प्रोत्साहन देने का मैंने उल्लेख किया है। इसके पीछे यही भावना है कि जव हमारे छात्र और छात्रायें अध्ययन समाप्त कर अपने 'व्यवहारिक जीवन में पदार्पण करें तो वे भौतिक उन्नति को ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य न समझ कर जीवन में कला का भी समावेश करें ताकि लौकिक और अलौकिक दोनों सुख उन्हें प्राप्त हो सकें।'

'लेकिन आचार्य ! एक निर्धन देश में कला की इतनी प्रतिष्ठा क्यों ? कला का सम्बन्ध क्या वैभव से नहीं !'

नहीं दीवान जी ! कला का सम्बन्ध वैभव से नहीं, जीवन से है। वैभव तो वास्तव में कला को अपने वास्तविक स्वरूप से च्युत कर उसे संकीर्ण और निकृष्ट बना देता है। यही कारक्ष है कि जब भी कला महलों और राज प्रासादों का शृंगार बनी, वह जन-जीवन से सम्बन्ध तोड़ अपना व्यापक स्वरूप खोती गई और कालान्तर उसका रूप इतना नग्न हो गया कि वह कला न रही अपितु प्रवंचना बन गई।'

दीवान महिधर बोले, 'आचार्य ! आप सम्भवतः इतिहास पर

आधारित किसी घटना विशेष को लेकर यह तथ्य प्रस्तुत कर रहे हैं, अतः आपका कथन सत्य हो सकता है पर मेरी शंका कला के स्वरूप और उसकी प्राण प्रतिष्ठा से नहीं बल्कि उसकी आवश्यकता के महत्व से है। भूखे देश में हम छात्रों को कला विज्ञ बनायें या उन्हें उस भूख का उपचार करने के साधनों से परिचित करायें ?'

'आपका आशय समझता हूँ, दीवान जी। ललित कलाओं को प्रोत्साहन देने से मेरा तात्पर्य शिक्षार्थियों को केवल कलाकार बनाना नहीं है बल्कि उनमें ऐसे संस्कारों का सूत्रपात करना है जिसे वे अपने संघर्षमय जीवन में नैराश्य की काली घनीभूत परिछाइयों से भयभीत न होकर जीवन लक्ष्य को समझते हुए विचलित न हो बैठें। भौतिक सुख अन्तिम सुख का साधन हो सकता है पर स्वयं अन्तिम सुख नहीं।'

'ये क्या कह रहे हैं आप, आचार्य ! दर्शन और विवेचना जन-साधारण के लिए अभिशाप है। छात्रों में अति गूढ़ संस्कारों का सूत्र-पात कर तो उन्हें आप निक्कमा बना देंगे। उन्हें सबल नागरिक बनाइये। ताकि वे राष्ट्र का भार सहन कर सकें—अपने उत्तरदायित्वों को निभावें। मालूम पड़ता है कि मेरा विद्यालय को स्थापित करने का लक्ष्य और आपकी कला विपरीत दिशाओं में बंट गये हैं, इनका एक्य आवश्यक है।'

आचार्य कुछ देर तो विमूढ हो दीवान साहब को देखते रहे पर फिर विश्वासपूर्वक बोले, 'आपने उचित संयम का परित्याग कर ये विचार व्यक्त किये हैं, दीवान जी ! अन्यथा विचार-विमर्श के समय अविश्वास प्रकट करना केवल दूसरे का अपमान समझा जाता है। यदि आपका लक्ष्य मेरी अवस्था से टकराता है तो मेरा त्याग-पत्र प्रस्तुत है।'

'दीवान महिधर आचार्य की अपमान—अनुभूति से कुछ विक्षुब्ध हो गये। आचार्य के कन्धों पर हाथ रखते हुये बोले, 'आप के आत्म सम्मान को समझता हूं, आचार्य ! इसीलिये आचार्य पद पर आपको आमन्त्रित

कर प्रतिष्ठित किया गया है। लेकिन विचार विमर्श के साथ मतभेद का भी तो अस्तित्व है, इस तथ्य की आप क्यों उपेक्षा कर हैं। मेरी जो शंकायें होंगी उनका समाधान कराने का आग्रह मेरा बना ही रहेगा।'

आचार्य कुछ पिघल गये। बोले, 'मानता हूं, दीवान जी, अपने स्थिर व्यक्तित्व से नित्य मुझे परास्त करोगे।'

दीवान महिधर आगे बढ़ कर आचार्य को अपनी भुजाओं में जकड़ कर हंसते हुये बोले, 'भगवान परास्त होता आया है भक्तों से, आचार्य! भक्त की भावना और विश्वास में सच्चाई होनी चाहिए।'

आचार्य दीवान महिधर की बातें सुनकर गदगद हो गए और कुछ रुक कर खिलखिला कर हँस पड़े। दोनों की सम्मलित हँसी से भाव और विवेक गूंजने लगा।

आचार्य बोले, 'दीवान जी ! मेरे छात्र भौतिक उन्नति की दिशा में उतने ही निपुण होंगे, जितने कि देश के अन्य विद्यालयों से निकले हुये छात्र। कला विज्ञता उनकी अतिरिक्त विशेषता होगी और उसका औचित्य मैं पहले ही आप को बता चुका हूँ।'

ललित कलाओं से परिचित होने पर उन्हें जीवन नीरस नह लगेगा। क्योंकि भौतिक-सुखों का तो कोई माप ही नहीं। निरन्तर स्पर्धा के प्रचण्ड ताप में जीवन का पौधा कुम्हला जाता है।'

दीवान साहब का दत्तक पुत्र मनोहर अभी तक चुप-चाप दोनों के बीच चल रहे वाद-विवाद को सुन रहा था, पर लगता था कि उस वाद-विवाद में उसे कोई रुचि नहीं थीं।

दीवान साहब मुड़कर उसे सम्बोधित करते हुए बोले, 'देखा तुमने आचार्य का अडिग विश्वास-और स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष दृष्टिकोण।'

मनोहर कन्धे उचकाते हुआ बोला, 'होना चाहिए। लेकिन मेरा भी एक सुझाव है।'

'क्या ?' आचार्य ने उत्सुकता प्रकट की।

'मैं देखता हूं कि यहाँ छात्र और छात्राओं के अध्ययन के लिए पृथक-पृथक व्यवस्था है। यह पार्थक्य प्रगतिशील विचारधारा के अनुरूप नहीं है और फिर इस से अपव्यय भी है।'

अपव्यय ? विद्यालय की स्थापना कुछ आदर्शों को पूरा करने के लिए की गई है, इसमें तुम मितव्ययता का प्रश्न क्यों लाते हो ?' दीवान महीधर बोले।

मनोहर कुछ घबड़ा सा गया, जी नहीं। मेरा तात्पर्य सह शिक्षा से ही है। मितव्ययता का विचार तो यूंही आ गया।'

दीवान महिधर आचार्य की ओर मुड़े और बोले, 'क्यों आचार्य ! मनोहर का सुझाव विचारणीय है ?'

'विचारणीय तो अवश्य है। पर उसे कार्यरूप देना कहां तक उचित है इस सम्बन्ध में अभी मैं कोइ निश्चित मत नहीं बना पाया हूँ।'

मनोहर बोला, 'कमाल करते हैं, आचार्य आप ! भला इसमें क्या सोचना ! अब तो वातावरण ही ऐसा बन गया है कि सहशिक्षा अनिवार्य रूप से आवश्यक हो गई है। आज स्त्रियों को, दफ्तर, टेलीफोन एक्सचेंज और दूकानों पर, यानि हर क्षेत्र में पुरुषों के संग काम करना पड़ता है। यदि उनमें पार्थक्य की भावना रही तो कैसे वे समान रूप से चल सकेंगीं ?'

आचार्य आंख मूंद कर गम्भीर चिन्तन में पड़ गये। दीवान उनकी ओर देख रहे थे। आखिर आंख खोल कर आचार्य बोले, 'क्या कहूँ, बेटा ! इस प्रश्न पर जितना मैंने चिन्तन किया, उतना ही मुझे-यह उलझा हुआ सा लगा। वास्तव में प्रश्न सह शिक्षा का नहीं है बल्कि स्त्री के स्वरूप का है। अभी तक स्त्री को हम गृह लक्ष्मीं के रूप में देखते आये हैं। अतः उसका क्षेत्र घर की चार दीवारी तक ही सीमित रहा। बाहर के धन्धे उसकी क्षेत्र परिधि में सम्मिलित नहीं थे। यह भेद शायद उसकी शारीरिक निर्बलता के कारण किया गया। युगों बाद वह रूप एक संस्कार बन गया। स्त्री वैसे भी मृदुल भावनाओं की प्रतीक

रही है अतः उस पर यह आवरण पुरुषों को और भी आकर्षक लगा। कवियों ने उसके इस स्वरूप की खूब चर्चा की। उसे जननी के रूप में यत्र तत्र पूजा तो गया ताकि उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे पर साथ ही नित्य यह सतर्कता भी बरती गई कि उसे परालम्बी, निर्बल और भावुक चित्रित किया जाय। इस प्रकार पुरुष शक्ति का और स्त्री सौंदर्य की प्रतीक बन गई। इसमें अवश्य कुछ सत्य है पर स्त्री पुरुष की कार्य सीमा सत्य पर ही आधारित न होकर संस्कारों द्वारा भी निश्चित होती रही है।

मनोहर ने बीच में शंका प्रकट की। बोला, 'आचार्य ! आपका कथन स्वयं संस्कारों से प्रभावित है वरना स्त्री चण्डी और भवानी के रूप में भी तो प्रकट हुई है। आदिकाल का इतिहास स्त्री को पुरुष के समान ही प्रस्तुत करता आया है।'

आचार्य गुस्से में बोले, 'तुम्हारा ज्ञान बड़ा अल्प है, बेटा ! आजकल की तथाकथित प्रगतिशील विचार धारा में यही तो दोष है कि उसका निष्कर्ष बड़ा हल्का होता है। भवानी और चण्डी का रूप स्त्री का 'शोषण और अपमान' के प्रति विद्रोह का रूप था। समूची स्त्री जाति का रूप नहीं। आज भी जिन स्त्रियों को तुम दफतरों में, दुकानों में देखते हो वह पुरुष की अपेक्षा अधिकतर कोमल होती हैं। द्रवित होना उनका स्वाभाविक गुण है। क्योंकि प्रकृति ने उन्हें जननी बनाया है। आज वे पुरुषों के साथ स्पर्धा की भावनायें लेकर चल पड़ी हैं, इसलिए नहीं कि वे शक्ति का प्रतीक सिद्ध होना चाहतीं हों, बल्कि इसलिये कि आज तक वे केवल योग्य रह कर शोषित होती रहीं; सौंदर्य की जो प्रतिष्ठा होनी चाहिये, वे उस प्रतिष्ठा से वंचित हो गई हैं। परिस्थितियों और संस्कारों से परिवर्तित किसी वस्तु का रूप उसका आदि रूप नहीं होता। आदि रूप स्त्री का जननी और सौंदर्य का रहा है, त्याग और सम्मोहन का। सह शिक्षा के गुण और दोष-निश्चित करते समय हमें स्त्री के इस आदि रूप को और विद्यमान परिस्थितियों को–दोनों को समक्ष रखना है।

दीवान महिधर बड़ी रुचि से आचार्य और मनोहर में चल रहे सम्वादों को सुन रहे थे। बोले, 'आचार्य ! अपने कथन को अधिक स्पष्ट कीजिए।'

आचार्य बोले, 'आज वातावरण में एक आहवान गूँज रहा है कि स्त्रियों को चार दिवारी से निकल कर बाहर की दुनियां में पुरुषों के समकक्ष चलने को उद्यत हो जाना चाहिये। मैं भीं सहमत हूं कि अब वह समय आ गया है जब स्त्री को अपने स्वभाव में परिवर्तन लाना होगा। पर इस आहवान में और मेरी विचारधारा में बहुत अन्तर है। मैं स्त्रियों को बाहर आना इसलिए देखना चाहता हूँ कि उसका 'जननी और सौंदर्य' का व्यक्तित्व लुप्त हो चला है। पुरुष उसेके इस रूप को भूल चुका है। आज स्त्री मां होकर भी सेविका है। उसके अन्दर सेविका के संस्कार बहुत गूढ़ हो चुके हैं। बाहर आकर वह कुछ काल तक उच्छृखल हो भटकती तो रहेगी, पर समय और परिस्थितियों का सही ज्ञान प्राप्त कर वह कालान्तर अपना व्यक्तित्व प्राप्त कर लेगी। वातावरण जिस आहवान से गूंज रहा है, उसमें मुझे कहीं भी इस सत्य का आभास नहीं होता। वह तो पुरुष और स्त्री का भेद मिटा डालने का सिहंनाद कर रहा है। सहशिक्षा की मांग परिस्थितियों की मांग है। स्त्री और पुरुष के बीच भेद मिटा डालेने का मन्त्र नहीं है। स्त्री को सेविका से र्मजित कर मां बनाओ, नाकि उससे उसका स्त्रीत्व ही छीन लो।'

मनोहर आंखें फाड़ २ कर आचार्च की ओर देख रहा था। और दीवान महिधर प्रशंसा भाव से मुस्करा रहे थे। उन्होंने एक और शंका प्रकट की। बोले, "आचार्य ! सह शिक्षा से स्त्री के व्यक्तित्व के विकास होने में सहायता मिलेगी, यह तो मैं समझ गया, पर विश्वविधालयों में उनके डिग्रियां प्राप्त करने की आवश्यकत ाको मैं समझा नहीं।

'केवल चेतना के लिये दीवान जी। भले ही आज डिग्रियाँ नौकरी प्राप्त करने के लिये ली जा रही हैं, पर उच्च अध्ययन का लक्ष्य

आत्म शोधन और व्यक्तिव–विकास ही है। यह तो शिक्षा प्रणाली में ही दोष है जिसके प्रति आज राष्ट्र के कर्णाधार उचित ध्यान नहीं दे पा रहे हैं। शिक्षा के लक्ष्य और उसकी सीमा, अभी तक निर्धारित नहीं हो पाई है। उच्चशिक्षा केवल विचार मन्थन के लिये अनिवार्य है, जिविका उपार्जन के लिये तो कला कौशल की आवश्यकता है। आज का शिक्षित वर्ग क्यों विभ्रान्त है ? इसीं लिए कि सबका लक्ष्य प्रायः जीविका उर्पाजन का होता है पर उलझना पड़ता है उन्हें उन पुस्तकों में जिनमें केवल विचार मन्थन होता है। परिणाम यह होता है कि न तो छनत्र विचार ही ग्रहण कर पाते हैं और न कोई कला या हुनर ही प्राप्त करते हैं। भला एक ग्रेजुएट का कर्लकी से क्या संबंध है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली शिक्षा न होकर शिक्षा की मृग तृष्णा है।'

दींवान बोले, क्या यह सम्भव नहीं आचार्य कि विद्यालय शिक्षा के इन भूल लक्ष्यों की पूर्ति करे।'

मैं छात्रों को विचार दे सकता हूँ। दीवान जी ? कला और हुनर को प्रोत्साहन देने के लिये समूचे राष्ट्र का आन्दोलित होना अनिवार्य है।

दीवान महीधर और आचार्य के मध्य बातें चलती ही रहीं। वे बाहर आकर कुछ देर प्रागण में भी घूम आये जहां उत्सव के लिये स्थान निश्चित किया गया था। मनोहर कुछ अब ऊब सा गया था पर वह दीवान महिधर से भय खाता था। अतः लाचार हो उनके साथ ही घूमता फिरता रहा।

वार्षिकोत्सव के संबंध में की गई समूचि व्यवस्था का संधा होने पर जब दीवान महीधर निरीक्षण कर मनोहर के साथ अपने कमरे में आ गये तब जाकर मनोहर को किसी न किसी तरह उनसे छुट्टी मिली।

कस्बा संध्या के समय खिल सा उठा था। मनोहर हाथ में छड़ी ले कर घूमने के लिये निकल पड़ा। गौर वर्ण और छरेरा बदन, उस पर

वुर्शट और समर की ऐंठ उसके व्यक्तित्व आकर्षक वना रहे थे। अवस्था भी उसकी करीब २५–२६ साल की थी। मूँह पर दर्प और स्वभाव चपल। वह समय २ पर पिता के साथ कई बार कस्वे में आ चुका था और छात्र और छात्राओं में बहुतों से परिचित था। कस्बे के अन्य निवासी भी उसे जानते थे, क्योंकि वह दीवान महिधर का पुत्र जो था।

महिपुर की मुख्य गली या बाजार से निकल कर वह छात्रावास की ओर जा रहा था, जहां से और आगे चल कर पहाड़ी की बिलकुल गोद में चन्द्रभागानाम का एक नाला बहता था। सँध्या का समय था; अतः छात्र और छात्रायें भी दो-दो, चार-चार के झुँड बना कर घूमने को निकल पड़ीं थीं। खेतों में बैंलों के गले पर बन्धे हुये घूघुरों की टुन-टुन की आवाज सुनाई दे रही थी और ऊपर आकाश में वापस नीड़ों पर जाते हुये पक्षियों के दल के दल दिखाई दे रहे थे। छात्र और छात्रायें मनोहर को देख नमस्कार के लिये हाथ ऊपर उठा रहे थे और उससे सम्पर्क बनाने के उद्देश्य से एक दो बातें भी कर जाते पर मनोहर ने किसी को अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया। छात्राओं में किसी गौर वर्ण और सुन्दर से मुखड़े को देखकर वह अवश्य कुछ मुश्करा देता। वह वढ़ता हुआ आखिर एक ऐसे स्थान पर आ गया जहां दो छात्रायें चन्द्रभागा की ओर मूँह किये खडी थी। मनोहर को देख वे मुस्करा दीं। मनोहर भी मुस्कराते हुये बोला, 'ये हंसों की युगल जोड़ी भी नित्य इकट्ठी ही दिखाई देगी।'

छात्रायें हंस पडी। उनमें से जो अधिक चपल थी, भौं टेढे करता हुई बोली, "भाषा का शुद्ध प्रयोग कीजियेगा, मनोहर बाबू!

युगल जोड़ी कैसे कह दिया आपने?

इस चपल छात्रा का नाम मंजु था।

मनोहर मंजु का आशय समझा तो जोर से हंस पड़ा। हंसते हुये ही वोला, "युगल जोड़ी न सही पर जोडी तो अवश्य है।

'तो क्या हंसो से आप हमारी उपमा देंगे ?'

'दोनों का रंग गोरा जो है।'

दोनों सहेलियां अपने सौंदर्य प्रशंसा पर तरंगित हो उठी। दूसरी तो लज्जा से लाल हो गई पर मंजू खिलवाड़ करती हुई बोली, 'यूं अकेले में छेड छाड करना आपको शोभा तो नहीं देता।'

'इसमें छेड़ छाड़ की क्या बात है। सच बोलने में संकोच क्यों करूं। सारे छात्रावास की लड़कियों को पंक्ति में खड़ा देख लिया जाये तो प्रथम स्थान तुम दोनों को ही मिलेगा।'

मंजु के नेत्र चमक उठे। व्यंग कसते हुये बोली, 'तो मालूम पडता है कि आप काफी समय से हमारे सौंदर्य को परखते आ रहे हैं।' दूसरी छात्रा मंजु के इन शब्दों से घबरा उठी। जिह्वा को दाँतों के बीच देते हुये उसने घुडकी दी' कितनी बदतमीज हो गई है तू। बोलते हुये शर्म भी तो नहीं आती।'

पर मनोहर और प्रोत्साहित होकर बोला, 'परखने की स्टेज तो बहुत पीछे छूट गई अब हकीकत तो यह है कि उस सौंदर्य पर मुग्ध हो उठा हूँ।' कहते हुये वह मंजु के साथ खिलखिला कर हंस पड़ा। मंजु की सहेली ने मनोहर के अन्तिम शब्द सुने तो वह और अधिक घबरा कर वहां से चल पड़ी।

मँजु ने उसे रोकना चाहा, पर मनोहर ने उसे आंखों से इशारा कर रोकने न दिया। जब वह छात्रा द्रष्टि से ओझल हो गई तो मनोहर ने मँजु की कलाई पकड़ी और उसे जोरसे दबाते हुये बोला, 'केवल तुम्हें देखने के लिये ही तो देहरादून से यहां आना पड़ता है।' मंजु अपनी कलाई छुड़ाती हुई बोली, 'चलो, ज्यादा न बनो! तीन दिन हो गये हैं यहाँ और अब आकर सूरत दिखाई।'

मनोहर बोला, 'मंजु क्या करता, चौबीसों घण्टे पिताजी अपने साथ रखते हैं। आज भी बडीं मुश्किल से किनारा कर तुम्हारी खोज की

है।

मँजु खिलखिला कर हंस पड़ी । 'दिल्ली से कब आये ?'

अब तो बी० ए० कर लिया है। बस देहरादून ही रहता हूं।

मंजु फिर हंसी और बोली, 'चलो धन्यवाद है ईश्वर का कि आखिर तीसरी बार पास हो ही गये। वैसे मुझे उमीद नहीं थी।'

मनोहर कुछ खिसिया सा गया पर फिर हंसते हुये उसने मंजु की कलाई पकड़ी और उसे तनिक मरोड़ते हुये बोला, चिढ़ा रही हो मुझे। देखूं तुम कौन सा तीर मार लेती हो।

मंजु फिर अपने को छुड़ाती हुयी बोली, 'तीर तो क्या मारुंगी – उसका निशाना जरूर बन चुकी हूं।'

दोनों ने फिर एक दूसरे को देखा और चन्द आशक्ति भरी चितवनों का विनिमय किया। मंजु फिर अचानक सम्भलते हुये बोली, 'मनोहर बाबू! अंधेरा होने को आ गया है, यूं एकान्त में घूमना फिरना अच्छा नहीं। वापिस मुड़ चलें।

'क्या तुम भी अपनी सहेली की तरह मनहूस बातें करती हो। यहाँ कौन देख लेगा हमें ?'

'नहीं-नहीं, तुम आचार्य को नहीं पहचानते। यदि उन्हें तनिक भी मेरे घूमने फिरने का पता लग गया तो सीधे आत्रावास से बाहर निकाल देंगे।'

मनोहर ऐंठता हुआ बोला, 'खेल है तुम्हें बाहर निकालना। उस बूढ़े को ही बाहर न निकाल दूं, तो कहना। फिर मैं पूछता हूँ कि यहां कौन देख लेगा हमें ?'

'लोटने पर दोनों को साथ देखकर क्या कहेंगे ?'

'वापसी में तुम सीधी चले जाना और मैं खेतों के रास्ते चला जाउंगा।'

मंजु फिर भी आश्वस्त नहीं हुई, वह अभी कुछ सोच ही रही थी, कि

मनोहर को उसने आंखों में एक खुमारी लिए हुए अपनी ओर बढ़ते हुए पाया। वह तनिक पीछे हट गई।

मनोहर बोला, 'पास आयो मंजु। डरो मत। यूं तुम से मिलने का फिर कब अवसर आयेगा।'

मंजु और पीछे हटी और बोली, 'मनोहर बाबू! बातें करते चलो सीमा अतिक्रमण का यदि इरादा किया तो मैं रूठ जाऊंगी और फिर कभी तुम से न मिलूंगी। इस समय तो वापिस चलो।'

'मनोहर उसे देखता रहा, और उसी प्रकार मंजु भी मानो दोनों एक दूसरे की प्रतिक्रिया का अनुमान लगा रहे थे।

आखिर मनोहर ने अपनी हठ छोड़ी और झुंझलाता हुआ बोला, 'तुम पढ़ तो रही हो मंजु पर हो फिर भी डरपोक। शिक्षित होने पर भी तुम्हारे अन्दर की भीरुता नहीं गई। वापिस चलने को कहती हो, तो चलो।'

मंजु खुश हो गई और पास आकर मनोहर का हाथ पकड़ उसे हिलाते हुए वापिस कदम बढ़ाती हुई बोली, 'इसके पीछे भी कुछ रहस्य होगा ही।'

'खाक रहस्य है। हिन्दुस्तानी लड़कियां होती ही ऐसी हैं। जरा छू लिया तो जल जाती हैं। दिल्ली में जाओ तो पता लगे कि जमाना कितना आगे बढ़ गया है।'

मंजु फिर मजाक करती हुई बोली, 'दिल्ली तो शायद हिन्दुस्तान में नहीं—वहीं की बात कर रहे हो न?'

हाँ-हां, वहीं की बात कर रहा हूँ। वह हिन्दुस्तान में हुआ तो क्या है वहां तुम्हारी हिन्दुस्तानियों की सी बातें नहीं हैं।

नई दिल्ली में चले जाओ, स्त्री और पुरुष एक दूसरे कीं कमर में हाथ डाले घूमते हुए मिलेंगे। खुल कर बातें करनी, खुल कर हंसना कितना अच्छा लगता है। तबीयत खुश हो जाती है। यहां आओ तो वही सोलहवीं सदी की बातें।'

मंजु मुँह बिचकाते हुए बोली 'छी, भई ! यहाँ के लोग तो अभी डंगर ही हैं। तुम तो नई दिल्ली की किसी मेंम से ही शादी करना वरना जिन्दगी भर कुढ़-कुढ़ कर रह जाओगे।'

मनोहर को मंजु के मजाक करने के ढंग पर हंसी आ गई। हंस हुए ही बोला, 'कर तो लेता, पर दिल और दिमाग पर तुम्हारा जो जादू छाया हुआ है, उससे मुक्त हो सकूं, तब न।'

'अच्छा' ? मंजु कृत्रिम आश्चर्य के साथ कटीली दृष्टि डालती हुई बोली, 'सन्देह है क्या ?' मनोहर मुस्करा कर बोला।

मंजु बिचकती हुई बोली, 'अरे ! मनोहर बाबू ! होश की दवा करो। देहरादून के रईस हो। मामूली हेसियत के आदमी नहीं। कांटे दार झाड़ियों से उलझना आपको शोभा नहीं देता, किसी उघान में जाइयेगा, जहां तबीयत खुश हो सके।'

मनोहर मंजु के व्यंग को भाप गया। हंसता हुआ बोला, यदि कांटेदार झाड़ियों से तुम्हारा तात्पर्य स्वयं से है, तो मुझे उद्यानों की अपेक्षा झाड़ियों में ही रहना पसन्द है। बोलो क्या कहती हो ?'

मंजु बोली, 'जरा अपने पिता जी से भी पूछ लिया होता।'

'मुझे उनसे पूछने की आवश्यकता नहीं।'

'क्यों।'

'अपनी इच्छाओं का मैं स्वयं मालिक हूँ।'

'तुम्हें किसी का भय नहीं ?'

'मैं कोई चोरी कर रहा हूँ ? जावन साथी चुनने का मुझे अधिकार है।'

'पूरे विश्वास के साथ कह रहे हो ?'

'डंके की चोट के साथ।'

'तो अभी चल कर दीवान साहब और आचार्य का आशीर्वाद प्राप्त कर लें। मैं भी उद्यत हूँ, अब जरा कदम तेज बढ़ाओ।' कहते हुए मंजु सचमुच ही तेज गति से चलने लगी।

मनोहर झुंझला कर बोला, 'यह क्या पागलपन कर रही हो। क्या इन बातों में इतनी जल्दी की जाती है।'

'जल्दी नहीं बहुत विलम्ब हो चुका। समझे ?'

छोड़ो मंजु इन बातों को। 'आज की संध्या मजेदार न रही।'

मंजु रुकी और गौर से मनोहर को देखती हुई बोली, 'संध्या से किसी की उमीदें बढ़ती नहीं, मनोहर बाबू ! और अब तो संध्या भी न रही, रात के तिमिर में सब कुछ डूबती जा रही है—परछाइयां ही केवल अब नजर आयेंगी।'

मनोहर ने मंजु के शब्दों को लक्ष्य किया और फिर उसके मुख की ओर देखा तो वह कुछ विमूढ़ सा हो चला, बोला, 'क्या हो गया है तुम्हें जो अचानक इतनी भावुक हो उठी हो ?'

मंजु चुप रही।

मनोहर बोला, 'बताओ न मंजु ? यह कैसी बातें कर रही हो ?'

'ठीक ही कह रही हूँ, मनोहर बाबू ! मेरी मंगनी हो चुकी है, शायद शादी भी कभी की हो जाती, पर दूसरे पक्ष ने ही ढील कर रखी है।'

'तुम्हारी शादी ? आश्चर्यवत मनोहर चिल्लाया।'

'हाँ, इसीलिए तो कह रही हूँ कि कुछ विलम्ब तो हो ही गया है, अधिक विलम्ब का अर्थ होगा सदैव के लिए तुम से बिछड़ जाना।'

'ये क्या कह रही हो ?'

'सच कह रही हूँ। वह भी कहीं दिल्ली में ही अध्यापक हैं और देहरादून के समीप ही किसी गाँव के रहने वाले हैं—उनका नाम महिम है।'

'महिम ?'

'हां, अब तुम बताओ, तुम्हारा क्या इरादा है ?'

मनोहर चुप हो गया।

मंजु बोली, 'तुमने मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।'

मनोहर थोड़ी देर तक सोचता रहा फिर बोला, 'मुझे समय दो, मंजु देहरादून जाकर मैं पिता जी को भी जरा समझा लूं।'

'लेकिन अभी तो तुम कुछ और ही मत व्यक्त कर रहे थे।'

'हां मैं समझता हूँ कि वह मेरी भूल थी। तुम्हीं ठीक थीं।' दबी हुई आवाज में मनोहर बोला।

मंजु ने एक वक्र दृष्टि मनोहर पर डाली और पग बढ़ाने लगी। रास्ते में फिर कोई उनकी और बात चीत नहीं हुई। छात्रावास के समीप पहुँचने पर मनोहर बोला, 'तुम सीधी चली जाओ, मैं यहाँ से नीचे खेतों में होता हुआ पहुंच जाऊंगा।'

'नहीं, नहीं चले आओ। यूं छिप कर जाने से क्या लाभ' मंजु बोली। मनोहर विस्मय में उसे देखता ही रह गया।

अगले दिन विद्यालय का वार्षिकोत्सव हुआ। बाहर से कुछ बड़े-बड़े विद्वान भी आये हुए थे। उनके भाषण हुए। छात्र और छात्राओं की वाक प्रतियोगितायें भी हुईं। कार्यक्रम में मनोरंजन की कुछ 'आईटमें' थी, वे भी पूरी हुई और अन्त में छात्र एवं छात्राओं को पुरुस्कार वितरण करने से पूर्व दीवान महिधर का भाषण और फिर आचार्य की तेजस्वनी वाणी गूंज उठी। उन्होंने विद्यालय में सह-शिक्षा के श्रीगणेश के निश्चय की घोषणा की और इसी प्रकार संगीत, चित्र कला एवं नृत्य की सम्पूर्ण व्यवस्था करने का दीवान साहब के संकल्प को पढ़ कर सुनवाया। तालियों की गूंज से इन दोनों घोषणाओं का स्वागत किया गया।

पुरस्कार वितरण के उपरान्त जब उत्सव समाप्त हो गया तो मंजु आगे बढ़ कर मनोहर के पास गई और बोली, 'जब आचार्य ने सह-शिक्षा की घोषणा की तो एक बार तो मेरे जी में आया कि प्रस्तावित्त सह-शिक्षा के प्रति विरोध स्वरूप दो शब्द बोल ही दूँ, पर संकोच मार गया। कभी इस स्टेज पर बोली ही नहीं।'

मनोहर ने जोर का ठहका लगाया और बोला, 'तुम्हें स्टेज पर

बोलने को समर्थ बनाने के लिए ही तो सह-शिक्षा प्रारम्भ की जा रही है और तुम उसके प्रति विरोध रखती हो ?'

हाँ, कहना तो आप का भी ठीक ही है। पर यह भी सत्य है कि मेरी एक ही अनुभूति से आचार्य के तर्क सब ठण्डे पड़ जाते। मैं उन्हें बता देती कि पुरुष का थोड़ा सा सम्पर्क भी स्त्री को विचलित करने के लिए पर्याप्त है। फिर सह-शिक्षा का मतलब तो रोज बरोज के सम्पर्क से है।'

मनोहर कुछ भी न बोला। मंजु के तीर कौन से निशाने पर लग रहे थे, यह वह जानता था। वह स्नेह-सिक्त शब्दों में बोला, 'मंजु ! यदि तुम मुझ से अलग भी हो गई तो भी मैं तुम्हें भूलूंगा नहीं।

जाते समय कड़वे बोल सुना कर तुम केवल मुझे दुःख पहुँचा रही हो।'

मंजु ने सुना तो मनोहर का मुंह देखने लग गई। मानो उसके शब्दों को वह उसके मुख पर प्रच्छन्न भावों से मिला रही थी। और आखिर फिर आंखों में आँसू भर हठात वहां से चल दी।

———

५

महिम और मुन्नवर के मध्य जो पारस्परिक स्नेहयुक्त व्यवहार शुरु-शुरु में था, वह अब जाता रहा। दोनों के बीच उस थोड़े से अर्से में ही काफी खिचाव आ गया था। यहां तक कि कभी-कभी तो वे दोनों आपस में बोलते तक भी नहीं थे। यह कहना तो अतिशयोक्ति होगी कि वे एक दूसरे से घृणा करने लग गये थे पर यह सच था कि उनके मध्य वह प्यार और आकर्षण अब कतई लुप्त हो चुका था जो एक सुन्दर पत्नी और समझदार पति के मध्य होता है। महिम की शिकायत थी कि मुन्नवर निर्लज्ज, मूंहफट, क्रोधी और कला विहीन स्त्री थी। जबकि मुन्नवर का रोना इस बात का था कि महिम, उसके प्रति बिल्कुल लापरवाह हो गया था और उसका पहले जैसा आदर नहीं करता था। यहां तक कि नौकर और अन्य दूसरे मित्रों के सामने वह उसे अपमानित करता था। उसका खूबसूरत लाल मुखड़ा अब पीला पड़ गया था मानों वह दिनों से रोगग्रस्त चली आ रही हो। उसका वजन कम हो गया था। रोते रहना उसकी दिन रात की क्रिया होगई थी। इतना होते हुए भी महिम ने आकर रूमाल से उसके आंसू नहीं पोंछे, इसी का उसे सबसे अधिक दुख था।

महिम के मित्रों में सबसे अधिक आना जाना था मोहन का। पति पत्नी की इस खींचातानी में उसका आना जाना अब और बढ़ गया था। महिम के समक्ष वह मुन्नवर को वेश्या के रूपमें चित्रित कर उसे मुन्नवर के प्रति और अधिक भड़काता और जब एकान्त में उसकी मुन्नवर से बातें होती तो वह मुन्नवर की करुण दशा पर भी कभी कभी कृत्रिम आँसू बहा देता।

'तुम वैश्या रही हो, भाभी ! ये क्यों भूल जाती हो कि महिम को इस बात का ख्याल नहीं है। वह तो अब पछता रहा है कि एक बाजारू औरत को, जिसे कि उसके मित्र भी भोग चुके हों, क्यों घर ले आया। आखिर उसका ऐसा सोचना गल्त नहीं है।'

मुन्नवर और बातों का तो बड़ी जोरसे प्रतिवाद करती पर जब उसे वेश्या होने का आभास कराया जाता तो बेचारी मूक हो जाती मानों उसके पास इसका कोई उत्तर न था।

वह रो उठती औ पूछती, 'मोहन ! क्या ऐसा कोई रास्ता नहीं कि मैं महिम की नजरों में फिर चढ़ जाऊं। 'आखिर कोई चीज़ तो थी ही जो उसे मेरे करीब ले आई। उसे किसी भी कीमत पर खोना नहीं चाहती क्योंकि वह मेरी मुहब्बत का निशान है। उसके बगैर में जिन्दा नहीं रह सकती।'

मोहन उसी पलंग पर जिस पर कि बैठे हुये वह मुन्नवर के साथ बातें करता, लेट जाता और मुन्नवर के प्रश्नों का उत्तर देता। 'तुम्हारा मुहब्बत सच्ची है, क्योंकि उससे मुलाकात होने हर तुम्हारे अन्दर कोई वासना की भूख नहीं थी वैश्या के साथ इस भूख का प्रश्न ही नहीं उठता। अस्तु तुम्हारी मुहब्बत बासना नहीं रहित थी पर महिम तो तुम्हारीं जवानी पर ही कुरबान हुआ। आखिर जो हुस्न तुमने पाया है उससे तो खूएसूरत से खूबसूरत औरत भी शर्म खा जायें। इसमें कोई शक नहीं।'

मुन्नवर रोते २ भी थोड़ा मुस्करा जाती और बोलती 'क्या करूं इस हुस्न का जो मेरे काम नहीं आया। अब बाजार में तो बैठूंगी नहीं

कि इस हुस्न को वेच कर गुजारा करूं ।'

'लेकिन भाभी ! तुम इतनी मायूस क्यों होती हो ? तुम्हारी मुहब्बत नाकामयाब रही—इसका दोष तुम पर तो नहीं है—तुम तो बेचारी अभी भी उस बेवफा पर जान दे रही हो। कुसूर उसी का है । यदि वह ठुकराने पर ही आया हुआ है तो मत अपने आप को ज्यादा जलील करो।

'लेकिन मोहन ! मैं जाऊं कहां ? मैं कभी गुस्से में घर से निकल जाऊं तो वह कभी कभी मेरी खोज नहीं करेगा ।'

'तुम विल्कुल बेफिक्र रहो—यदि कभी वह दिन आही गया तो मैं जिन्दा हूँ, मर नहीं गया । समझीं ?

मुन्नवर को मोहन के शब्दों से बड़ी सान्त्वना मिलती मानो डूबती हुई स्तिथी में मौहन ही उसका एक मात्र सहारा था । वह कृतज्ञता से मोहन को देखती । मोहन हठ करता 'कभी अपने हाथ से चाय नहीं पिलाओगी । जब भी आओ । अपनी करुण कहानी सुना कर दुःखी ही कर ही भेजोगी । अच्छी बात है भाभी ! दूसरे जन्म में बदला लूं गा ।'

मुन्नवर मोहन की आत्मीयता से भरी ऐसी बातों को सुनती और गद २ हो जाती । तत्परता से स्टोव जला कर चाय बनाती और हंसते हुये मोहन के हाथ मैं चाय वा प्लाला रख देती ।

'बोला, अब रोवोगी तो नहीं' चाय का चुस्की लेता हुआ, मोहन यार भरी घुड़की देता और मुन्नवर उसी तरह गदगद हो हंसती हुई गर्दन हिला देती ।

मोहन नित्य इस बात से सतर्क रहता कि माणक की उपस्थिति में वह कभी भी मुन्नवर से चाय आदि की हठ न करे पर जब मुन्नवर अकेली होती तो उसकी हठ चाय से ही समाप्त न होती । वह मुन्नवर को टाँगें मारता हुआ बोला, 'खा नहीं जाऊँगा तुम्हें जो यूं हट कर बैठी हो । समझी ?'

मुन्नवर उसका मन रखने को उसी के पास आकर हंसती हुई बैठ जाती। मोहन उसे गजल सुनाने का आग्रह करता तो वह पहले तो माणक का भय दिलाकर असमर्थता प्रकट करती फिर जब मोहन कृत्रिम गुस्सा प्रकट कर रूठने का-सा अभिनय करता तो फिर मुन्नवर पिघल कर हल्की आवाज में एक आध गजल भी सुना देती। इसी प्रकार मोहन मुन्नवर के करीव आता गया और मुन्नवर भी उस पर भरोसा करने लग गई। स्त्री को अबला कहते हैं, शायद इसीलिए कि वह अपने ही बल पर खड़ी होने को आज विल्कुल असमर्थ हो गई है। उसे कोई न कोई सहारा चाहिए। महिम के प्यार से वंचित होने पर मुन्नवर के अन्दर इतनी हिम्मत न रही कि कभी मोहन की माँग को ठुकरा दे। वह अब अपना भविष्य देख रही थी जो कि सर्वथा अंधकार सा लगता था। उसे कुछ नहीं सूझता था कि कैसे उस अंधकार में वह अपना रास्ता ढूंढ निकाले। एकमात्र आशा की किरण अब मोहन का सहारा रह गयी थी। कैसे फिर वह मोहन की उपेक्षा करती।

एक दिन मोहन आया और बोला, 'भाभी ! आज तो इतना सुन्दर प्रोग्राम बनाया है कि तुम्हें दुनिया ही बदली हुई नजर आएगी। बस जरा जल्दी से तैयार हो जाओ।'

'मुन्नवर को विशेष खुशी तो न हुई पर फिर भी कृत्रिम रूप से हंसती हुई बोली, 'सुन तो लूं पहले—क्या प्रोग्राम बनाया है।'

'पहले कपड़े पहनो। जरा मैक-अप खूब हो और साड़ी आदि भी शरीर पर ऐसी जंचे कि······।'

मुन्नवर पहले तो चुप रही। फिर भय प्रकट करती हुई बोली, बाहर जाना मुमकिन नहीं होगा। माणक घर पर ही है। तुम्हारे साथ जाते देखेगा तो क्या कहेगा।'

मोहन तुनक कर बोला, 'ओह ! कैसी बातें कर रही हो ? मैं कोई पराया हूँ जो माणक आपत्ति करे। उसे भी मैं समझा दूंगा—तुम तैयार हो जाओ।'

मुन्नवर फिर भी पूर्ववत अन्दर ही अन्दर डर रही थी। बोली, 'शाम को महिम घर आकर सुनेगा तो जरूर ही कोई कयामत ही आ जायेगी।'

मोहन महिम के प्रति मुन्नवर की स्वामी भक्ति से अन्दर ही अन्दर जल उठा पर प्रकट में बोला, 'कुछ नहीं होगा, भाभी! तुम तैयार तो होओ, मैं सब निबट लूंगा।'

आखिर मुन्नवर डरती हुई दूसरे कमरे में चली गई और थोड़ी देर बाद कपड़े पहन कर वापिस उसी कमरे में आती हुई बोली, 'मोहन! मैं तुम्हारे भरोसे पर ही कदम बाहर रख रही हूँ। तुम जानो अगर मेरा कोई नुक्सान हो।'

मोहन ने उसे यूं भयभीत देखा तो भावुक-सा हो आगे बढ़ा और उसे अपने बाहुपाश में लेते हुए बोला, 'मैं जानता हूं, भाभी! तुम बहुत दुःखी हो पर जरा भी फिक्र न करो। मैं तुम्हारे साथ हूँ।'

मुन्नवर ने सहारा पाया तो रो पड़ी।

संयत हो जब वह मोहन के पीछे २ दूसरे कमरे में आई तो माणक से आंख न मिला सकी। मोहन बोला 'माणक। भाभी मेरे साथ जा रही है, महिम को देना देना।'

माणक कुछ बोला तो नहीं पर उसकी आँखों में स्पष्ट विरोध झलक उठा था। और मुन्नवर? वह मोहन के साथ मकान की सीढ़ियां उतरने लगी तो उसका मन किया कि दौड़ कर लौट जाये और महिम की फोटो लेकर वह उस पर हजारों चुम्बनों की बौछार करे ताकि अपनी उस क्रिया से वह उस टीस को बाहर निकाल सके जिसे वह प्रकट करने में असमर्थ थी। वह यह कि महिम के प्यार के अभाव में वह केवल सहारा ढूंढ़ने के लिए ही यूं अपराध की भावनाओं से लदी हुई भीगी बिल्ली की भांति मोहन के पीछे चल पड़ी थी।

मोहन ने मुन्नवर में कोई गति न देखी तो बोला, 'तुम तो बिल्कुल

मुर्दा हो गई हो। न मालूम क्या सोच-सोच कर तुम अपने को जला रही हो। भगवान कसम, य ी हालत रही तो जल्दी बूढ़ी हो जाओगी। अब महिम कुछ दिन रखेगा भी, पर फिर तुम्हारी सूरत से ही नफ़रत कर वह एक पल भी तुम्हें पास न आने देगा।'

'मुन्नवर ने मुख पर हँसी लाने की चेष्टा की पर असफल रही।'

मोहन ने अब एक तांगा किया और थोड़ी देर में वे एक सिनेमा घर के पास पहुँच गये। टिकट तो मोहन ने पहले ही ले लिए थे, अतः ताँगे से उतर कर के तुरंत हाल के भीतर चले गये। मोहन हँसता हुआ पूरी कला से मुन्नवर को गुदगुदाने की चेष्टा कर रहा था पर मुन्नवर के मिजाज में उसने कोई विशेष अन्तर नहीं पाया। वह थोड़ा बहुत जरूर बीच-बीच में उसकी बातों पर हँस देती थी पर उस हँसी में वह प्रवाह नहीं था जिससे बाज वक्त उसकी रग-रग खौल उठती थी—हंसते हंसते गाल और कान लाल हो उठते थे।

हाल की जब बती बुझ गई और खेल शुरू हुआ तो मोहन ने मुन्नवर की कलाई हाथ में ली और उसे प्यार से धीमे-धीमे मसलने लगा। मुन्नवर ने कोई हरकत नहीं की। चुप बुत की तरह बैठी रही। थोड़ी देर बाद फिर मोहन के अधर उसकी ओर बढ़े तो मुन्नवर अपने हाथ से ने धीमे से उसका मुँह पीछे को हटा दिया। हल्के स्वर में बोली, इश्क करने लगे हो?'

मोहन भावनातिरेक हो बोला, 'न मालूम यह इश्क है या आकर्षण। तुम्हें देखकर बरबस ही खिंचा चला आता हूं। शायद तुम्हारे प्रति मेरी हमदर्दी बढ़ते-बढ़ते प्यार बन गई हो। बुरा तो नहीं लगा?'

नहीं, मुन्नवर बोली, 'मेरे लिए यह बच्चों का सा खेल है। पर मुझ से प्यार कर तुम्हें क्या मिलेगा मोहन?'

मोहन प्रोत्साहित हो बोला, 'तुमने मुझे प्राण दिये हैं मुन्नवर। यदि इसका तुम एतराज कर देती तो न मालूम मुझे कितना बड़ा सदमा

पहुंचता। तुम्हें पाकर मुझे क्या मिलेगा, यह तो बताना मेरे लिए मुश्किल है, पर समझलो कि मुझे दुनिया ही मिल गई।'

मुन्नवर अब बड़ी देर बाद खिलखिला कर हंस पड़ी। बोली, 'ज्यादा जज़्बाती न बनो। मेरे पास अब कुछ नहीं रहा। जिस्म था वह कितनों को ही दे चुकी हूँ; दिल था, वह मुक्कमिल तौर पर महिम का हो गया। तुम्हें क्या मिलेगा जो इश्क फरमा रहे हो ?'

मोहन अन्दर से तिलमिला उठा पर अन्दर के भाव छुपाते हुए कृत्रिम उल्हाने स्वर में बोला, 'यह क्या तुम महिम की रट लगाए रहती हो ? वह तो तुम से इतनी तीव्र घृणा करता है और तुम ही कि उसे उतनी ही तीव्रता से प्यार किये जाती हो।

मोहन बाबू ! प्यार करना या ना करना इन्सान के बस का नहीं। महिम मुझे नफरत तो क्या, जहर भी पिला दे, तब भी उसी के कदमों में जिन्दगी गुजारना पसन्द करुंगी। डर तो इस बात का है कि उन कदमों में भी पनाह मिलनी मुश्किल दिखाई दे रही है।'

मोहन ने चाहा कि कह दे मुन्नवर को कि तू ठुकराने के ही काबिल है पर चुप रहा। उसने फिर मुन्नवर की ओर हाथ बढ़ाया तो मुन्नवर ने उसे टोक दिया। बोली, 'इतने समझाने पर भी नहीं समझे, मोहन ?' मैं इस समय बड़ी मुसीबत में हूँ, मुझे इश्क नहीं, सहारा चाहिए। इस समय फक्त तुम्हीं मेरे उमीदों के चिराग दो। गर तुम भीं मुझसे इश्क की तमन्ना कर बैठे तो मैं टूटे हुए दरख्त की तरह गिर पड़ूंगी। मैं तुम्हें भाई जान समझती हूँ, मोहन !'

मोहन मुन्नवर के उत्तर पर विगड़ गया। रुक्ष आयाज में बोला, ' 'छी: मुन्नवर ! तुम्हारे अन्दर कोई मर्यादा नहीं है। मुझसे तुम इश्क लड़ा चुकी हो, सब तरह की बेशर्मी और हिमाकत कर बैठी हो। क्या अब भाई जान बनाने जा रही हो ?'

मुन्नवर की आँखों में आंसू आ गये। बोली, 'मैंने कब तुमसे बेशर्मी की ? जब से महिम की बीबी बनी हूँ, तुम्हें भाई जान के नाते ही देखा

है। हंसी मजाक भाई जान के साथ भी तो चलता है, गर ख्यालात पाक हों। हां, जब मैं तवाइफ थी, तब की बात अलहदा थी क्योंकि तवाइफ का मर्दों से फक्त एक ही रिश्ता होता हैं—आशिक का। मेरे अन्दर की तवाइफ मर चुकी है। अब मैं फक्त एक औरत हूँ जिस पर मुसीबत के पहाड़ टूट पड़े हैं। बोलो कबूल करते हो मेरे रिश्ते को ?'

मोहन ने सुना तो उसका दिल खटटा सा हो गया। वह मौन रहा। मुन्नवर शायद फिर कुछ बोली, पर वह अब तन्मयता से खेल देखने लग गया था खेल समाप्त होने पर जब मुन्नवर ने उसकी ओर नजर की तो उसे लगा कि मोहन का रुख एक दम बदल चुका था।

सिनेमा हाल से बाहर निकलते हुए बोली, 'मायूस हो गए क्या ?'

मोहन रूठता हुआ बोला, 'मायूस न होऊं, देवर से भाई जान बना रही हो। सोचा तो था कि जरा ऐश रहेगी, हंसी मज़ाक होगा ताकि तुम्हारी मायूसी भी खत्म हो जाएगी पर तुम हो कि चन्द महीने बीवी बन कर क्या रही कि दरअसल सती साध्वी स्त्रियों की भांति नखरे करने लगी। मुझे तुम से अब कोई दिलचस्पी नहीं रही।'

मुन्नवर ने सुना तो हेरत में उसके मुंह को देखती ही रही। दृढ़ता पूर्वक बोली, गिरगिट का सा रंग बदल गये तुम तो। क्या इसी ऐश के लिए तुम मेरे साथ हमदर्दी करते थे ?'

मोहन भी लड़ने पर उतारू हो चुका था, बोला, 'नहीं तो तुम्हारा आचार डालने के लिए तुमसे हमदर्दी करता ? सारी जिन्दगी र तो लुटाती रही तुम अपने को और अब बातें कर रही हो मानो जैसी कितनी बड़ी सीता, सावित्री बन गई हो।'

मुन्नवर गुस्से में अपने होंट काटती हुई बोली, 'बदजुबान कुत्ते ! गर आगे कुछ बोला तो यहीं पर चप्पलों से मरम्मत कर दूंगी। मैं तवाइफ रही, चाहें फिर बीवी बन गई; पर अब तू आगे बोला तो हैवान बन जाऊंगी। तुझे नौच-नौच कर चबा डालूंगी।'

मुन्नवर की सांस तेज हो गई थी। उसके फूले हुए नथुनों और और आग बरसाती हुई आँखों को देख कर मोहन भय के मारे कांप उठा। उसे अपनी इज्जत खतरे में दिखाई दी। वह मुड़ा और जल्दी से भीड़ में गायब हो गया।

मुन्नवर ने एक लम्बी साँस ली और मन ही मन बोली, 'जाहिल कहीं का, मेरी लाचारी का नाजाइज फायदा उठाने चला था।'

वह बस स्टेंड के पास आई और बस के आने पर उसमें चढ़ वापिस घर आ गई। बस में बैठी हुई सारे रास्ते वह कभी मोहन की नीच हरकतों पर तो कभी महिम की बढ़ती हुई बेवफाई पर सोचती रही। क्रोध और निराशा दोनों उसकी आंखों में तैरते रहे।

जब वह घर पहुँची तो अन्धेरा होने जा रहा था। महिम और माणक चौके में बैठे हुए शायद उसी के सम्बन्ध में बातें कर रहे थे। मुन्नवर को देख कर वह चुप हो गये। उनके चेहरों पर क्षोभ और गम्भीरता थी। मुन्नवर समझ गई कि माणक ने सब बातें बता दी होंगी। वह सीधे सोने वाले कमरे में चली गई और कपड़े बदल पलंग पर आ लेट गइ। कमरे में बिल्कुल नीरवता थी, केवल बीच-बीच में चौके से थोड़ी खटपट की आवाज आ रही थी। जिससे प्रतीत होता था कि माणक भोजन तैयार कर रहा था। घण्टा आध घण्टा हो गया पर न तो महिम ही मुन्नवर के कमरे में आया और न मुन्नवर ही दूसरे कमरे में गई। उसका मन पहिले से ही भारी था, अब इस प्रकार उपेक्षित किए जाने पर रो उठी और लेटे-लेटे सिसिकियाँ भरती रही। जब एक घण्टा और बीत गया, तब वहीं माणक उसके पास आया और बोला, 'बिटिया रानी! चलो, भोजन करो।'

मुन्नवर बोली, 'महिम—खा चुके हैं क्या?'

'हाँ, वह तो कभी के खा चुके।'

मुन्नवर माणक के बात करने के ढंग पर और यूँ—खुले तौर

उपेक्षित किये जाने पर मन ही मन अत्यन्त दुःखी हुई ! उसे लगा मानो पीठ पीछे उसके विरुद्ध कोई भीषण षडयन्त्र रचा गया हो। माणिक के नपे तुले और छोटे से उत्तर से उसे कुछ ऐसा आभास हुआ मानो बात करने का यह सरल और शान्त रूप—किसी आने वाले भयंकर झंझावात का पूर्व सूचक था। पहले की सी बात होती तो वह माणिक पर बरस पड़ती और घर को सिर पर उठा लेती पर आज न तो उससे कुछ बोलते बन पड़ा और न वह कुछ सोच ही पाई कि क्या करे और माणिक को क्या उत्तर दे ? वह भयभीत हो रोनी सी सूरत लिए हुए माणिक को देखती ही रही।

माणिक ने अपनी बात दुहराई। बोला, 'बिटिया रानी ! चलो, देर हो रही है, भोजन कभी का ठण्डा हो चुका।'

मुन्नवर फिर भी चुप रही। पर फिर वाद विवाद बढ़ने के डर से बोली, 'मुझे भूख नहीं है।'

माणिक बोला, 'भूख नहीं है तो भी थोड़ा बहुत तो खा लो, खाली पेट सो जाना अच्छा नहीं है।'

पूर्व कि मुन्नवर कुछ बोलती, दूसरे कमरे से महिम की आवाज सुनाई दी, बौडा ! नहीं खाती है तो मत खाये, यह खुशामद किस बात की जा रही है ?'

मुन्नवर ने सुना तो ऐसा लगा मानो जिस षडयन्त्र की उसने कल्पना की थी, वह अब क्रियान्वित होने लगा है। वह अपने को असहाय सा अनुभव करती हुई रो पड़ी।

माणिक ने मुन्नवर का वह करुण रूप देखा तो पिघल उठा। द्रवित स्वर में बोला, 'बिटिया रानी ! यह क्या करने लगी हो ? चलो उठो ! कम से कम मेरा मुंह रख लो। यदि तुम कहती हो तो भोजन यहीं पर ले आऊँ हूँ ?'

मुन्नवर माणिक के शब्दों को सुनकर कुछ आश्वास्त हुई पर पूर्व

कि कुछ बोलती, उसे सामने महिम खड़ा दिखाई दिया। माणक को डाँटते हुए महिम के शब्द उसके कानों में पड़े ।

'आज तक मैं इसके नखरों को सहन करता गया; इसका परिणाम तुम से छुपा हुआ नहीं है । फिर मेरी समझ में नहीं आता कि जानते हुए भी तुम उसी गलती को दूहरा रहे हो। मैंने तुमसे कहा नहीं कि नहीं खाती है तो मत खाये। ये खुशामदें क्यों की जा रही हैं ?'

मुन्नवर सुन कर सन्न हो गई। महिम के रौद्र रूप को देखकर उसके मस्तिष्क को काठ सा मार गया। पत्थर की भांति गतिहीन हो वह सूनी आँखें से केवल देखती ही रही।

माणक ने एक ओर मुन्नवर की उन सनी आँखों को उस करुण और विभ्रान्त सी मूर्ति को देखा और फिर दूसरी ओर आग की चिंगारियां बरसाते हुए मालिक की लाल-तनी हुई दृष्टि को, तो धीमें से गर्दन नीचे कर ली। सोचते हुए थोड़ी देर बाद महिम को सम्बोधित करता हुआ बोला, 'बेटा ! यूं गुस्सा न करो। जाओ बिस्तर पर आराम करो।'

महिम गम्भीर और कठोर स्वर में बोला 'बोडा ! समझौता कराने का व्यर्थ प्रयास मत करो। मैं तुम्हारी दानिशमन्दी को समझता हूँ और उसकी इज्जत करता हूँ। पर इस समय तुम्हारी दानिशमन्दी मुझे बेमौके की लग रही है। मैं मुन्नवर से साफ-साफ दो बातें करना चाहता हूँ, तुम यूं बुजुर्ग बन कर इस मौके को टालने में सहायता मत करो। बहुत देर से एक फोड़ा पकता जा रहा है, आज नश्तर चलाकर मैं उसके सारे मवाद को बाहर निकालना चाहता हूं ताकि रोज की हाय-हाय से छुटकारा मिले। तुम चौके में चले जाओ।'

महिम के शब्दों में कठोरता के अतिरिक्त एक अडिग निश्चय भी था।

माणक सुन कर चुप हो गया ! वह तो कुछ भयभीत हो उठा पर मुन्नवर महिम के शब्दों को सुनकर कुछ चेतन सी हो गई। उसकी विचार शक्ति जो सुन्न और जड़ सी हो चली थी, मानों लौट आई हो।

धीमे और करुण स्वर में वह बोली, 'मोहन के साथ बाजार चले जाने पर ही इतना खफा हो न ? लेकिन मुझे क्या मालूम था कि वह एक जाहिल आदमी है।'

महिम और माणक ने मुन्नवर को मोहन के प्रति जाहिल शब्द का प्रयोग करते हुए सुना तो दोनों को अचानक एक खटका सा हुआ। माणक सिर झुकाये चौके में चला गया किन्तु महिम उसी तरह गम्भीर एवं कठौर स्वर में बोला, 'तुम्हें मालूम था या नहीं, उससे मेरा अब कोई प्रयोजन नहीं रहा। तुम अब जाकर उसी के साथ रहो। वेश्या के लिए मेरे घर में कोई स्थान नहीं है।'

मुन्नवर ने सुना तो आश्चर्य में दांतों तले उंगली दबा दी। दंद में वह चीख सी उठी, बोली 'जो तुम्हें खटका हुआ है यह भी गल्त है, मुरासर गल्त। जाहिल तो मैंने उसे इसलिए कहा कि उसने मेरे साथ थोड़ी कमीनी हरकत की–जिसके मुत्तलिक मुझे उसकी तरफ से अन्देशा नहीं था।'

महिम बोला 'मुझे तुम्हारी सफाई नहीं सुननी है। मैं जो कह चुका हूं अब उस पर गौर करो। मैं शादी करने घर जा रहा हूँ और चाहता हूँ कि मेरे जाने से पूर्व तुम अपना प्रबन्ध करलो।'

मुन्वर ने सुना तो उसे लगा कि मानो कोई घोर विस्फोट हुआ हो, मानो कोई ज्वालामुखी फूट पड़ा हो अथवा किसी प्रलयंकर भूकम्प से विश्व की आधार शिला ही डगमगा गई हो। उसकी विचार शक्ति को फिर लकवा मार गया।

उसके होट बुद बुदाए, शादी करने जा रहे हो, किसकी शादी ?'

महिम अब कुछ शान्त हो चला। बोला 'आज पिता जी । पत्र आया है। मैंने तुम्हें पहले नहीं बताया था कि मेरा एक लड़की से ब्याह

निश्चिन्त हो चुका था। उसी के साथ व्याह होने जा रहा हैं।'

मुन्नवर सुन रही थी या नहीं, इसका पता नहीं ।टकटकी लगाए उसकी दृष्टि महिम के मुख पर जमी रही। वह उतर में कुछ नहीं बोली। महिम पुन: गम्भीर हो बोला 'अब तुम बताओ क्या फैसला करती हो ? मोहन के पास रहो या अन्यत्र कहीं, मुझु कोई आपति नहीं। मैं केवल यह जानना जाहता हूं कि तुम इस घर को कब छोड़ रही हो ?'

मुन्नवर फिर भी कुछ न बोली।

महिम गरज उठा, 'मैं तुमसे उतर का तकाजा कर रहा हूँ, मुन्नवर !

ये भोली सी सूरत बना कर-तुम मुझे भ्रम में नहीं डाल सकती। मकड़ी का ताना बाना था-वहमैंने झाड़ू से साफ कर दिया। अब तुम बजाए पुन: जाल बिछाने के वास्तविक स्थिति से परिचित हो सको तो उचित रहेगा। उत्तर दो मेरे प्रश्न का ?'

महिम की गरजना से मुन्नवर चौंक सी पड़ी। घबराई हुई सी बलात वह बोल पड़ी 'क्या उत्तर दूं ?'

महिम और अधिक भिन्नाकर बोला 'इतनी बकवास कर गया हूँ और सुन कर फिर पूछती है कि क्या उत्तर दूं। बहरी ! निर्लज्ज...'

मुन्नवर की आँखें सूखी पड़ी थीं, ठीक ग्रीष्म से तपी हुई-बालू की तरह अचानक़ न मालूम कहां से उनमें भर आया। झरने भाँति बरस पड़ी और ऐसी उन्होंने झड़ी लगा दी कि-मानो आँखें नहीं, आकाश बरस पड़ा हो !

महिम ने पूर्ववत अपना उतर का तकाजा जारी रखा, पर उतर देने की अपेक्षा जब मुन्नवर रोती ही रही तो वह उसी क्रोधी मुद्रा में लौटकर दूसरे कमरे में आ गया !

रात्री के १२ बज रहे थे। महिम चुपचाप अंधेरे में अपनी पलंग पर लेटा करवटें लेता हुआ सोचे चला जा रहा था कि कमरे की बती जल उठी। सूजी हुई आंखें लिए उसके सामने मुन्नवर खड़ी थी। वह क्रोध से बोला, 'क्यों आई तुम ?'

मुन्नवर उसके चरणों में लुढ़क पड़ी और उनपर चुम्बनों की बौछार करती हुई बोली, 'मुझे माफ करदो, मेरे राजा ! इन कदमों के अलावा मेरे लिए कहीं भी कोई दूसरी जगह नहीं है। मैं अपनी सारी आदतें बदल डालूंगी। जो तकलीफें तुम्हें पहुंचाई हैं-उनके लिए खुदा से दुआयें करुंगी कि मुझे बख्श दे।'

महिम को पहले तो लगा कि कोई नागिन उसके पैरों से लिपट चली हो पर फिर उसे महसूस हुआ कि नागिन-नहीं, कोई लता वृक्ष का सहारा ढूंढ रही है। वह कुछ द्रवित हो चला पर फिर तुरन्त ही अतीत उसके सामने खड़ा हो गया और उसकी भौं फिर घृणा में सिकुड़ गये। वह पैर हटाता हुआ बोला, 'पलंग पर बैठ जाओ, जो वातें करनी हों, बिना निमक मिर्च लगाए, उन्हे बोल दो। इतने दिन तुम्हारे साथ रहा हूँ, उसी के लिहाज पर इतनी छुट्टी दे रहा हूँ वरना तुमसे अब मेरा इतना भी रिश्ता नहीं रहा कि दो बातें करू।'

मुन्नवर ने प्राण पण चेष्टा कर अपने को संयत किया और बोली, 'ऐसा न कहो। मैं भले ही अब तुम्हें पसन्द नहीं आती, पर इतना हक ज़रूर रखती हूँ कि जब जरूरत पड़े अपनी गुस्ताखियों के लिए मुआफी की भीख मांग सकूं।'

महिम ने मुन्नवर की ओर देखा और फिर बड़े २ नेत्रों से घूरते हुए उसी गम्भीर एवं कठोर स्वर में बोला, 'मैंने पहले ही कह दिया था कि जो कुछ कहना हो, तुरन्त कह डालो। भूमिका बनाने की जरूरत नहीं।'

मुन्नवर ने गौर से महिम को देखा और फ़िर और संयत हो बोली, 'यह शादी वाली क्या बात कही थी आपने ?' सच बताओ, वह मुझे केवल डराने के लिए ही कही थी न ?'

'वह बिल्कुल सच है' महिम दृढ़ स्वर में बोला।

'सच है ? लेकिन मेरा क्या होगा ?' मुन्नवर बुद बुदाई

'यह सोचना अब स्वयं तुम्हारा काम है, मेरा नहीं।'

मुन्नवर फिर महिम के चरणों में लुढ़क पड़ी। बोली, 'नाराज होकर बातें न करो, मेरा दिल टूटा जा रहा है।। मेरे मुत्तलिक सोचना तुम्हारा काम क्योंकर नहीं है? उस मनहूस जिन्दगी से पिण्ड छुड़वा कर कौन मुझे यहाँ लाया था? तुम्हीं तो थे। अब गर ऐसी बातें करोगे तो बताओ मैं जीऊंगी या मरूंगी?'

'मैं तुम्हें लाया जरूर था पर इसी उम्मीद पर कि तवाइफपन छोड़ कर तुम घर की बहू बन जाओगी। पर तुम तवाइफ ही रही और तवाइफ के साथ घण्टे दो घण्टे आनन्द में बीत सकते हैं, जिन्दगी नहीं बीत सकती।'

मुन्नवर बोली, 'क्या ये हकीकत नहीं कि तुम मुझ से मुहब्बत करते थे?'

'बिल्कुल ठीक हैं! लेकिन यह भी हकीकत है कि केवल मुहब्बत पर ही यूं अपने को लुटा देना फक्त मजनुओं का काम है। मजनू सौ में से मुश्किल से एक या दो ही मिलेंगे बाकी प्रेमी इस नंगी मुहब्बत पर संस्कारों का आवरण चढ़ा हुआ देखना पसन्द करते हैं। मुहब्बत फक्त अपने ही बल पर ज्यादा देर तक दम नहीं भर सकती।'

मुन्नवर गुर्राई तो इसका मतलब है कि मुहब्बत झूठी है।'

'हां, समझलो कि एक नशा है, अगर उसे किसी का साथ न मिला।

'साथ किस का?'

'मैं बतला चुका हूँ, संस्कारों का साथ। मुहब्बत का भी तो भावनाओं से संबंध होता है। वह स्वयं किसी न किसी भावना से जन्म लेती है, स्वयं मूल भावना नहीं।' उसके अपने उपकरण होते हैं और फलने-फूलने के अपने साधन। कहीं सौंदर्य, कहीं गुण विशेष, कहीं

करुण परिस्थितियाँ और कहीं कर्त्तव्य भावना मुहब्बत को जन्म देती है। इसी प्रकार, त्याग अथवा स्वार्थ, उस मुहब्बत को जिन्दा रखती है। हमारी मुहब्बत भी उपरोक्त किसी न किसी भावना की देन थी जिसे किसी से पोषण नहीं मिला-जिस पर कोई आवरण न चढ़ सका। परिणाम स्वरूप वह सिसक उठी है—मौत के मुँह पर जा पहुँची।'

मुन्नवर कुछ न समझी। बोली, 'तुम मुझ से मुहब्बत करते हो या नहीं।'

'बस मुझे—सौ बात की एक बात बता दो—लेकिन बेखौफ होकर और पूरी इमानदारी के साथ।'

महिम मुन्नवर की हिम्मत पर कुछ अचंभित सा हुआ। कुछ क्षण उसकी ओर देखता हुआ बोला, 'शायद मुहब्बत करता हूँ, पर पत्नी समझ कर नहीं फक्त एक ऐसी औरत समझ कर जो रहम के काबिल होया यूं कहो कि जैसे मुझे कोई प्रेरणा मिल रही हो कि दीन समझ कर तुम से प्यार करता चला चलूं—स्वयं तुम्हें प्यार करने की कोई अभिलाशा मेरे अन्दर अब न रही। इसी लिए पत्नी के स्थान पर मैं अपनी मंगेतर को प्रतिष्ठित करने का निश्चय कर चुका हूँ। अब मैं तुमसे अधिक बातें करना पसन्द नही करता। जो मैंने पूछा था उसका उत्तर दो।'

मुन्नवर चुप रही। फिर कुछ सोचती हुई सी बोली, 'यकीन नहीं आता कि वाकई तुम बेवफाई पर उतर पड़े हो। मैं बदजुबान और बे हया रही, इसी लिए सबक सिखाना चाहते हो। हैं न यही बात?'

महिम बोला, 'खबरदार मुन्नवर! जिस चीज का फैसला हो चुका, उसके संबंध में अब कोई चर्चा न हो। तुम अपनी शंका कहीं एकान्त पा कर व्यक्त कर लेना। सम्भव है, उनका समाधान मिल जाय। मेरे साथ आगे की बातें करो। अब तुम्हारा क्या निश्चय है?'

मुन्नवर की आंखों में अंधेरा छाने लगा। निराश हो वह बोली, 'एक बात तो बताओ। गर मैं तवाइफ न हो कर—किसी इज्ज़तदार घर की बेटी होती और फिर मोहन के साथ बाजार घूम आती तो क्या तुम मुझे यूं ठोकर मार कर निकालने की हिम्मत कर सकते ?'

'पहले तुम बोलो कि इज्जतदार घर की वहू क्या यूं मोहन के सामने नंगी सी हो जाती ? माणक भी शर्म में गढ़ा जाता था तुम्हारी हरकतों पर। कभी नाच हो रहा है तो कभी गजलें गाई जा रही हैं—कहकहे लग रहे हैं, तो कभी कुछ और हो रहा है, जैसे कि यह घर न हो कर कोई कोठा हो और जैसी तुम मेरी बीवी न होकर अभी भी कोई तवाइफ ही चली आ रही हो। आश्चर्य तो इस बात पर होता है कि स्वयं तुम—उसकी नाजाइज हरकत को कमीनापना कह रही थी। कमीनों के साथ उसने कमीनापन कर दिया तो तुम्हें दुख क्यों हुआ ?'

मुन्नवर को कोई उत्तर न सूझा। फिर भी वह बोली, 'मैं यकीन दिलाती हूं कि आइन्दा से कभी फिर इस तरह की हरकतें नहीं करूंगी। मैं तुम्हें दिलोजान से मुहब्बत करती हूं—फक्त तुम्हें। तुम मोहन का जरा भी अन्देशा न करो। मैं बिल्कुल पाक हूं।'

लेकिन महिम पर मुन्नवर की बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह झुंझला कर बोला, 'इन बातों का अवसर जाता रहा, मुन्नवर ! अब आगे की बातें करो तो सुनूंगा, वरना मुझे सोने दो। रात बहुत बीत चुकी है।'

मुन्नवर चुप हो देखती रही। अचानक फिर वह रो पड़ी और वहां से उठ कर अपने कमरे में आ गई।

वह सारी रात महिम और मुन्नवर—दोनों ने सोचने में ही बिता दी। न मालूम किन-किन बातों पर वे सोचते रहे। कितनी बार वे दर्द में चिहुक उठे और कितनी बार वे एक दूसरे की जहालत और बेवफाई पर दांत भींचते रहे।

दूसरे दिन सुबह मुन्नवर यूं ही कभी एक कमरे से दूसरे कमरे में आती-जाती रही तो कभी थक कर पलंग पर लेट जाती। उसे उम्मीद थी कि उसके दर्द का अन्दाज लगा कर महिम शायद द्रवित हो जाय पर उसकी उम्मीद झूठी साबित हुई। महिम कभी कपड़ों पर 'प्रेस' करता रहा, तो कभी अपनी अटेची और बिस्तर बन्द तैयार करता रहा। शीघ्र ही भोजन कर वह फिर बाजार चला गया और जब शाम को ५ बज गये, तब कहीं वापिस लौटा। साथ में बहुत सा सामान था जिसे वह बाजार से खरीद कर लाया था। मुन्नवर कमरे के एक कोने में खड़ी-खड़ी देख रही थी कि यह सब क्या मामला था ?।

महिम आखिर माणक से बोला, 'भोजन जल्दी तैयार कर दो। ८ बजे गाड़ी छूटती है। मेरी सब तैयारियाँ हो चुकीं। अब केवल तुम्हीं पर देर है।'

मुन्नवर ने सुना तो उस पर वज्र टूट पड़ा। रूआंसी आवाज में बोली, 'यह तैयारी कहाँ की हो रही है ?'

महिम ने पालिश की डिबिया निकाली और ब्रुश लेकर जूतों को चमकाने लग गया। उसने मुन्नवर को कोई उत्तर नहीं दिया।

मुन्नवर रो पड़ी। महिम के पैरों में पड़ रोती गिड़गिड़ाती हुई बोली, 'मैं समझ गई हूँ, महिम ! तुम मुझे छोड़ रहे हो। ऐसा न करो। यकीन करो, मैं मर जाऊंगी। मैं एक पल भी जी न सकूंगी।'

महिम बेदर्दी से उसे अपने पैरों से हटाते हुए बोला, 'तू मरेगी या जीयेगी, यह तो बाद में पता लगेगा। मुझे इस समय काम करने दो।'

लेकिन मुन्नवर ने उसका हाथ पकड़ लिया। बोली, 'मैं तुम्हें नहीं जाने दूंगी। यदि जाना चाहोगे तो पहले मुझे मार डालो।'

महिम पहले तो चुप रहा और पीछे कड़क कर बोला, 'हट जा यहाँ से। इस रोने-धोने का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। यदि

और अधिक मुंह लगी तो मार-मार के कचूमर निकाल दूंगा।'

माणक पास ही खड़ा था, घबरा कर चहल कदमी करने लग गया। जाते समय कहीं मार पीट न हो जाय—इसी का उसको भय था ! वह मुन्नवर को सहारा देकर कमरे में ले गया। मुन्नवर पलंग पर जा कर धड़ाम से गिर पड़ी और सिसकियां भरने लग गई। करीब एक दो घण्टे बाद उसे गली में तांगे की खटपट सुनाई दी और फिर दूसरे कमरे में माणक और महिम की चहल कदमी। वह लेटी रही। कुछ मिनटों के बाद जब महिम उसके कमरे में दाखिल हुआ तो वह उठ बैठी। महिम एक लिफाफा बढ़ाते हुए बोला, 'इसमें पांच सौ रुपये के नोट हैं। यदि अक्ल से काम लोगी तो इससे शायद तुम्हें कुछ सहायता मिले। यह मकान छोड़ देना क्योंकि इसका किराया बहुत है। कहीं एक आध कमरे की खोज कर लेना। यदि कभी मेरी मदद की जरूरत पड़ी तो गाँव के पते पर पत्र डाल देना पर कभी उधर मत आना ! वरना मेरी रही सही सहानुभूति तुम खो दोगी। अब मैं जा रहा हूँ।' कहते हुए वह मुड़ा और सीढ़ियाँ नीचे उतरने जगा। सड़क पर ताँगा इन्तजार में खड़ा था, जिसकी पिछली सीट पर माणक बैठा था। ताँगा चल पड़ा तो महिम और माणक की दृष्टि ऊपर अपने कमरे की एक खिड़की पर पड़ गई जिसके सहारे खड़ी हो, मुन्नवर दांतों से अधरों को दबाते हुए अपनी रुलाई को रोकने का असफल प्रयास कर उन्हें देखती जा रही थी। एक दिन मुन्नवर को प्यार करते हुए महिम ने एक गीत गुनगुनाया था 'चांद छुप गया—चकोर देखता रहा।' आज दोनों को लगा कि गीत में छुपा हुआ भाव साक्षात प्रकट हो गया। तांगा मुन्नवर की दृष्टि से ओझल हो गया तो महिम ने अपनी डायरी निकाल कर दो चार पंक्तियां और लिख डालीं—

नीड़ का न सृजन हो सका,
प्राण कुछ चीत्कार कर उठे।

उड़ चला, भँवर पता नहीं किधर,
मूक होकली निहारती रही...।

———

७

मुन्नवर को दीवान साहब ने अपने कमरे के साथ वाले कमरे में टिका दिया था। साथ में उसकी देख भाल करने के लिए हवेली की ही एक स्त्री को नियुक्त कर दिया था जिसका नाम मीनाक्षी नाटियाल था। मीनाक्षी की आयु लगभग २२-२३ साल की थी और अट्टालिक की अन्दरूनी व्यवथा का सारा उत्तरदायत्व दीवान साहब ने उसी के सुपुर्द कर रखा था। मीनाक्षी टिहरी (गढ़वाल) जिले में 'मदनी नाम के एक गांव में एक गरीब परिवार में पैदा हुई थी। उसका पिता नारंगियां बेच कर निर्वाह करता था। मदनी नारंगियों के कारण सारे जिले में प्रसिद्ध था। वहाँ की नारंगियाँ देवप्रयाग ऋषिकेश और यहां तक कि देहरादून के बाजारों में खूब बिकतीं थीं। नारंगी की फ़ाँकें नागपुरी सन्तरों से भी रसीली और मीठी होती थीं। मदनी गाँव के इस बढ़ते हुये नारंगियों के व्यापार को देख कर टेहरी के राजा ने नारंगियों की बिक्री पर कर लगा दिया था जिससे गांव के लोग उत्तेजित हो उठे। उन्हींने कर का विरोध किया। इस विरोध का नेतृत्व किया मीनाक्षी के पिता ने, जो प्रजा मण्डल का एक सक्रिय सदस्य भी था। उन्हीं के नेतृत्व में आंदोलन मदनी गाँव तक ही सीमित न रह कर धीरे-धीरे व्यापक होता गया और आखिर सारे जिले की प्रजा में इतना

सहन करती रही। वह आघात करता रहा, पर आप वह चुप बैठी रही। क्यों न उसने प्रतिघात किया ? पर फिर वह सोचती कि प्रतिघात के लिए 'उचित पृष्टभूमि' का निर्माण ही कहां हुआ था ?

इस युग में तो अपनी रक्षा तभी सम्भव है जब मनुष्य स्वावलम्बी बन जाए। इस विचार ने उसके कुचले हुए आत्मविश्वास को जीवित कर दिया। जिन आँखों से झर २ नोर बहता था, उसमें एक तेज चमक दिखाई दी। उसकी करुण मुखाकृति विश्वास की गरिमा प्राप्त कर गम्भीर हो उठी।

अगले ही दिन वह रात की गाड़ी से देहरादून के लिए प्रस्थान कर गई। गांव का पता जाते समय महिम उसे दे गया था। गाड़ी चल पड़ी और एक के बाद दूसरा स्टेशन पीछे छूटता गया। मुन्नवर ने खिड़की से बाहर झांका तो लगा कि सब कुछ पीछे छूटता जा रहा था। जमीन भी पीछे की ओर भाग रही थी। पेड़ पौधे जिनमें न जाने कितने बसन्त आये और कितनी बार 'कुसुमशर' ने जिनकी डालियों की हरी-हरी कोयलों की मलयानिल की 'नई कँगी से संवारा-जाने कितने अपमान, आस्था, आशा और प्रतिष्ठानों के पुष्प जिनमें लगे और असमय गिरे-सब पीछे छूटते जा रहे थे। लगता था मानों सारा ममत्व खो कर क्षितिज की ओर–अनन्त की ओर, हवा में अपने हाथ फैलाए वे तीव्र गति से दौड़ रहे थे। नुन्नवर उद्वेग और हृदय मन्थन की पीड़ा से बोझल होकर उंसासें लेने लगी और उसे लगा कि मानो वे उंसासें भी हवा में उन्हीं पेड़ों के साथ उसी द्रुतगति से विलीन हो गईं।

सुबह देहरादून पहुंचने पर उसने एक तांगा किया और महिम के गांव की ओर चल पड़ी। देहरादून से महिम का गांव केवल ८ मील था। सड़क पक्की थी और उस पर तांगे मोटर आदि आ जा–रहे थे। अनेकानेक विचार मुन्नवर के तन में आते और चले जाते। अनन्य अन्तरद्वन्द्व बोझिल उसका मन चिन्तन में लीन था पर फिर भी बीच २

में वह चेतन हो सड़कों के दोनों ओर के खेतों पर दृष्टि डाल लती या फिर तांगे वाले से ही कुछ प्रश्न कर लेती। उसकी मंजिल समीप आती जा रही थी और उसी के साथ उसका उद्वेग, उसके हृदय की कम्पन, भी बढ़ रही थी। उसे लगा कि उसकी समस्त देह गर्म हो उठी थी मानो जोर का ज्वर हो गया हो—। गाल और कान लाल हो उठे थे—कलेजा फड़क रहा था। यह सब क्यों ? उसे कुछ समझ नहीं आया। शायद इस लिये कि उसका संकल्प—उसका आत्म विश्वास डोलने लगा था। उसने चाहा कि आगे बढ़ने से पूर्व, वह अपने को संयत कर ले। अतः थोड़ी दूर बढ़ने पर जब एक पड़ाव मिल गया जहाँ २-४ दुकान चाय आदि की थीं, तो मुन्नवर ने तांगा रुकवा दिया और एक दुकान पर जा कर चाय पान करने लगी। अभी वह चाय पी ही रही थी कि सामने उसी ओर से जिस ओर कि मुन्नवर को जाना था, एक बग्घी आती दिखाई दी। बग्घी बजाय पड़ाव पर रुकने के, पड़ाव से कोई सौ डेढ़ सौ गज दूर जा कर रुकी और कोई ५-१० मिनट बाद उसमें से एक प्रौढ़ आयु का व्यक्ति बाहर आया, जिसने धोती और कुर्ता पहन रखा था। माथे पर चन्दन का टीका और सिर पर लम्बी शिखा थी। धीमी चाल से वह चाय की दुकान पर आया। और मुन्नवर के समीप ही बिछी हुई लकड़ी की एक तिपाई पर बैठ गया। दुकानदार ने तिलकधारी व्यक्ति को पहचान लिया और नमस्कार कर बोला, 'गुरु देव ! आज कही गांव से आना हो रहा है क्या ?—बहुत दिनों में दर्शन हुए हैं !'

तिलकधारी व्यक्ति ने एक गड़ती हुई दृष्टि मुन्नवर पर डाल कर उत्तर दिया, हाँ, 'यहीं पास ही के गांव में एक ब्याह था—उसी में सम्मिलित होना पड़ा।'

'दीवान साहब भी क्या साथ हैं ?'

'छोटे बाबू हैं।'

दुकानदार ने एक चाय का गिलास तैयार किया और उस व्यक्ति की ओर बढ़ाते हुये बोला, 'लीजिये गुरु देव ! छोटे बाबू के लिये भी यदि कहो तो एक गिलास भिजवा दूँ ।'

'नही भाई, छोटे बाबू देहरादून के रईस हैं—भला ऐसी चाय क्यों पीयेंगे । उन्हें तो चीनी के बरतन के बने हुये प्यालों में चाय मिले और साथ में मक्खन बिस्कुट आदि—तभी जा कर कहीं उनके गले से चाय की घूंट नीचे उतरेगी । दीवान महिधर के साहेबजादे हैं भई—हम तुम जैसे मामूली व्यक्ति नहीं ।'

दुकानदार हंस पड़ा और साथ ही वह व्यक्ति भी जिसने फिर एक और उड़ती हुई दृष्टि मुन्नवर पर डाल कर चाय पीनी शुरू कर दी थी । दुकानदार बोला, 'पण्डित जी ! व्याह अपने ही सम्बन्धियों के यहां था या आपको दीवान साहब के साथ जाना पड़ा ?'

वह व्यक्ति हंस पड़ा और बोला, 'हमारे सम्बन्धी यहां कहां मिलेंगे, हम तो दूर दक्षिण से आ कर यहाँ भगवान के चरणों में निर्वाह कर रहे हैं भाई । दुनिया से सम्बन्ध ही रखना होता तो अपनी जन्म-भूमि क्यों छोड़ते ? एक सज्जन हैं जो हमारे प्रति काफी श्रद्धा रखते हैं—उन्हीं के निमन्त्रण पर उनके पुत्र के व्याह में पुरोहित का कार्य सम्पन्न करना पड़ा । वैसे कन्या पक्ष की ओर से दीबान साहब का भी सम्बन्ध था ।'

मुन्नवर गौर से दुकानदार और प्रौढ़ व्यक्ति के बीच चल रही बातों को सुन रही थी ।

दुकानदार बोला, 'लड़की वाले क्या दीवान साहब की बिरादरी के थे ?'

'नहीं भाई ! महितुर का नाम तों सुना ही होगा—वहीं की एक छात्रा हैं । दीवान साहब को तो जानते ही हो । वहां के विद्यालय से शिक्षा प्राप्त समस्त छात्र और छात्राओं को अपने ही बच्चे समझते थे ।

बस इसी सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुये छोटे बाबू भी विवाह में सम्मिलित हुये।'

दुकानदार के मुख पर दीवान साहब की उदारता के प्रति कृतज्ञता और प्रशंसायुक्त भाव निखर आये। बोला, 'दीवान साहब मनुष्य नहीं, देवता हैं।'

दुकानदार फिर मुन्नवर की ओर मुड़ा और बोला, 'बहिन जी। और कुछ चाहिये ?'

'नहीं। कितने पैसे ?'

'एक चाय का गिलास ही तो लिया हैं, दो आने के पैसे दे दीजिये।'

वह तिलकधारी व्यक्ति अब मुन्नवर को घूर घूर कर देख रहा था। मुन्नवर को सम्बोधित करते हुए बोला, 'कहां से आ रही हो बेटी ?'

मुन्नवर पहले तो कुछ सकुचाई पर फिर बोली, 'बहुत दूर से आ रही हूँ बाबा !

'साथ में कोई है या अकेली हो ?'

'अकेली ही हूँ।'

तिलकधारी ने फिर सिर से पैर तक मुन्नवर को देखा और बोला, 'किसी ऊंचे घराने की लगती हो, बेटी ! यहां किसी काम से क्या जा रही हो ?'

'मुन्नवर सकुचाई और बोली, 'हां।' काम तो होता ही है। पर मालूम नहीं कि वह जगह यहां से अब कितनी दूर रह गई, जहां मुझे जाना है। कहते हुये मुन्नवर ने महिम का दिया हुआ पता–उस तिलकधारी व्यक्ति की ओर बढ़ा दिया।

तिलकधारी व्यक्ति ने वह पता पढ़ा तो आश्चर्य में मुन्नवर को देखता ही चला गया। बोला, 'अरे ! यहीं से तो हम भी आ रहे हैं। इसी महिम की तो शादी थी। तुम क्या शादी में ही सम्मिलित होने

जा रही थीं ?'

मुन्नवर ने ऐसा सुना तो अनुभव किया कि मानो उसके पैरों के नीचे की जमीन खिसक गई हो—मानो जैसे उसका सब कुछ लूट लिया गया हो। वह ठण्डी सी पड़ गई। उसकी सूनी और फटी फटी आँखों में घोर रिराशा उभर आई। उसने दुकानदार से उस तिलकधारी ब्राह्मण का परिचय पूछा तो ब्राह्मण स्वयं बोल पड़ा, 'मैं ब्राह्मण हूं बेटी !—पंडित। देहरादून में दीवान महिधर के बनाए हुये मन्दिर में पूजा अर्चना करता हूं—पुजारी हूँ। तुम क्या महिम की कोई सम्बन्धी हो ?'

मुन्नवर चुप रही मानो अपना परिचय देना या कुछ भी बात करनी अब वृथा थी। बाग उजड़ चुका था—बाग का वृक्ष टूट कर नीचे लुढ़क पड़ा था—बसेरा समाप्त हो चुका था। वह बसेरा नीड़—या चौंसला, जिसकी आशा पर वह दिल्ली से इतनी दूर आई थी। जब सब कुछ समाप्त हो गया था तो किस लिये और किसकी वह चर्चा करती। वह बिना उत्तर दिये उठ पड़ी और वापिस अपने किये हुये ताँगे पर आ कर ताँगे वाले से बोली, 'तांगा मोड़ लो—वापिस देहरा-दून चलो।'

और मुन्नवर का तांगा फिर उसी तरह खटपट खटपट करता हुआ वापिस देहरादून चल दिया।

पुजारी ने देखा तो जल्दी से अपनी बग्घी के पास आकर बग्घी में बैठे दीवान महिधर के दत्तक पुत्र मनोहर से बोला, 'छोटे बाबू ! वह तो लौट पड़ी। मालूम पड़ता है कि वह भी महिम की शादी में सम्मि-लित होने जा रही थी पर जब उसे पता चला कि शादी हो चुकी तो न मालूम क्यों—गम्भीर सा मुख बना कर लौट पड़ी। लगता है, उसे गम्भीर सदमा पहुँचा है।'

मनोहर ने सुना तो कुछ देर सोचता ही रहा। फिर एक रहस्यमय ढंग से मुस्कराता हुआ बोला, 'महिम की कोई प्रेयसी मालूम पड़ती है। मंजु ने उसके प्रेमी का आवरण किया है—उसको सद्‌मा क्यों नहीं पहुँचेगा ? खैर तुम बग्घी पर बैठ जाओ। उसका पीछा करना चाहिये।'

पुजारी मनोहर की बगल में बैठ गया और बग्घी भी फिर देहरादून की ओर चल पड़ी।

'कोचवान ! जरा तेज चलाओ। सामने जो तांगा जा रहा है—उसी के पीछे २ चलो'—मनोहर बोला।

'छोटे बाबू ! आपकी आँखों में मुझे अनोखी चमक दिखाई दे रही है।' पुजारी ने उत्सुक हो पूछा।

मनोहर ने पहले तो एक ठहाका लगाया फिर बोला, 'बड़े भोले हो, पंडित जी। प्यासे को कुआं मिल जाये और उसकी आँखों में चमक न दिखाई दे ? महिम मेरी मंजु को ब्याह ले गया। मेरी ही आंखों के सामने मंजु ने उसके गले में वरमाला डाली—पर मैं देखता ही रहा। बताओ कितना अत्याचार हुआ मेरे ऊपर। बलात मुख पर खुशी के भाव लिये सब सहन करता गया। वह घूंघट की ओट में आँसू बहाती हुई कभी २ मुझे देख भी लेती थी पर मैं चुप रहा, मानो कायर था या अपनी लाचारी को विधाता का विधान मान चुका था। न चाहते हुए भी मेरी मंजु महिम के गले का हार बन गई। यह लड़की यदि वस्तुतः महिम की प्रेयसी हुई तो इसकी भी इस समय वही स्थिति होगी, जैसी मेरी है। एक ही राह के दो पथिक हैं मैंने मंजु को खोया और उसने महिम को। साथ २ चलने में फिर क्या दोनों का दुःख कम न होगा ?

पुजारी को मनोहर के शब्दों में छुपे अर्थ का ज्ञान हुआ तो उसकी आँखें भी चमक उठी। वह हलकाता हुआ सा बोला, 'छोटे बाबू ! तो तुम्हारा मतलब है कि............?'

मनोहर ने फिर ठहाका लगाया और बोला, 'देर की समझने में,

पंडित जी ! समझदार कम हो। हाँ, मेरा यही मतलब है कि हम दोनों में दुःखी कोई न रहे। मैं यह समझलूंगा कि मुझे, मेरी मंजु मिल गई और वह भी सन्तोष करले कि उसे उसका महिम मिल गया।'

वैसें अब तक जो हमने आँसू बहाए है, उनका प्रभाव भगवान पर कुछ पड़ा ही है, वरना मुझे मंजु कहीं अधिक सुन्दर यह छोकरी कहां मिलती और इसे भी महिम को छोड़ कर, मुझ जैसा सर्वसम्पन्न युवक कहाँ मिलता। इसलिए तो कहते हैं कि भगवान के घर देर है, अन्धेर नहीं। तपस्या और त्याग जरूर फल लाता है। सोचो तो, त्याग भी ह.ने क्या कुछ कम किये हैं ?'

मनोहर फिर ठहाका मार हंसने लगा और साथ में उसे योग मिला पुजारी की फीकी—दलित सी खिसियाई हंसी का।

पुजारी बोला, 'लेकिन छोटे बाबू ! यह होगा कैसे ?'

'वह इस समय डांवाडोल स्थिति में होगी तुम उसे सहारा दो—किनारे लग जायेगी। जितने पैसों की आवश्यकता हुई, मय कमीशन के तुम्हारे पास आ जायेंगे।'

'लेकिन, दीवान साहब——?'

'उन्हें इसका पता नहीं लगना चाहिए।'

पुजारी सोचता हुआ फिर चुप हो गया। बग्घी पहले से कुछ अधिक तेज चाल से चल कर तांगे के पीछे २ चलने लगी थी। सड़क के दोनों ओर पीले सरसों के खेत दिखाई दे रहे थे और बहुत दूर सामने धुन्ध के गहरे आवरण में सिर उठाये हुये मंसूरी के पहाड़। घोड़ों की पद चाप अनोखा संगीत पैदा कर रही थी।

मुन्नवर ताँगे में चकोलियाँ लेती हुई—आँखें मूंदे निष्प्राण सी लेटी हुई थी, मानो ताँगे में कोई लाश जा रही थी—निरुद्देश्हे—विना लक्ष्य या मंजिल के। अब न उसके मष्तिक में कोई तूफान था, न अन्तरद्वन्द्व। न अब उसकी सांसे गर्म थी, न हृदय में कम्पना। अब तो

उसके समक्ष मृत्यु का सा मौन व्याप्त था। सब कुछ शान्त, निर्जीव और गतिहीन।

लेकिन मनोहर? मनोहर को लग रहा था मानो वह किसी झूले पर झूल रहा हो। उसके अन्तर में गुदगुदी उठ रही थी! उसका अंग प्रत्यंग अंगड़ाई ले रहा था—धमनियों में गर्म रक्त खौल कर उसको अशान्त और उद्दीप्त कर रहा था।

वापिस देहरादून पहुँचने पर जब मुन्नवर तांगे से उतरी तो पुजारी उसके पास आया और बोला, 'बिटिया! बहुत निराश लगती हो। तुमसे उस समय बात न कर सका पर मार्ग में तुम्हारे ही संबंध में सोचता रहा। जरूर महिम से तुम्हारा कोई समीप का रिश्ता है तभी तो उसके ब्याह के समाचार को सुन कर तुम्हारी निराशा बढ़ी है। बताओ बेटी, क्या मेरा अनुमान सही है?

मुन्नवर ने खोखली नजरों से पुजारी को देखा और फिर ताँगे वाले को पैसे देकर— विदा करती हुई पुजारी से बोली, 'बाबा। अपना काम करो, दूसरे की जिन्दगी में यूं दखल नहीं दिया करते। तुम्हारी बग्घी निकल गई है—जाओ उसका पींछा करो, नहीं तो पैदल ही जाना पड़े गा।'

पुजारी मुख पर करुण भाव प्रदर्शित करते हुए बोला, 'चला जाऊं गा, बिटिया! पर जैसा उतर तुमने मुझे दिया है, ऐसा उत्तर फिर कभी किसी को न देना, वरना संसार से पारस्परिक सौहार्द उठ जाए गा। पशु-पक्षियों के अन्दर भी एक दूसरे के प्रति सहानुभूति होती है फिर मनुष्य योनी लेकर भी यदि हम मनुष्यता से इतनी दूर रहें तो कौन हमें मनुष्य कहेगा? जाता हूँ बेटी, बुरा न मानना।' कहते हुए पुजारी आगे बढ़ गया।

मुन्नवर पहले तो कुछ न समझी। खड़ी हो ठग २ हुई सी देखती रही पर फिर उसने पुजारी को पुकारा, 'बाबा—ओ बाबा—'

पुजारी मुन्नवर की आवाज सुनकर तुरन्त रुक गया और मुड़ कर उसके पास आ गया मानो। उसे पहले से ही इस बात गुमान था कि मुन्नवर उसे बुलायेगी।

मुन्नवर बोली, 'बुरा मान गये, बाबा ?'

'बुरा क्यों मानूंगा बेटी'। तुम मनुष्य जाति की ही तो हो जो चोरी करता है—झूट बोलता है। यदि तुमने भी थोड़ा कटु वचन कह तो मनुष्य जाति का कौनसा नया परिचय दे दिया। कलियुग में सब क्षम्य हैं बिटिया।'

मुन्नवर कुछ लज्जित सी हो चली, 'नहीं बाबा ! मैं अपने होशोहवास में नहीं हूं, अगर कोई गलती हो गई हो, तो मुआफ करना। तुम बहुत दूर जनूब से आये हो न ?'

'त्रिवांकुर— कोचीन में जन्म लिया है, बेटी ! भगवत दर्शन की इच्छा यहाँ ले आई। पहले तो द्वारिका, रामेश्वर, गया, जगन्नाथ की यात्रा की; फिर बद्रीनाथ, केदार नाथ और गँगोत्री यमनोत्री के दर्शन कर अब यहीं श्रीचरणों में निर्वाह कर रहा हूं। पर तुमने ऐसा प्रश्न क्यों किया ? एक साधू के जीवन के प्रति तुम्हारा इतना अनुराग अथवा मोह क्यों ? तुम तो किसी कुलीन परिवार की मालूम होती हो।'

मुन्नवर की आंखों में आँसू आ गये पर उसने उन्हें बाहर न आने दिया। कातर धीमे स्वर में बोली, 'शक्ल और पहरावे से किसी की असलीयत जाहिर नहीं होती, बाबा ! खैर छोड़ो इन बातों को ! बिना मकसद के ही कुछ बक गई। दरअसल जिस बेदर्दी से मैंने तुम्हें जवाब दिया था, उसी का अफसोस जाहिर करने के लिये तुम्हें रोका है।'

पुजारी कुछ क्षण मुन्नवर को देखता रहा फिर भावुक सा हो बोला, 'बेटी ! तुम्हारी बातों को सुन कर लगता है कि तुम घोर मानसिक यातना से त्रस्त हो—तुम्हें शान्ति चाहिये। तुम्हारा लक्ष्य अनि-

श्चित सा जान पड़ता है। यदि मेरा अनुमान सही है तो कुछ दिन मेरी कुटिया पर ही वास करो। जब स्वस्थ हो जाओगी फिर चली जना।' पुजारी मुन्नवर की उत्तर की प्रतीक्षा में एक टक उसे देखे जा रहा था। मुन्नवर गर्दन नीचे कर कुछ सोच रही थी। फिर मुँह उठा कर वह भी एक टक पुजारी को देखने लग गई।

'तुम्हारी आंखों में कई प्रश्न मूर्तिवान हो उठे हैं, बेटी ईश्वर की शरण जाने में इतना सँकोच क्यों? तनिक स्वस्थ हो कर उस 'अनन्त' का स्मरण करो—वह तुम्हें धैर्य और विश्वास प्रदान करेगा। बोलो, तुम्हारा सामान रखूं ताँगे में?'

मुन्नवर ज्यों की त्यों देखती ही रही। थोड़ी देर बाद मौन सम्मति में उसकी गर्दन हिल गई।

पुजारी ने तांगा किया और मुन्नवर का सामान रख कर दोनों उस पर बैठ गये। कुछ ही मिनिटों में तांगा लक्ष्मण चौक की एक विशाल अटालिका के प्रांगण में प्रविष्ट हुआ। पुजारी और उसके बाद मुन्नवर ताँगे से उतर पड़ी। ताँगे वाले को विदा कर पुजारी ने मुन्नवर का सामान उठाया और अट्टालिका के पार्श्व में बने हुये देवालय को पार करता हुआ, देवालय के पीठ की ओर बने हुये एक छोटे से मकान पर जा पहुँचा। मुन्नवर भी चकित दृष्टि से अट्टालिका के बाह्य वैभव-उसके समक्ष उद्यान के अनुपम सौंदर्य और फिर देवालय की पावन सुन्दरता को देखती हुई पुजारी के पीछे २ वहीं आ गई। पुजारी ने एक कमरा खोला और फिर मुन्नवर को अन्दर आने का संकेत करता हुआ बोला, 'अपना ही घर समझो, बेटी! मेरे अतिरिक्त यहां कोई नहीं रहता। जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ती है, ईश्वर यहीं भेज देता है। मेरा समय तो ईश्वर के चरणों में ही व्यतीत होता है। तुम्हें भी वह आश्रय देगा।

अब यदि इच्छा हो तो स्नान आदि से निवृत हो लो, ताकि सफर

की थकान दूर हो सके। मैं भोजन आदि की व्यवस्था करता हूँ।'

पुजारी ने उसे स्नान गृह, शौचालय—एवं अन्य दो कमरे दिखाये और बिदा ली।

मुन्नवर स्नान आदि से निवृत हुई तो देखा कि एक बड़े से थाल में नाना प्रकार के पकवान-फल और मिष्ठान उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। समीप ही खड़ा पुजारी मुस्करा रहा था। मुन्नवर आश्चर्य में बोली, बाबा 'यह क्या, रईसों से भी बढ़ कर उम्दा भोजन ?'

'प्रभू का प्रसाद है, बेटी ! जो कुछ वह दे—उसे ग्रहण करो।'

शुन्नवर हंस पड़ी। पुजारी ने लक्ष्य किया कि हंसते समय मुन्नवर के कपोल रक्ताभ हो उठे थे।'

'और तुम बाबा ?'

'मैं भी हरि चरणों का प्रसाद ही लेता हूं, बेटी—वहीं देवालय में।'

मुन्नवर फिर हंस प ी।

पुजारी बोला, 'अब बेटी ! तुम भोजन कर विश्राम करो। मैं रात को लौट सकूंगा। यदि छोटे बाबू आवें, तो उन्हें बिठा लेना। मैं पूज अर्चना कर ही लौटूंगा।

'छोटे बाबू ?'

'हां, दीवान साहब के पुत्र जिनकी मैं उस समय चाय पीने वाली दुकान पर चर्चा कर रहा था—जो बग्घी में मेरे साथ थे। ईश्वर उन्हें चिरंजीव रखे, बड़े सज्जन युवक हैं।'

पुजारी फिर एक तीक्ष्ण दृष्टि से मुन्नवर की मुख मुद्रा का पर्यवेक्षण कर चला गया और मुन्नवर भोजन करने लगी।

भोजन से निवृत होकर वह कमरे में बिछी हुई पलंग पर लेट गई और शीघ्र ही प्रगाढ़ निद्रा में सो गई।

उसकी नींद तब टूटी जब अट्टालिका के गुम्बद पर लगे हुए घण्टे ने रात्रि के नो बचाये। बाहर अन्धेरा हो चुका था। पुजारी अभी नही लौटा था। मुन्नवर ने स्विच दबाया और यूँ ही निरुद्देश्य कमरे में टहलने लगी। फिर कुछ देर बाद वह कमरे से बाहर निकली और अट्टालिका और देवालय के बीच के उद्यान में टहलने लगी। बाहर चांदनी छिटकी हुई थी। अट्टालिका चाँदनी में नहा कर श्वेत संगमरमर की सी प्रतीत हो रहीं थी। उसकी खिड़कियों से छिन कर बिजली का प्रकाश बाहर आ रहा था। वह धीमे धीमे पग बढ़ाती हुई—अट्टालिका के पिछवाड़े आई जहां से एक लोहे की सीढ़ी ऊपर अट्टा।लका की छत तक गई हुई थी। फिर वह मुड़ी आार देवालय की ओर बढ़ी।

देवालय से अभी भी घण्टे बजने का स्वर सुनाई दे रहा था धूप की तेज सुगन्ध—मुन्नवर तक पहुँच रही थी। वह फिर मुड़ी और अपने कमरे मैं वापिस आ कर पलंग पर लेट गई। लेटने से पूर्व उसने बिजली का स्विच बुझा दिया था। लेटे लेटे वह सुबह से लेकर अब तक की दिनचर्या का सिंहावलोकन करने लग गई। फिर उस के विचार महिम पर आ कर केन्द्रित हो गये। वह सोचती कि महिम ने आखिर सचमुच व्याह कर ही लिया—उसे धोखा दे दिया। अब क्या होगा—उसका निर्वाह कैसे होगा। सोचते सोचते फिर मुन्नवर का सिर चकराने लगा। वह सोने का उपक्रम करने लग गई और आखिर निद्राने उसे अपनी गोद में ले ही लिया।

१० से अधिक समय हो गया था। अट्टालिक की खिड़कियों से जो प्रकाश बाहर आ रहा था, वह भी एक २ कर बुझते २ सब बुझ गये—नीरवता छा गई।

तभी मुन्नवर के ककरे में एक परछाई सी घुसी और फिर कमरे का द्वार अन्दर से बन्द हो गया। फिर बिजली का स्विच खुला और कमरा प्रकाश से जगमगा उठा। मुन्नवर की नींद खुल गई। वह चौंक

उठी। कमरे में एक नवयुवक को देख कर वह हकलाती हुई बोली, 'आप—?'

'मेरा नाम मनोहर है—यानी छोटे बाबू।'

'छोटे बाबू—! लेकिन—इस समय—?'

मनोहर बजाये इसके कि कुछ उत्तर देता, घूर घूर कर मुन्नवर को देखता जा रहा था मानो उसने कहीं मुन्नवर को देखा था और पहचानने का प्रयत्न कर रहा था। आखिर उसके नेत्र चमक उठे। आश्चर्य प्रकट करते हुए बोला, 'अरे तुम थीं—? तुम—यानी मृणाल ?'

मुन्नवर 'मृणाल' नाम से सम्बोधित किये जाने पर अचम्भित हो उठी। आंखें फाड़ कर उसने मनोहर को पहचानने की कोशिश की और आखिर चिल्ला उठी, 'तुम—तुम—तू शैतान ! तुम यहां कैसे आ गए ? क्या तुम ही छोटे बाबू हो ? बाबा—बाबा।'

मनोहर क्रोधित हो बोला, 'यह क्या तूफान बत्तमीजी करती हो ? जब तुम छोकरी थी—किसी के पनाह में, तब भी तुम्हें मुझ से छुटकारा नहीं मिल सका था और तुम्हारा हठ तोड़ने के लिये मैंने तुम्हें चकले में ला पटका था। अब तुम मेरे घर पर हो—यदि फिर हठ करोगी तो ये दीवारें तुम्हें निगल जायेंगी। बाबा तो मेरा नौकर है जो मेरे ही इशारे पर तुम्हें यहां ले आया। वह तुम्हारी क्या सहायता करेगा। वह मन्दिर में सोया हुआ तुम्हारे सौभाग्य की कामना कर रहा है।

मुन्नवर सुन कर हक्की बक्की रह गई। ओह ! यह साजिश ? अम्मी की मौत के बाद इसी तरह की साजिश कर एक बार पहले भी उसके साथ धोखा किया गया था। तो क्या आज भी फिर उसी प्रकार की साजिश कर मनोहर उसे अपने चंगुल में ले आया था ! मुन्नवर फुफकार कर उठी, 'शिकारी बाज ! मैं तेरे पंखों को तोड़ दूंगी—तेरे पंजों को मरोड़ कर, तुझे लंगड़ा बना दूंगी। हट जा, मैं कहे देती हूँ, हट जा—'

मनोहर आगे बढ़ा तो मुन्नवर दांत पीसती हुई बिजली की तरह कड़क उठी। बोली, 'मैं तब मासूम बच्ची थी, अपनी हिफाजत न कर सकी। पर अब मासूम न रही। कई घाटों का पानीं पी चूकी हूँ। तुझ से अब क्या खौफ हो सकता है, पर बदला लेने का खुदा ने खूब मौका दिया है।' कहते हुये वह मनोहर पर टूट पड़ी।

मनोहर के गाल पर उसकी कलाई की चूड़ी घाव कर गई। वह सम्भल कर प्रतिघात के लिये तैयार हुआ पर इतने में मुन्नवर दरवाजे की कुण्डी खोल कर बाहर निकल पड़ी थी। मनोहर उसके पीछे भागा। वह उसकी पकड़ में आने को ही थी कि स्वर वातावरण में गूँज उठा, गम्भीर सा स्वर, 'रुक जाओ।'

वह बोली, 'हट जाओ। वह शैतान मुझे मार डालेगा। मुझे भाग जाने दो।'

मुन्नवर का रास्ता रोकने वाला और कोई नहीं दीवान महिधर थे। मुन्नवर की यह दशा देख कर क्षोभ और आश्चर्य में वह बोले, 'कौन तुम्हारा पीछा कर रहा था—क्या नाम था उसका ?'

मुन्नवर पसीने से तर बतर हो हाँप रही थी। उससे कुछ न बोला गया। चारों ओर भयभीत दृष्टि डालते हुए वह कभी दीवान साहब को देखती तो कभी पीछे की ओर, मानो अभी भी उसे सन्देह था कि उसका पीछा किया जा रहा हो।

दीवान महिधर उसको यूँ भयभीत देख कर कुछ समझ न सके। उन्हें मुन्नवर की दशा ठीक उस गाय की सी दिखाई दी, जी बघेरे के चुंगुल से बच कर प्राण रक्षा में कान और पूँछ को ऊपर उठाये कुलाँचे भरती हुई आश्रय ढूंढती है। वह उठे और मुन्नवर के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले, 'घबराओ नहीं। यहां कोई तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं कर सकता।'

मुन्नवर के मन में एक कंपकपी सी उठी। एक कदम पीछे हठती हुई बोली. 'पीछे-पीछे। पीछे हट कर बात कीजियेगा—कौन हैं आप ?'

दीवान महिधर को मुन्नवर का यूँ रुक्ष उत्तर सुन कर तीव्र ग्लानि महसूस हुई। उन्हें लगा कि वह लड़की उन से भी भय खा रही थी मानो उसका मनुष्यता से भी विश्वास उठ गया था। इस विकराल अनुभूति से वह घबरा उटे। उनसे कुछ देर तक बोला न गया, पर फिर अपने को संयत कर स्नेह-सिक्त स्वर में बोले, 'मेरा नाम महिधर है। इस हवेली का मालिक हूँ। बोलो, वह आततायी कौन था ?'

मुन्नवर सुबह से दीवान महिधर का नाम सुनती आई थी। महिम के गांव जाते समय रास्ते में जब वह चाय पीने ठहरी थी तो चाय वाले ने भी प्रशंसा में दीवान महिधर को 'देवता' कहा था। पर वह कैसे विश्वास करती कि जिन्हें दुनिया 'देवता' कहती है वह सचमुच ही देवता हों, पुजारी तो अपने को 'हरि चरणों का सेवक' कहता था, पर वह कितना धोखे बाज और पाखण्डी निकला। मुन्नवर यही सोचती हुई कभी दीवान साहब को तो कभी नीचे जमीन की ओर देखती मानो वह निश्चय नहीं कर पा रही थी कि दीवान के शब्दों में कितनी सच्चाई थी। दीवान महिधर की तीक्ष्ण दृष्टि–उसकी इस मानसिक दशा को ताड़ गई। वह बोले, 'यदि मैं कोई पाखण्डी होता, तो वह अत्याचारी मुझ से भय खा कर लोप न होता। विश्वास करो—तुम बिल्कुल सुरक्षित हो।'

मुन्नवर ने सुना तो उसे लगा मानो उसका विश्वास लौट रहा हो। दीवान साहब का स्वर दृढ़, निर्भीक और एक अनोखी गूंज से भरा हुआ था।

मुन्नवर ने गर्दन उठाई और सिर से लेकर पैर तक एक बारीक दृष्टि से दीवान साहब को देखती गई।

जीवन में पहली बार उसने ऐसे विशाल व्यक्तित्व को देखा था। लगता था मानो दीवान साहब के उन्नत ललाट में शान्त स्निग्ध ज्योत्सना सी छाई हुई थी। नेत्रों में पावन ज्योति भरी हुई थी। लम्बे किन्तु

सुलझे हुये केश, पीछे को मुड़े हुये थे । हाथों में छड़ी, और शरीर पर अचकनऔर धोती पहने हुये उनके गम्भीर पर करुणामय मुख मण्डल पर तेज व्याप्त था । घनी मूंछों की छाया में धीर, संयत, शिष्ट मुस्कान उनके सद्चरित्र और सात्विक वृत्ति को प्रतिबिम्ब कर रही थी ।

मुन्नवर ऐसे रूप को देख कर अनायास ही किसी अज्ञात श्रद्धा से ओत पोत हो दीवान साहब की बलिष्ट भुजाओं के घेरे में लुढ़कती हुई—उनकी छाती से जा चिपकी । (उसके नेत्रों से अविरल अश्रधारा बह चली । दीवान साहब को लगा कि जैसे उनकी छाती मुन्नवर के आंसुओं से तर नहीं हो रही बल्कि जैसे उनके वीरान जीवन की तपती हुई बालू में सरिता सी बह चली हो । वह आंखें मूंद कर जीवन की उस परम अनुभूति पर स्वयं आंखों से नीर बहाने लग गये ।)

— — —

९

सहारे का बहुत महत्व है। विना सहारे के जीवन असाध्य सा है। विरले ही प्रतिभावान मनुष्य होगे जिन्हें सहारे की आवश्यकता न पड़े बल्कि सच तो यह है कि प्रतिभा भी स्वयं किसी न किसी सहारे पर आश्रित है। सहारा या अवलबन; कौन फिर इसके प्रति उपेक्षा प्रदर्शित कर सकता है, पर सच है कि दूसरे का सहारा आत्मविकास में पराश्रित भावनाओं का समावेश कर देता है और इस प्रकार मनुष्य की मूल कार्य-क्षमता कुण्ठित हो जाती है। सहारा लेकर फैली हुई बेल व्यापकता तो ग्रहण कर लेती है पर स्वयं उसकी शक्ति का कोई माप नहीं है। जिस बृक्ष पर वह लिपट कर फैलती है, उसे काट कर फैंक दो तो बेल तो बेल का अपना क्या अस्तित्व है? महिम के चले जाने के बाद मुन्नवर की यहीं स्थिति थी जो इस कथित बेल की होती है। अब उसने अनुभव किया कि उसका स्वयं कोई अस्तित्व नहीं था, इसी कारण वह बचपन से ही पराश्रित रही, स्वयं आप अपना अवलम्बन न बन सकी। वह ८-१० दिन तक तो यूं ही दुःख और सन्ताप में रोती रही, पर ज्यूं ही उसे इस नवीन 'आत्मसृजन' कीं अनुभूति हुई, उसे कुछ सान्त्वना और धैर्य मिला। क्यों वह महिम की लौंडिया बन कर उसकी बेवफाई

असन्तोष बढ़ गया कि नारंगी कर के विरुद्ध सत्याग्रहियों के जत्थे के जत्थे मदनी पहुँचने लगे । इस उग्र आन्दोलन को देख कर राज्य सत्ता-क्रोध से भड़क उठी और उन्होंने मीनाक्षी के पिता की सारी सम्पत्ति जप्त कर उसे पहले तो मारा-पीटा, जेल में रखा और बाद में सा परिवार को राज्य से निश्कासित कर दिया। नारंगी कर आखिर समाप्त तो हुआ पर मीनाक्षी के परिवार को इस आन्दोलन के नेतृत्व करने में भारी कीमत उठानी पड़ी। मीनाक्षी का पिता पुलिस की मार पीट और बाद में जेल की यातना से इतना निर्बल पड़ गया कि तुरन्त ही उसकी मृत्यु हो गई । उसकी माँ इसी तरह प्रजा मण्डल की सहायता से ऋषिकेश में पड़ी हुई दो चार महीने तक मीनाक्षी को लिये दिन काटती रहीं, पर आखिर एक दिन उसने भी दम तोड़ दिया और इस प्रकार मीनाक्षी संसार में अकेली रह गई। दीवान साहब के मुनीम नौटियाल ने जो टेहरी राज्य का ही प्रवासी था, मीनाक्षी को इस असहाय अवस्था में देखा तो उसे अपने साथ ले आया और बाद में दीवान महिधर के परामर्श पर उससे शादी कर ली।

मीनाक्षी इस प्रकार श्रीमति मीनाक्षी नोटियाल बन गई। वह शिष्ट मधुर भाषिणी और चतुर स्त्री थी । इसीलिए दीवान महिधर का उसपर अगाध विश्वास था। मीनाक्षी ने मुन्नवर से पुजारी और मनोहर के षड़यंत्र की बात सुनी तो क्षुब्ध हो उठी। पर मनोहर के अनुनय-विनय पर उसने दीवान साहब तक वह बात पहुंचने न दी, क्योंकि वह दिवान साहब के स्वभाव और प्रकृति से अच्छी तरह परिचित थी। वह जानती थी कि दीवान साहब मनोहर को कभी क्षमा न करेंगे और इस प्रकार यह घटना एक गम्भीर परिस्थिति उत्पन्न कर सकती थी। मनोहर दीवान साहब का दत्तक पुत्र था। सन्तति वियोग में त्रस्त होकर ही उन्होंने उसे गोद लिया था । यदि उससे भी उन्हें इतने वर्ष पालन-पोषण के बाद पृथक होना पड़ता तो यह घटना दीवान साहब

के जीवन की कितनी दुःखान्त घटना होती। वह समझती थी कि मनोहर का मुन्नवर के प्रति उस रात वाला व्यवहार घोर नारकीय और पतित था—पर इतना नहीं कि उससे हवेली में कोई भयंकर विस्फोट हो और दीवान महिधर के त्याग और तपस्वी जीवन में एक तूफान पैदा कर दे। उसे यही श्रेयस्कर लगा कि उस चिंगारी पर मिट्टी डाल दे जो तिड़ने पर एक भयंकर ज्वाला का रूप ग्रहण कर सकती थी। उसने मुन्नवर को भी समझा कर शान्त कर दिया।

मीनाक्षी ने मुन्नवर का सामान पुजारी के कमरे से मंगवा कर अपने कमरे में रखवा दिया और मुन्नवर के रहने की पूरी व्यवस्था कर दी। दीवान साहब दूसरे दिन अति व्यंग्र रहे, अतः दिन को मुन्नवर से कोई विशेष बात नहीं कर सके, पर रात को जब मुन्नवर सोने की तैयारी करने लगी तो वह मुन्नवर के कमरे में प्रविष्ट हुए और एक ओर कुर्सी पर बैठ गये।

मुन्नवर ने यूं अचानक दीवान साहब को कमरे में प्रविष्ट होते देखा तो पहले तो वह विमूढ़ सी हो चली पर पीछे उसने सिर झुका कर आदाब अर्ज किया।

दीवान महिधर उसके इस प्रकार निवाजिश करने के ढंग पर कुछ अचम्भित से हुये। आश्चर्य में बोले, 'तुम मुसलमान हो क्या ?'

मुन्नवर समझ गई कि क्यों दीवान साहब ने यह प्रश्न किया था। बोली, 'मैं खुद ही बोल सकती हूँ, लेकिन समझ सब लेती हूँ। मैं न हिन्दू हूँ और न मुसलमान। फक्त हिन्दुस्तानी हूँ पर मेरे शोहर हिन्दू थे।'

दीवान महिधर ने मुन्नवर की बात सुनी तो क्रान्त दृष्टि की भाँति मुन्नवर को कुछ क्षण देखते ही रहे। वह मन ही मन में उसके शब्दों को तोल रहे थे। मुन्नवर के शब्द उन्हें बहुत वजनी से लगे। उन्होंने फिर प्रश्न किया 'तुम विवाहित हो, ये तो मैं समझ गया, पर तुम्हारे

पति······? क्या तुम······?'

मुन्नवर की मुखाकृति एक दम गम्भीर हो उठी ! उसे कोई उत्तर न सूझा। उसकी दृष्टि पहले तो दीवान साहब पर टिकी रही पर फिर नीचे फर्श पर जा पडी।

मुन्नवर को यूं मौन और गम्भीर देख कर दीवान साहब की उत्सुकता और भड़क उठी। संयत स्वर में फिर वह बोले, लगता है जीवन के उतार चढ़ाव से क्लान्त तुम भी उस स्थिति पर आ गई हो जहाँ अनुभूतियां इतनी विषम हो जाती हैं कि उनको व्यक्त करने में भी एक अजीब उलझन सी महसूस होती है। कल रात की घटना स्वयं इतनी दारुण थी कि उसकी प्रतिक्रिया से तुम्हारा मानस अभी तक झुलस रहा होग। तुम्हें आश्वस्त होने को अभी दो एक दिन के एकान्त की आवश्यकता है। मै आदेश दिये देता हूं कि कोई तुम्हारे एकान्त में विघ्न न डाले।' कहते हुए दीवान साहब उठ खड़े हुए। मुन्नवर ने देखा तो चौंकती हुई बोली, 'नहीं नहीं ऐसी कोई बात नहीं। मैंने दिन भर आराम किया है। मैं तो खुद आपके दर्शनों की ख्वाहिशमन्द थी।'

दीवान महिधर रुक गये। मुन्नवर के शब्दों की ओर ध्यान देते हुए बोले, 'तुम्हारे शब्दों में असीम कृतज्ञता भरी हुई है। इस प्रकार के आभार प्रदर्शन से तो तुम मेरे अन्दर उस कृत्रिम गौरव को जाग्रत कर दोगी, जो मुझे आत्मीयता की नैसर्गिक हृदयग्राही अनुभूतियों से बिल्कुल वंचित कर देगा। मुझे दीवान के रूप में न देख कर पिता के रूप में देखो। वैभव, धर्म, सब के बाहर। हम दोनों सर्व प्रथम मनुष्य हैं—हमारा रिश्ता मानवता का है।'

मुन्नवर ने सुना तो रोमांचित हो उठी। उसकी मासूम गोल-गोल आंखे दीवान महिम के मुख पर टिक गईं—टिकी ही रहीं।

खिड़की से चाँदनी छिटक रही थी। दीवान महिधर ने व्योम की

ओर निहारा और अपलक दृष्टि से देखते ही गये। कुछ मिनटों के बाद बोले, 'उधान की सैर करोगी—सम्भव है चाँदनी की शीतलता तुम्हारी मानसिक उष्णता को कुछ कम कर सके।'

उन्होंने मुन्नवर को देखा और उसे उद्यत पाकर कमरे से बाहर आ गये। मीनाक्षी ने दीवान और मुन्नवर को उद्यान में जाते देखा तो सकुचाती हुई सी बोली, मैं भी आऊं, पिता जी!'

'नहीं मीनाक्षी! तुम्हारी आवश्यकता नहीं।'

उद्यान में रजनी गन्धा चांद का प्यार प्राप्त कर सौरभ लुटा रही थी। मखमल के गद्दे के समान मुलायम हरी दूब पैर के तलुओं पर चन्दन का सा लेप कर रही थी। दीवान साहब ने जूतियां उतार कर मुन्नवर को संकेत किया कि नंगे पैरों से वह भी दूब का आनन्द ले।

कुछ क्षण मौन रह कर टहलने के बाद दीवान महीधर ने नीरवता भंग की, बोले, 'तुम्हें कोई संकोच तो नहीं हो रहा, लड़की!'

मुन्नवर ने दीवान साहब की ओर देखा और गर्दन हिलाती हुई बोली, 'नहीं। बड़ी प्यारी फिजा है। बड़ा चैन मिल रहा है।'

'इसीलिए तुम्हें यहाँ लाया हूं। नित्य इसी प्रकार उषा और संध्या को टहल लिया करो। मीनाक्षी तुम्हारे संग होगी। प्रकृति का संग अलौकिक शान्ति प्रदान करता है।'

मुन्नवर मौन हो सुन रही थी। दीवान साहब के यूं समझाने पर एक बार फिर उसकी बोझल दृष्टि दीवान साहब के मुख पर अटक गई। दीवान साहब ने पूछा 'कुछ पूछना चाहती हो? बोलो।'

लेकिन मुन्नवर को जब उन्होंने उसी तरह मौन और मजबूर एक 'टक' अपनी ओर देखते हुए पाया तो फिर बोले, 'लड़की! तुम नहीं जानती कि तुम्हारा यह अबला का सा करुण रूप मेरे अन्दर इस समय कितनी तड़प पैदा कर रहा है! चाहता हूँ, ऐसा कौन सा त्याग तुम्हारे लिए करूं कि तुम अपने दिल के बाँध को खोल कर उस में बन्द

दुःखों की अनन्त जल राशि को प्रवाहित कर सको—जिससे तुम्हारा बोझिल दिल और मन हल्का हो सके। तुम्हारी मूक वाणी और सूनी हो मेरे हृदय में शूल बनकर चुभ रही हैं। तुम रोना चाहती हो, तो भर कर रुदन कर लो—अश्रु बरसाना चाहती हो तो हृदय की सारी कसक आंखों से बाहर निकाल दो।'

मुन्नवर ने सुना तो देखती रही। फिर उसकी आँखें पथराने लगीं और कुछ क्षणों में ही सचमुच उससे झड़ी छूटने लगी। वह दीवान साहब की छाती से चिपक गई और सिसकियां लेने लगी। दीवान साहब उसकी पीठ और बालों पर हाथ फेरने लगे।

मुन्नवर बिलखती हुई बोली, 'अब्बा !—मेरे अब्बा जान !'

दीवान महिधर भी भावनातिरेक में आंसूबहाने लगे। उनके कंठ से द्रवित स्वर निकला। 'मैं तुम्हारी हृदय की पीड़ा को समझता हूँ। तुम इस समय असहाय और अकेली हो। तुम्हें इस समय मां और पिता की ममता चाहिये। इसी लिए अभी तक मुझे पराया समझ कर उत्तर नही दे रही। लेकिन अब तुक हमेशा के लिए मेरे पास रहोगी। आश्वस्त हो जाओ और समझो कि अपने पिता ही के पास पहुँच गई हो। मुन्नवर ने सुना और कस कर दीवान साहब की छाती से चिपक गई।

पृथ्वी की गर्मी पा कर जलकण भाप बन कर ऊपर उठते हैं और फिर घटा बन कर बरस पड़ते हैं। इसी प्रकार दुलार प्राप्त कर मुन्नवर का दुःख भी आंसू बन कर आखों से बरस पड़ा। वृष्टि में जिस प्रकार दामिनी की गर्जन होती है, उसी प्रकार मुन्नवर के आँसुओं को भी उसकीं उसाँसों का सहयोग मिल रहा था। फिर जिस प्रकार महावृष्टि के उपरान्त व्योम साफ हो जाता है, उसी प्रकार मुन्नवर का मन भी साफ और हल्का हो गया।

दीवान साहब बोले, 'तुम ने बताया नहीं कि तुम अपने पति से

पृथक कैसे हुई ?'

मुन्नवर ने एक जोर कीं उसांस भरी और बोली 'मेरी जिन्दगी की तारीख बड़ी ही अजीबोगरीब हैं, अब्बा ! जिसे सुन कर तुम्हें हैरत होगी और शायद नफरत भी । मैंने नसीब के हर जुल्म बर्दाश्त किये हैं पर फिर भी मँजिल न पा सकी । मैं तवाइफ थी ।' कहते हुये मुन्नवर रुक गई और दीवान साहब के मुख की ओर देखने लगी कि उनकी मुख मुद्रा से, अपने कथन की उन पर जो प्रतिक्रिया हो, उसका अनुमान लगा सके ।

पर दीवान साहब के मुख पर निश्चित गम्भीरता ही विराज रही थी । मुन्नवर का साहस बढ़ा । वह आगे बोली, 'एक नौजवनान ने मुझे उस दलदल से बाहर निकाल कर जिन्दगी बख्शी पर फिर मेरी पिछली नापाक तारीख की मनहूस वारदातें उसके दिल में मेरे लिये जगह तंग करती गई और आखिर एक वक्त आया कि तंगदिली नफरत में बदल गई और उसने भी मुझ से नाता तोड़ लिया और दूसरी शादी कर ली । वह यहाँ करीब के किसी गांव में रहता है । हाल ही में उसकी शादी हुई है ।'

'क्या नाम है उसका ?'

'महिम ।'

महिम ?' दीवान साहब चौंक से पड़े । वही तो नहीं, जिसको मंजु व्याही गई है ?'

'नामालूम—क्या नाम है उनकी बीवी का । मैं किसी को नहीं जानती । पहली मरतबा ही इधर आई हूँ ।'

दीवान साहब की आंखों में आश्चर्य और उत्सुकता बढ़ रही थी । वह बोले, 'तुम इस हवेली में कैसे आई ?'

मुन्नवर ठिठक गई । उसके अन्दर कम्पन हुआ । मीनाक्षी ने उसे पहले ही समझा दिया था कि मनोहर दीवान साहब का दत्तक पुत्र था ।

वह झूठ बोल गई, 'गुजर रही थी कि बड़ी इमारत देख कर रुक गई और फिर यही कहीं रात गुजारने के मकसद से पुजारी के पास ही ठहर गई। बाग में टहलते हुये सोने के लिये कमरे में घुस ही रही थी कि किसी अवारा शक्स ने रास्ता रोक लिया। कोई बाहर का ही हो सकता है।'

मुन्नवर फिर चुप हो दीवान साहब के मुख को देखने लगी। दीवान साहब किसी गम्भीर बिचार में डूबे हुये थे।

कुछ देर बाद वह फिर बोले, 'तुम्हारे माता पिता नही हैं क्या ?'

मुन्नवर बोली, 'सब थे, पर अब उनका जिक्र करना ही फिजूल है।' और उसने फिर अपने माता पिता का वैसे ही परिचय दे दिया जैसे कि वह जानती थी और वैसे कि उसने पहले महिम को बताया था। वह बोली पहले हम हिन्दू थे और मेरे शौहर का तो ख्याल था कि मेरी अम्मी वड़ी तालीमयाफता भी थी।'

'तुम्हारे पति को कैसे इस बात का ज्ञान हुआ ?'

'किताब पढ़ कर—मेरी अम्मी की निशानियां जो मेरे पास हैं। आप भी मुलाहिजा फरमायें।'

दीवान महिधर उत्सुक हो बोले, 'अवश्य ! चलो दिखाओ अपनी मां की धरोहर।'

गुम्बद पर लगे घण्टे ने १२ बजा दिये। कोठी में सब सो गये थे। पर दीवान साहब और मुन्नवर को समय का कुछ पता नहीं था। कमरे में पहुंचने पर मुन्नवर ने तुरन्त अपना ट्रन्क खोला और पुस्तक एवं अपनी मां की लिखी हुई डायरी निकाल कर दीवान साहब के हाथ में दे दी।

दीवान साहब ने पुस्तक हाथ में ली। तुलसीकृत रामायण थी। उन्होंने पहला पृष्ट उल्टा और उस पर लिखे हुये शब्दों को पढ़ते लगे—'उपहार के रूप में जीवन संगनी को'—वह चौंक पड़े मानो उन्हें

कोई बिजली का सा करण्ट लगा हो । उन्हौंने पल भर में ही सारे पृष्ट पढ़ डाले मानों उनकीं उंगलियों में भी बिजली दौड़ गई थी। फिर पहले पृष्ट पर लिखे हुये—शब्द को उन्होंने दुबारा पढ़ा और हांपते हुये मुन्नवर से बोले, 'तुम्हारा नाम...'

मुन्नवर दीवान साहब की बेचेनी को लक्ष्य कर घवरा उठी। डरते हुये बोली, 'मुन्नवर, लेकिन पहले मेरा नाम मृणाल था।'

मृणाल ??? दीवान महिधर लगभग चिल्ला उठे।

मुन्नबर दीवान साहव में इस प्रकार का आक्समिक परिवर्तन देख कर भौंचक्की सी हो गई और वह भयभीत हो एक दम पीछे हट गई।

दीवान साहब के मुख पर पसीना छूट आया था। उनकी सारी देह कांप रही थी। वह पागलों की सी भाति फिर मुन्नवर से बोले, 'तुम्हारी मां तु सेम कब अलग हुई ?'

'जब मैं करीब १२-२३ साल की रही हूँगी। उसका निमोंनिया से इन्तकाल हुआ था।

'यानि मृत्यु हो गई ?'

'हां, बेसहारा होने पर ही तो मैं उस जहन्नुम में जा गिरी।'

दीवान महिधर ने हाथ उठा कर मुन्नवर का मुँह ढांप दिया... शायद इसलिये कि आगे जो मुन्नवर कहने जा रही थी, उसे उन्होंने सुनना पसन्द नही किया। वह पास ही की कुर्सी पर लुढक पड़े और रामायण की पुस्तक को बगल में रखते हुये, डायरी--के पृष्ट उलटने लगे।

उनका मुख पीला पड़ता जा रहा था।

मुन्नवर दीवान साहब के यूँ अचानक अस्वस्थ होने पर हैरान थी। वह डरते २ वोली, 'मीनाक्षी को वुलाऊं—आप की तबीयत–?'

'नहीं नहीं' दीवान बीच में ही घबराये हुये से बोले। और फिर एक टक मुन्नवर को घूरते—उसकी ओर बढ़ने लगे।

मुन्नवर और अधिक भयभीत हो पीछे को हटने लगी।

दीवान महिधर हकलाते हुये से बोले, 'घबराओ नहीं, मेरी बच्ची ! मैं बिल्कुल स्वस्थ हूं। आओ एक बार फिर मेरी छाती से चिपक जाओ।' कहते हुए उन्होंने स्वयं आगे बढ़ कर मुन्नवर को अपनी छाती से लगा लिया, और फिर तुरन्त पग बढ़ाते हुए कमरे से बाहर हो गए। मुन्नवर अचम्भित और विमूढ़ हो देखती ही रही। उसकी समझ में कुछ नहीं आया।

दीवान साहब ने अपने कमरे में आ कर अन्दर से किवाड़ बन्द कर लिए और आराम कुर्सी पर लुढक पड़े।

उनके समक्ष अपने ३० साल पूर्व का जीवन चलचित्र की भांति नाच उठा।

३० साल पूर्व जब कि वह २५ वर्ष के नवयुवक थे, उनकी शादी मृदुला से हुई थी। तब उनकी प्रकृति आज की तरह गम्भीर और कठोर नहीं थी। वह भावुक और चंचल थे। उन्होंने उसी वर्ष इलाहाबाद विश्वविद्यालव से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की थी और उसके तुरन्त बाद ही उन्हें अपने पिता जी के आदेश पर एक गांव को जाना था। गांव जाने का उद्देश्य उनसे छुपा कर रखा गया था, पर दीवान साहब तब बच्चे नहीं थे, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी० ए० पास कर चुके थे। सब समझते थे कि उनके पिता जी किसी बहाने उनको वह लड़की दिखाना चाहते थे जिसके साथ उनके व्याह करने का उनके पिता मन में प्रायः निश्चय कर चुके थे। मासूम और भोले बालक की तरह वह पिता के साथ चल दिये थे। जब लड़की देख कर वापिस वह देहरादून आये तो उनके मुख पर वह भोलापन लुप्त हो गया था। एक अजीब सी जलन उनको महसूस होने लगी थी। मुख पर ऐसी मुद्रा उभर आई थी कि मानो कितने मजनुओं की पीड़ा उनके हृदय में जा समायी हो। कुछ ऐसा ही सौंदर्य पाया था, उस लड़की ने, जिसको

वह देख कर आए थे। दीवान महिधर की भावुकता तो कायम रही पर शोखी और चंचलता का स्थान यह सकोच और व्यंगता ने ले लिया था। उनके पिता ने यह परिवर्तन लक्ष्य किया तो उसी वर्ष सर्दियों में उनकी शादी उस लड़की से कर दी। लड़की का नाम मृदुला था।

दीवान महिधर को याद हो आई व्याह की वाली वह रात जब सिर पर मुकट और तन पर दुल्हे का परिधान डाले वह बैण्ड बाजों के साथ, अपने सगे सम्बन्धियों को लिये दुल्हिन के मकान पर गए थे। कितनी धूम धाम से बारात सज कर गई थी। न जाने कितने कागज के गुब्बारे आकाश में छोड़े गए थे, जो जलते हुये दूर आकाश की ऊंचाइयों को लांघ कर टिमटिमाते हुये तारों का सा रूप ग्रहण कर गए थे। मार्ग में पड़ने वाले अनेक गांवों के लोगों ने बारात की वह शान और शोभा यात्रा देखी थी। उसके पिता जी तथा अन्य दूसरे प्रतिष्ठित बाराती शायद बारात की उस भव्यता का अनुभव ही न कर पाये हो क्योंकि वे कार्य ब्यवस्था में व्यस्त रहे होंगे। पर उसे तो उस समय दुल्हे का पद मिला था, पालकी में बैठा हुआ वह सव देखता जा रहा था। उसकी ओर सब की निगाहें,पड़ रही थी मानो सब उसके सौभाग्य पर इठलां रहे थे।

व्याह का समय वह समय होता है जव कल्पित स्वप्न साकार होते हैं एवं कुछ और रंगीन स्वप्नों की दुनियां आबाद होती है। वही तो एक ऐसा अवसर होता है जव लगता है मानों चारों ओर फूल खिले हुए हों, हवा में वहार सी हो। और भी न जाने क्या २। दुल्हा सव अनुभव पाता है पर व्यक्त नहीं कर सकता।

युवक महिधर भी इसी प्रकार सब तरफ उल्लास देख रहा था--चहल पहल—हँसी--खाना पीना और न जाने क्या २।

बारात तो ठीक आठ बजे रात को दुल्हिन के मकान पर पहुँच गई थी पर विवाह का शुभ मुहूर्त ७ घण्टे बाद यानी अगली प्रातः को ३

बजे का था। मध्य रात्री तक तो वरातियों का आदर—सत्कार चलता रहा। पुरुषों को प्रांगण में उसने एक से एक बढ़िया अचकन और चूड़ीदार पाजामे पहने हुए देखा और स्त्रियों को खिड़कियों से झांकते हुए जरीदार उम्दा सिलकी साड़ियों में। मध्य रात्री तक वातावरण कोलाहल पूर्ण, रहा पर ज्यूं २ रात बीतती चली गई, कोलाहल कम होता चला गया। सम्भवतः वाराती सोने चले गये थे। अब वह एक कमरे में पुरोहित एवं एक आध चाकर के साथ बैठा २ ऊंघ रहा था। उसे नहीं पता कि कब बीच के एक घन्टे खिसक कर उस मंगलमय शुभ घड़ी को खीच लाए थे जो ब्याह के मुहुर्त के लिए पुरोहित ने निश्चित की थी। थोड़ा हल्ला गुल्ला सुन कर उसकी आँख खुली तो उसने साड़ी की पर्तों में लिपटे हुए एक स्त्री समुदाय को कमरे में मीठी हंसी का फव्वारा छोड़ते हुए पाया। उनमें से कुछ तो प्रौढ अवस्था की थी जिनकी हंसी मर्यादित थी पर बाकी अल्हड़ युवतियाँ थी जिनकी हंसों में कटाक्ष थे—चुहुलबाजी और तरंग। सबके बीच घिरी हुई दुल्हन थी जिसका कद अनुमान तो किया जा सकता था पर बाकी सब कुछ उतने ही अज्ञात जितने कि सागर की गहराई में छुपे सीप। सागर प्रतक्ष में जल का संग्रह होता है और दुल्हन वसन और आभूषणों की। युवक महिधर के अन्दर एक अजीव उत्सुकता बलवती होती जा रही थी—यह जानने के लिए कि उस वसन और आभूषणों की गठरी में क्या छुपा था। यह सोचकर फिर उसे सन्तोष हो जाता था कि वह चांद सा मुखड़ा नित्य ही यूं कपड़ों की ओट में थोड़ा ही छुपा रहेगा। शीघ्र ही तो वह आवरण हटेगा और फिर उसके जीवन में एक चांदनी छिटक जाएगी। उसकी चन्दा—उसकी दुल्हिन।

महिधर भावनातिरेक हो न मालूम और क्या २ सोचने लग गया कि तभी उसे एक कण्ठ स्वर फुनाई दिया। 'पण्डित जी ! यह झालरे उठा दीजिए ताकि विश्वास हो जाय कि दुल्हा ही सामने ऊंघ रहा है—

कोइ पत्थर की प्रतिमा तो नहीं ।'

यह उसी पर एक कटाक्ष था—पैना सा तीर जो एक युवती ने साली के तरकश से फैंका था ।

तीर की चोट से आहत महिधर खिसिया सा गया था । कमरे में हंसी की स्वर लहरी गूंज उठी थी ।
महिधर अभी अपने आपको सँयत भी न कर पाया था कि फिर वैसे ही किसी दूसरे तरकश से दूसरा तीर आया, 'अजी सारंगी बजाइए, अगर नाच करने खड़े हो गये तो समझेंगे दुल्हा है, वरना—वरना पत्थर का बुत्त ।'

'पैर में घूंघरू पहना दो'-- तीसरा तीर ।

कमरा उन्मत्त हंसी की गूंज और ठहाकों से भर गया । हंसने वाले चेहरे लाल पड़ गये थे मानो देह सारा रक्त उनके गालों पर ही जमा हो गया था । वर पक्ष की ओर से जो पुरोहित आए थे, वह भी हंसते २ लोट पोट हो गये थे । हंतते हुए ही उन्होंने महिधर की पीठ पर हाथ फेरा और वोले, 'इस समय दुल्हा के वेष में है, हमारा महिधर, वरना तुम्हें पता चल जाता कि कैसे होता है चिढ़ाना ।'

एक आवाज आई, 'ठीक कह रहे हैं, पण्डित जी ! शायद दुल्हन से लजा रहे हो दुल्हा । जरा पर्दा कर दो ।'

फिर उन्मत्त हंसीं की लहर ।

'चुप भी करो लड़कियो ! ज्यादा छेड़ छाड़ भी किस काम की' एक प्रौढ़ा का स्वर था यह, पर तुरन्त ही प्रत्युतर मिल पया एक युवती से । 'चुप क्यों रहें, चाची! कोई इनके दबैल हैं ? दीवान होंगे तो अपने घर के होंगे, इस समय तो हमारे वन्दी हैं । यदि कहो तो मृदुला के चरण ही न छुवा दूं ।'

बड़ा ठहाका हुआ । महिधर ने झालरों से ही झांक कर देखा कि जिस साड़ी में दुल्हिन लिपटी हुई बैठी थी, वह भी जोर मे हिल रही

थी। सम्भव है, उसकी स्वप्नों की रानी, दुल्हिन भी हंस रही थी। मज़ाक भी तो कितने चुभने वाले थे। उसका मन इन मजाकों से तरंगित हो उठा। दिल किया कि दुल्हिन का घूंघट उठा कर पूछ बैठे, 'कैसा लगा मजाक तुम्हें ?' लेकिन मजबूरी अंकुश बनी हुई थी।

दीवान महिधर को फिर याद हो आई वह घटना जब बारात वापिस देहरादून को लौट रही थी। ऊपर आकाश मेघाच्छादित था हल्की २ बून्दा बाँदी भी हो रही थी मानों उनके सुखी दाम्पत्य जीवन की कामना कर ऊपर से देवता भी पीयूष-वर्षण कर रहे थे। वर्षा के कारण बारात कार और मोटरों में सवार होकर देहरादून आई थी। डोली और पालकी फिर दूसरे दिन ही मोटर पर लद कर लाये गये थे।

समय रात्री के पूर्वार्ध का था। दुल्हा दुल्हिन एक कार पर सवार थे। केवल ड्राइवर ही अगली सीट पर बैठा हुआ कार चला रहा था। बाहर रिमझिम लगी हुई थी और युवक महिधर के अन्दर भी उसी प्रकार पावन प्रेम का स्रोत झर-झर कर एक मीठा कलरव सा पैदा कर रहा था।

उसने धीरे से अपना हाथ बढ़ाकर दुल्हिन की हथेली पर रख दिया और फिर दुल्हिन की नरम हथेली को अपने हाथ में ले कर धीमे२ मसलने लगा! उसने दुल्हिन की बारीक, गोल भिंडी जैसी ऊंगलियों को देखा, जिन पर दहेज में दी गई सोने की अंगूठियां चमक रहीं थीं और जिन पर मैंहदी के लाल रंग से सुन्दर चित्रकारी की हुई थी। उसने एक अंगूठी उतार कर स्वयं पहन ली और दुल्हिन की उंगलियों में अपनी अंगूठी पहना दी। अंगूठियों का आदान प्रदान एक प्रेम की मूक अभिव्यक्ति थी। इस मौन आदान प्रदान की दुल्हिन पर क्या प्रतिक्रिया हुई, यह देखने के लिये जब उसने दुल्हन का घूंघट उठाना चाहा तो दुल्हिन लूढ़क कर उसके वक्ष से जा चिपकी थी। वह आत्म-

यता की इस चरम अनुभूति से विभोर हो विस्मृत सा आँखे वन्द कर दुल्हिन को हृदय से चिपकाये स्वप्निल संसार में जा पहुंचा था।

इसी प्रकार की एक अनुभूति और जब देहरादून वापिस आने पर दूसरे दिन वह चोर बिल्ली की भांति दुबक कर सारे दिन उस कमरे का चक्कर लगाता रहा जिस कमरे में मृदुला दुल्हिन बनी हुई स्त्रियों के झुरमुट में बैठी थी। काश कि वे स्त्रियां उसकी दिल की धड़कनों पर तरस खा कर कुछ क्षणों के लिये मृदुला को अकेला छोड़ जाती व्याह के समय दुल्हा और दुल्हिन पर दुनियाँ की खुशी और उल्लास लुटाया जाता हैं। केवल एक ही मुराद उनकी पूरी नहीं होती और वह यह कि दुनियां खुशियां मनाती है दिनों तक ढोलक वजती है मॉगलिक गीत गाये जाते हैं, पर किसी को यह विचार नहीं आता कि दुल्हा दुल्हन को अलग कुछ दिनों के लिये निवास एकान्त दे। प्रथम मिलन की रात भी तो कितनी छोटी होती है। न मालूम सूर्य को इतना भय होता है कि यदि दो चार घण्टे विलम्ब कर वह पूर्व के क्षितिज पर अपनी डयूटी पर उपस्थित हुआ तो सृष्टि रचयिता जैसे उससे कोई ज़वाबतलबी ही कर लेगा। वह क्यों अपनी स्थिति स्पष्ट नहीं करता कि नीचे भूलोक पर दो आत्माओं का सँयोग नीरव सुनसान वातावरण की मांग करता है। आखिर विधाता भी तो हृदय रखता है बल्कि सच तो यह है कि दुल्हा दुल्हिन को दिए हुए हृदय की रचना भी तो उसी कीही होती है। बांसुरी में स्वयं संगीत भर कर कौन फिर उसकी तान या लय पर मुग्ध न होगा?

युवक महिधर को उस समय लगा कि मानो विधाता और उसकी हवेली पर एकत्रित जन समुदाय कुछ बुद्धिहीन ही है। दीवान महिधर का ध्यान फिर दौड़ता हुआ उन चार—पांच वर्षों को पार कर गया जो उन्होंने अपनी—पत्नी के सहवास में व्यतीत किए थे। उन्होंने मिलन

की प्रथम रात को मृदुला को वह पुस्तक भेंट की थी, जिसे माँ की कीमती धरोहर समझ कर मुन्नवर या मृणाल, आज तक अपने पास सुरक्षित रखती आई थी और जिसे आज उसने दीवान साहब को दिखाया था। वही तो कमरा था, जिसमें दीवान महिधर इस समय आराम कुर्सी में लुढ़के हुए दूर अतीत की स्मृतियों में खोये हुये थे।

'मैं रत्न जड़ित सोंने का हार न दे सकूँगा। तुम्हारे प्यार के समक्ष उनका मूल्य ही कितना है। रामायण की एक प्रति भेंट कर रहा हूँ। न जाने तुम्हें कैसी लगे !' युवक महिधर ने पुस्तक भेंट करते समय कहे थे येह शब्द।

मृदुला ने छोटा सा प्रत्युत्तर दिया था। बाकी चितवन से पति की ओर देखकर वह लजीली मुस्कान में बोली थी, 'तुम्हारा उपहार तुम्हारे प्रेम की मर्यादा के अनुकूल ही है, पर इसके अतिरिक्त कुछ और नही दोगे ?'

'क्या '

'चरण—रज'

युवक महिधर ने गद् गद् हो मृदुला में अंक मैं समेट लिया था।

इसी प्रकार वह व्याह के पश्चात हरिद्वार गये थे। गाड़ी में भीड़ इतनी थी कि बड़ी मुश्किल से उनमें से एक को ही बैठने का स्थान मिला था। युवक महिधर ने मृदुला को बिठा दिया था और आप खड़े हो यात्रा करन लगे थे। मृदुला पति की ओर देखती और मुस्करा देती थी। चुपके से उसके व्यंग भी कसा था 'आनन्द आ रहा है न सफर का यदि टाँगे थक थक जायँ तो बता देना, हरिद्वार पहुँचने पर तेल मालिश कर दूँगी।'

महिधर हंस पड़े थे। मृदुला की छेड़ छाड़ उस समय तो उन्हे अति पसन्द आई थी। लेकिन बाद में उन्होंने महसूस किया कि मृदुला ने चाहे व्यंग ही क्यों न कसा हो, पर उसका कथन असत्य नहीं था। उनकी टाँगें थक कर चूर हो गई थी।

मृदुला ने पति की बेचैनी को देखा तो शौचालय की ओर जाते हुए बोली, 'आप जरा बैठिये।'

लेकिन मृदुला शौचालय से तभी बाहर निकली जब हरिद्वार का स्टेशन आ गया था।

महिधर को तब आभास हुआ कि उसके लिए स्थान बनाने को ही मृदुला आधे घण्टे शौचनालय के अन्दर बन्द रही तो वह पत्नी के चातुर्य पर मुग्ध हो उठे।

उन्होंने मृदुला की ओर देखा तो उसकी आँखों में अनुराग तैरता हुआ पाया था। व्याह के एक दो माह पश्चात जब वह मृदुला के संग पहली बार ससुराल गये तो 'वहां भी वह मृदुला के स्नेहसिक्त व्यव हार पर मुग्ध हो उठे थे। वह जैसे रूप में सुन्दर थी वैसे ही स्वभाव की मीठी थी।

युवक महिधर लुक छिप कर सिगरेट पीते थे। मृदुला को पति का सिगरेट पीना पसन्द नहीं था उसने स्नेह सिक्त शब्दों में एक दिन आपति भी की थी 'सिगरेट पीओगे तो तुम्हारे अधरों को पास नहीं आने दूंगी—समझे?'

और युवक महिधर को सचमुच बड़ी पीड़ा पहुँची थी। उन्होंने जेब में पड़े सिगरेट से पैकटों को फैंक दिया था। यहो निश्चय कर कि वह तब से कभी सिगरेट नहीं पीयेगा। लेकिन मृदुला ने देखा कि एक दिन में ही, सिगरेट के अभाव में पति का हुलिया वदल चुका था। उसने अकेले में नौकर को बुलाया और उसे रुपये देती हुई बोली, 'जाओ, कुंवर साहव के लिये एक पैकेट कैप्सटन का ले आओ।'

'कैप्सटन तो यहां नहीं मिलेगी, बहन जी—कैंची, डी लैक्स, या कैवैन्डर, जो भी कहो, ले आऊंगा।'

'नहीं वह घटिया किस्म के सिगरेट नही पीते। देहरादून चले जाओ औंर फिर जल्दी लौट आना। किराये के पैसे दे रही हूँ।'

रात को मृदुला जब सोने के कमरे में आई तो महिधर सौंफ चबा रहे थे। मृदुला हँस पड़ी, व्य में बोली, 'सौंफ चबाई जा रही है क्या ?'

महिधर खिसिया सा गये थे।

मृदुला ने चुपके से ब्लौज के अन्दर छुपाये हुये सिगरेट के पैकेट को निकाला जिसे लेकर कुछ देर पहले नौकर देहरादून से आया था, और पति की ओर बढाती हुई बोली, 'लो पी लो—ज्यादा सौफ न चवाओ।'

महिधर ने पैकेट को देखा तो उनकी आंखें चमक उठीं थी। उसने झपट कर पैकेट अपने कब्जे में किया और तुरन्त एक सिगरेट निकाल कर खिसियाते हुये जला लिया था।

मृदुला पति को लज्जित देखकर द्रवित हो बोली थी, "सिगरेट एक दम नहीं छूटनी, कम पिया करो बस।" कहती हुई व पति के वक्ष से लिपट गई थी।

दीवान महिधर की आँखों में एक के बाद दूसरी अनेकानेक घठनाएं चल चित्र की भाँति आती गई और लोप होती गई। कितना सरस और सौहार्दपूर्ण था उनका व्याह के पश्चात ३-४ वर्ष का जीवन। आखिर एक दिन वह भी आया जबकि मृदुला से नहीं अपितु घर के नोकर चाकरों से उन्हें पता लगा कि वह पिता बनने वाले थे। शायद व्याह के पश्चात विवहित जीवन में फिर दूसरा रोमांच पिता अथवा माता बनना ही है। दाम्पत्य जीवन के जिस पौधे का पति पत्नी द्वारा असीम प्यार से सिंचन होता है, पुत्र प्राप्ति उस पौवे के फूलने और फलने की संज्ञा ही तो है। युवक महिधर और मृदुला दोनों अपने प्यार के साकार होने के सं र, पहले तो बहुत लजाते पर फिर कसकर एक दूसरे के वक्ष म चिपट जाते। युवक महिधर एकान्त में मृदुला को माँ होने का आभास कराकर खूब छेड़ते और मृदुला प्रत्यक्ष तो लजा कर पानी र हो जाती पर परोक्ष में इस चुहुल बाजी से असीम आनन्द मिलता। महिधर भी अब ऐसा अनुभव करते,

मानों वह तब तक एक जिम्मेदार प्रौढ़ गृहस्थी होने जा रहा थे।

मृदुला की मां बनने की खुशी अथवा सम्मान में, पिता के आदेश पर एक दिन, युवक महिधर उसे अपने संग बाजार ले गये, इसी उद्देश्य से कि जो साड़ियाँ एवं अन्य वस्त्र वह अपने लिये पसन्द करे उन्हें खरीद ले। पर क्या पता था कि वह दिन महिधर के जीवन में एक युगान्तकारी मोड़ ला देगा।

दीवान महिधर याद कर सन्ताप में जल उठे। उन्हें याद हो आया कि जब मृदुला सब सामान पसन्द कर चुकी और वे दुकान से बाहर निकल ही रहे थे कि अचानक मृदुला किसी को देखकर ठिठक पड़ी थीं। वह महिधर की आयु का ही एक युवक था जो एक टक मृदुला को देख रहा था। मृदुला ने सम्भल कर तुरन्त ही अपनी दृष्ठि उस युवक से हटा ली और तेज कदम रखते हुए दुकान से बाहर हो गई। युवक महिधर उस युवक को गौर से देखने लगे। मृदुला के चले जाने पर उस युवक को अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ और उसने महिधर को अपनी ओर देखते हुए पाया तो घबरा कर दुकान से बाहर निकल कर दूसरी ओर चल दिया। युवक महिधर बुझे २ दिल से फिर आगे बढ़े और मृदुला से जा मिले जो कुछ दूर पर खडी विचलित सी पति की प्रतीक्षा कर रही थी।

पति पत्नी फिर वापिस घर को आ गये पर सारे रास्ते खामोश विचारों में डूबे हुए। घर पहुँचने पर मृदुला सीधे अपने सोने वाले कमरे में चली गई और महिधर ? बग्घी मंगवाई और बाहर सैर को निकल पड़ा। बग्घी कहीं रुकी नहीं। पल्टन बाजार -परेड डी० ए० वी० कालेज और फिर उससे भी आगे बढ़ गई। शहर पीछे छूटने लगा तो कोचवान बोला रात होने को आ रही है, कुंवर साहब ! निर्जन स्थान है और अधिक बढना ठीक नहीं। वापिस मुड़ चलें।

महिधर विचारों में डूबे हुए थे। हृदय में अन्धड़ चल रहा था।

कोचवान ने क्या कहा उन्होंने कुछ ध्यान न दिया। फिर भी बग्घी रुकवा कर वह उतर पड़े और बड़ी देर तक टहलते रहे। जब बिल्कुल अंधेरा हो गया तो वह बग्घी में बैठे और दो घड़ी बीते घर वापिस पहुंचे। रात को वह भोजन कर अपने सोने के कमरे में तभी आये जब ११ बज गये और विश्वास हो चला कि मृदुला सो गई होगी। पर मृदुला सोई नहीं थी। आँखें मूंदकर वह भी विचारों में डूबी हुई थी। महिधर जब कमरे में प्रविष्ट हुए तो वह वैसी ही लेटी रही। उसने कोई गति नहीं की। कमरे में पहले से ही अंधेरा था। महिधर भी चुपचाप आकर मृदुला के पलंग से सटे हुए अपने पलंग पर लेट गया था। उसने भी बत्ती नहीं जलाई। दोनों के घर में एक भयंकर तूफान चल रहा था, पर प्रत्यक्ष में वे आँखें मूंद कर ऐसे लेटे हुये थे मानों गहरी नींद में हों। सारी रात दोनों में से कोई भी सो न सका। आखिर आकाश में जब शुक्र तारा उदित हुआ तो मृदुला न शय्या त्यागी और उठकर पति की सेज पर आकर धीरे से चुपचाप बैठ गई महिधर को पता चल गया, पर वह गतिहीन रहा। भोर होने में अभी घंटा डेढ घंटा बाकी था। मृदुला आधे घंटे तक वैसे ही बुत की तरह बैठी रही और फिर उठकर बाहर आ गई और टहलने लगी। महिधर कमरे की खिड़की से उसकी बाग में डोलती हुई परछाई को देखता रहा।

दूसरे दिन भी दोनों में से किसी ने उस दिवार को जो उनके मध्य खड़ी हो गई थी, गिराने की कोशिश नहीं की। कभी आँखें चार होतीं तो पल भर एक दूसरे की आँखों में छुपी हुई भावनाओं का अध्ययन कर, उनकी पलकें फिर नीचे हो झुक जाती और वे फिर अपने २ कामों में लग जाते।

मृदुला समझती थी कि महिधर भावुक प्रकृति के थे, अतः उनकी भावुकता फिर प्रेम का आश्रय प्राप्त करने को मचल उठेगी। शायद

अधिक देर तक वह अपनी हृदय की पीर को सँजोये न रख सकेंगे और आखिर उसी से अपनी पीर का उपचार करायेंगे। उसे पति से कुछ यही आशा थी पर उस रात को भी जब महिधर सीधे जा कर सो गए तो मृदुला तीव्र पीड़ा में कराह उठी। उसे इस सत्य का आभास हुआ कि महिधर को नहीं बल्कि उसे ही स्वयं झुकना पड़ेगा—उसे अपने प्रति जो सन्देह पति के मन में घर कर गया था, स्वयं ही दूर करना होगा–सब बातें स्पष्ट—। बस यही एक मात्र उपाय था। लेकिन वह बिना पूछे ही क्यों स्पष्टीकरण दे ? वह कोई अपराधिनी तो नहीं थी। आखिर क्यों उसका पति उससे बातें न करने की हठ ठान बैठा था ? क्या इसी लिये कि वह उस अपना अधिपत्य थोपना चाहता था पत्नी पर, जिस को वह अभी तक इतना प्यार करता चला आया था। नहीं, वह भी कभी नहीं झुकेगी। वह उसकी पत्नी थी, सद्‌चरित्र और पति परायणा—कोई मामूली स्त्री नहीं। पति को झुकाने का अधिकार उस को भी प्राप्त था—अगर पति उसे झुकाना चाहता है। वह दीन बन कर गिड़गिड़ायेगी नहीं। आखिर वह भी तो पिछले चौबीस घण्टों से दुःखी थी—पति की गोद में सिर रख कर अपनी पीर बाहर निकालने को आतुर। क्यों उसकी उपेक्षा की गई—क्यों उसे पत्नी का मान न मिला ? क्या यह उसके प्रेम का अपमान नहीं था ? मृदुला आक्रोश में तड़प उठा।

फिर उसका ध्यान उस युवक की ओर चला गया, जिसके कारण उसके जीवन में यूँ तो एक आंधी सी आ गई थी। वह आत्म ग्लानि से टूक टूक हो गई। युवक—वह भावुक कवि, जिसने उसे विचार दिये थे–प्रकृति के प्रति हृदय में प्रेम जागृत किया था—उसे कल्पनाशील और सरस बनाया था—यहाँ तक कि उसे कावियित्री बना गया था—उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो, अपने जीवन को अभिशाप बना बैठा। मृदुला की आँखों में इस निर्दोष युवक की बेवकूफी पर आंसू आ गये। काश !

उसके पति उस भावुक युवक को क्षमा कर पाते।

सोचते सोचते रात बीतने को चली आई और मृदुला कल की भाँति शय्या त्याग पति के समीप चरणों में आ कर बैठ गई। एक गरम आंसू आंखों से लुढ़क कर पति के चरणों में गिर गया।

युवक महिधर को मानो मृदुला से यही तृष्णा थी। वह उठ बैठे और उन्होंने अन्धेरे में ही दोनों बाजू आगे बढ़ा दिये जिनमें अनायास लुढ़क कर मृदुला उनके अंक में समा गई।

काफी देर बाद आखिर महिधर उठे ओर बत्ती का स्विच औन कर मृदुला से बोले, 'वह क्या भ्यान की दूसरी तलवार थी ?'

मृदुला सुन कर क्षुब्ध हो उठी। उत्तर देने की अपेक्षा उसने अपने हाथ से पति का मुँह ढांप लिया।

महिधर को पत्नी की लाचार स्थिति पर असीम दया हो आई। उन्हें लगा कि आहत पक्षी की भाँति उसकी पत्नी उनकी गोद का— सहारा ढूंढ रही थी। उन्होंने फिर भी उसके जख्म को छूना चाहा, बोले, 'दुःखी मत हो, बोलो दोनों में से कौन सी तलवार है, जिस की धार तुम्हें ज्यादा तेज लगी ?'

मृदुला के नेत्र आंसुओं से भर गये। धीमें स्वर में बोली, 'तुम्हें वहम हो रहा है। वह तलवार नहीं एक टूटा हुआ खंजर है—इतना पुराना कि जिसकी धार ही जाती रही—अब तो केवल लोहे का ही ठुकड़ा है।'

लोहे का टुकड़ा ? यही तो चाहिये। उसे सान पर चढ़ा दो, धार तो फिर भी निकल आयेगी।' महिधर का स्वर कुटिल सा था जो मृदुला का जख्म छू गया।

वह बोली, 'भगवान के लिये ऐसा वैसा मत सोचो। जरा सी भी दीमक महल को नष्ट कर देती है। तुम मेरे प्राण हो, मेरे सर्वस्व।'

उस दिन यहीं पर वे व्यंग विश्लेषण—समाप्त हो गये। मृदुला को आशा थी कि जिस दीमक की उसने चर्चा की थी—शायद उस पर

झाड़ू बुहारी फिर गई हो, पर ज्यों ज्यों समय बीतता चला गया, उसे आभास हुआ कि वह दीमक बजाये साफ होने के इतनी बढ़ गई थीं कि उससे दिवारें खोखली हो कर महल के किसी भी क्षण गिर जाने का खतरा पैदा कर गई थी।

प्रसव का काल समीप आ रहा था। मृदुला भारी हो चली थी। महिधर ने चुटकी भरी, बोले, 'स्त्रियों के विषय में कहा गया है कि 'आँचल में दूध और आंखों में पानी—यही उसका जीवन है। उसके तन और मन का विश्लेषण नहीं किया गया।'

'क्या मतलब ? मृदुला चौंक पड़ी।'

'उसके तन में पति का प्यार पलता है तो वह मां की प्रतिष्टा को प्राप्त करती हैं—उसके मन में प्रेमी स्मृति ज्योति बन कर जलती है तो वह जलन अनूठी रचनाओं को जन्म देकर उसे कवियित्री का यश प्रदान करती है—मन का आलोक—एक दिव्य दृष्टि।'

मृदुला सुन कर सुन्न रह गई।

महिधर अपनी कैंची चलाते रहे, बोले, 'सुनाओ तो कोई कविता—कितनी अपरिमित विरह वेदना होती है उनमें। सुनने को दिल चाहिये।'

मृदुला तड़प उठी। रोने के से स्वर में बोली, तुम जाओ यहां से, भगवान के लिए चले जाओ।'

महिधर ने अपने आप को कुछ अपमानित सा अनुभव किया, बाले' 'मन के मीत का इतना मान, मृदुला ?'

मृदुला पति की ज्यादिती पर क्षुब्ध हो उठी। शक्ति बटोर कर बोली, मान नही, अभी तक तो अपेक्षा थी, पर अब अपनी भूल का प्रायश्चित करूंगी—तुम्हारी प्रेरणाओं का आदर करूंगी। कभी कभी ऐसा भी तो होता है कि जिस वस्तु का अस्तित्व नहीं होता—उसको आकार दिया जाता हैं और फिर उसकी नित्य अर्चना, उसमें जान भी डाल देती है। मूर्तियों के प्रति आस्था मीरा को भगवान तक ले ही

तो गई ।

महिधर सुन कर ठिठक पड़े । उन्हें लगा कि मृदुला ने जोर का प्रतिघात किया था ।

'आकार का मूल आधार तो होता ही होगा—प्राणेश्वरी ?' महिधर जल कर पत्नी को कुरेदने लगे ।

'यह प्रश्न तो उससे करना उचित है जो मूर्तियां घड़ता है । कलाकार कल्पनाशील होता है—कुछ भी आकार दे डाले, सब उसके मन के भावों पर निर्भर करता हैं । वह तो सृष्टा हैं ।'

महिधर परास्त सा हो गया । परास्त मनोवृति दिल की जलन घटाती नहीं, बढ़ाती है । क्योंकि वाणी के मूक हो जाने पर हृदय की कसक बाहर नहीं निकलती । वह सोचने लगे कि मृदुला की जीत, उसकी अपनी जीत नहीं—उस युवक की जीत थी जिसने उसे वह भाव, वह व्यक्तित्व दिया था । उन्हें लगा कि मृदुला पर उस युवक की छाप बड़ी गहरी थी । पराजय स्वीकार करते हुये से वह बोले, 'अर्चना करो मृदुला ! अपने आराध्य की । मैं तुम्हें नित्य प्रेरणा देता रहूँगा ।' और और कह कर वह खिन्न मन ले कर यहाँ से उठ गये ।

मृदुला पति के यूँ वैराग्य भावों से ओतपोत निराश हो चले जाने पर हताश हो देखती ही रह गई । उसे तत्काल कुछ नहीं सूझा पर बाद में वह चित्कार कर उठी । पति को परास्त कर, उसके हृदय में एक हीन भावना को जन्म देकर वह अपना कितना बड़ा अहित कर चुकी थी । उसे लगा कि उसके व्यक्तित्व की विशालता ही आज उसके लिये अभिशाप बन गई जिस विशालता से ही अनायास टक्कर होने पर पति का प्रेम आहत होकर, छटपटा उठा था ।

मृदुला आत्म प्रवंचना में कराह उठी ।

'ओह आचार्य ! तुम्हारा दिया हुआ प्रकाश आज अन्धकार पैदा कर गया तुम्हारा सृजन विनाश दे गया ।' मृदुला के उसांसों में उस

युवक के प्रति धिक्कार निकलने लगी।

उसे स्मरण हो आये वे शब्द जो महिधर के साथ व्याह निश्चित होने पर उस युवक ने, जिसे वह आचार्य के नाम से पुकारती थी भावनातिरेक में कहे थे। अन्तरिक्ष की ओर देखते हुये वह बोला था, 'तुम्हारे प्रति मेरी आत्मीयता व्याह के पश्चात, मर्जित हो कर तुम्हारे चिर कल्याणमय जीवन की मौन कामना करेगी--उससे तुम्हारा पथ आलोकित होगा। तुम केवल शरीर लेकर बढ़ रही थी,मैंने तुम्हारी देह में आत्मा भरी है—विचारों के सोपान दिए हैं, इसीलिए कि जिसका तुम वरण करो--उसका जीवन भी धन्य हो जावे। तुम्हारा मंगलमय जीवन ही मेरे लक्ष्य और साधना को प्रतिफलित करेगा।'

···पर आज कहाँ उसका पथ आलोकित हुआ था, कहाँ आज आचार्य की साधना सफल हुई थी। वह तो गहन तिमिर में छटपटाती हुई, घोर मानसिक यातना से त्रस्त थी।

उसके अधरों से हल्का सा स्वर निकला, 'झूठी तुम्हारी कल्पना-तुम्हारी कामना झूटी, आचार्य! तुम्हारा लक्ष्य ही झूठा सिद्ध हुआ। तुम ने आत्मा दे कर, विचार दे कर, मुझे पति से अलग करवा दिया। अच्छा होता मैं एक साधारण स्त्री होती—विचार शून्य, भाव रहित--केवल पति को प्रिय।'

···दिन बीतते चले गए और आखिर एक दिन मृदुला ने एक कन्या को जन्म दिया। ठीक मां की तरह गोल नेत्र—गोरा रंग मानो मृदुला ने ही शिशु का रूप धारण किया था।

युवक महिधर ने कन्या को देखा। तो देखते ही रह गये। शिशु मां की गोद में किलक रहा था और मां उसे देखते हुए शैशव का आनन्द ले रही थी।

महिधर जाने लगे तो मृदुला बोल पड़ी थी, 'बैठोगे नहीं--अपनी मुन्नी को नजर भर कर तो देख लो।'

महिधर बैठ गए और टुकर टुकर कर शिशु को देखने लगे।

मृदुला फिर एक सलज मुस्कान लिये पूछ बैठी थी, 'क्या सोच रहे हो ?'

महिधर चौंक सा पड़े थे। पत्नी के नेत्रों से उनके नेत्र जा टकराये थे और वह फिर नीचे फर्श की ओर देखने लगे थे। मृदुला पति को चुप देख कर व्यथित हो उठी। उसका मुख म्लान हो उठा। उसके प्रति पति का संकोच अभी तक बना ही हुआ था। कन्या जन्म पर भी पति खोया-खोया सा दिखाई दिया—आँखों में गम्भीर्य और नैराश्य। मृदुला अन्दर से विलख उठी।

ग्यारहवें दिन नाम करण किया गया। कन्या का नाम मृणाल रखा गया। मृदुला उस कमरे से जहाँ प्रसव हुआ था,—फिर नवजात शिशु सहित अपने कमरे में चली आई थी—पति के सहवास में, पर उसे लगा कि उसके जीवन का बसन्त बीत चला था। अब वह फुहार रूठना और मनाना, हठ करना और फिर स्वयँ झुक जाना, आंखों की भाषा में बात करना, उससे छोड़ कर अन्तर की व्यथा प्रकट करना, सब समाप्त हो चला था। अब तो कुछ ऐसी मूर्दनी छाई हुई थी कि पति पत्नी दोनों साथ होते तो लगता कि दम घुट रहा हो, आंखें लड़ती तो उनमें संकोच और लज्जा होती, मानो कोई भारी रहस्य उन आंखों के अन्दर से झांक उठता हो। एक अदभुत लाचारी–एक अजीब कसक-पति पत्नी अनुभव करते।

मृदुला को ये सब सहन करना असह्य सा हो गया।

एक दिन वह पीहर के लिए चल पड़ी, इसी आशा में कि शायद कुछ काल का वियोग पति पत्नी के बीच की उस भौंडी सी दीवार को तोड़ दे। विरह उसके संकोच और शर्म को पिघला कर दोनों का पुनर्ऐक्य करा सके।

वह जातेसमय एकान्त में पति से मिलने आई तो महिधर निश्चेष्ट हो जड़ वन कर सूनी सूनी निगाहों से उसे केवल देखते ही रहे। उन्हें

मुन्नी का प्यार लेना भी न सूझा। मृदुला पति को यूं गति हीन क्षुब्ध सा देख कर रो उठी और आँचल से मुंह छिपाये चली गई।

मृदुला को पीहर आये हुए माह हो गया फिर एक, दो और कई माह बीत गये। उसे आशा थी कि महिधर उसे लेने आयेंगे पर न महिधर ही उसे लेने गये और न मृदुला को ही फिर स्वयं ससुराल आना अच्छा लगा।

शीशा टूट जाता है, पर मुड़ता नहीं। मानिनी स्त्री भी मृत्यु का आलिंगन कर लेती है, पर अपने मान को कम नहीं होने देती। उसके हृदय में जलन उठती है। वह उस जलन में जल जाती है पर दवा नहीं करती। विचारों की अजीव विडम्बना, भावना का अजीब ह्रास मृदुला ने पीहर छोड़ दिया। ब्याह के पश्चात लम्बी अवधि तक वहां यूं टिका रहना उसे पसन्द नहीं आया। उसका स्थान अब पीहर न होकर ससुराल था। पर वह ससुराल भी न आई। ससुराल आया उसका एक पत्र--पति के नाम।

'मेरा पत्र है ?' डाकिये को हाथ वढ़ाता हुआ देख कर कुछ आश्चर्य में महिधर बोला।

'जी ! आप का ही' पत्र देकर डाकिया चला गया।

महिधर का कलेजा न जाने क्यों अनायास ही धक-धक करने लग गया। लिफाफा फाड़ कर वह पत्र को पढ़ने लग गये :

...'प्राण, मेरे देव !'

बहुत दिनों से आपकी प्रतीक्षा करती रही पर आप न आये। शायद न आने का ही आपने संकल्प किया हो। ऐसा जानती तो शायद पीहर न आती। आने की वैसे इच्छा भी कहां थी पर यह सोचकर कि कुछ समय आपसे दूर रहूँ तो सम्भव है, आपकी कुण्ठा दूर हो सके, मैं चली आई। तो भी मन और हृदय को आपके चरणों में ही सौंप कर क्या पता था कि उस समय आपसें पृथक होकर चले आने में जीवन

भर के लिए आपसे पृथक होना पड़ता। ऐसा जानती तो विश्वास कीजिये, कभी न आती। हां यह अलग बात है कि मौत मुझ को आपसे छुड़ा कर ले जाती। खैर, शायद इतना ही सहवास नियति द्वारा निश्चित था।

मैं अब पीहर छोड़ कर जा रही हूँ। आखिर कब तक यहां सड़ती रहूँगी। मेरा स्थान तो अब आपके चरणों में था —यहां नहीं। मुझे दुख है आपकी चरण-रज मुझे प्राप्त न हो सकी। कोई बात नहीं आपकी दी हुई भेंट —रामायण की प्रति और आपके प्रेम की निशानी मृणाल मेरे पास हैं। उन्हें आपकी सौगात समझ कर नित्य अपने पास रखूँगी। विश्वास कीजिये—आपके प्रति अपनी निष्ठा, स्वामी भक्ति और पति परायणता पर कभी कलंक न आने दूंगी। पुस्तक की नायिका सीता को आदर्श मान कर चलूंगी।

लेकिन प्राणधार ! विश्वास करो—आपने पुस्तक बाद में भेंट की थी, मेरा प्रेम पूर्व ही मर्यादित और निष्कलंक था। मैं आपके अधिकार में ब्याह के पश्चात ही आई पर मेरा हृदय—तभी आपका हो चुका था जब आप ब्याह से पूर्व मुझे देखने आये थे। आपकी मूर्ति तभी हृदय में प्रतिष्ठत हो गई थी। ब्याह ने तो केवल मेरे निराकार आराध्य को साकार किया। अब यह समझकर सन्तोष कर लूंगी कि पुनः मेरी भक्ति, मेरे प्रेम के पुश्प, निराकार देव को समर्पित है। यही बताने के लिए ही केवल यह पत्र लिख रही हूँ।

आचार्य के प्रति आपकी स्पर्धा निर्मूल है। यह सत्य है कि वे मुझे पर आसक्त थे पर उससे भी अधिक सत्य यह है कि उसकी आसक्ति निमज्जित होते-होते इतनी पावन बन गई थी कि वे मुझे अब प्रेमिका के रूप में न देख कर देवी के रूप में देखते थे—मां के रूप में। हां, यह सच है—बिल्कुल सच। जहां तक मेरा सम्बन्ध रहा है, मैंने उन्हें कभी उस दृष्टि से नहीं देखा जिस दृष्टि का आप को भ्रम हुआ है। मैं उनके

जजबातों पर मुग्ध थी उनकी कल्पना शक्ति, उनकी कविता, उनके विचार—लगता था उनकी देह ही नहीं थी—आत्मा ही आत्मा दिखाई देती थी। मैंने उनसे बहुत कुछ ग्रहण किया। सच तो यह है कि मेरे पास जो कुछ भी है–सब उन्हीं का दिया हुआ है। बताओ उनकी कैसे फिर उपेक्षा करती। अत: जब आरम्भ में उन्होंने मुझसे अपना प्रेम प्रकट किया तो मैं चुप रही।

जानते हो क्यों? हृदय की भावुकता अवश्य आचार्य का साथ देने लगी थी पर उसे मन का समर्थन प्राप्त नहीं था। मन ने उन्हें प्रेमी के रूप में नहीं, परमात्मा के रूपमें देखा और चाहा कि वह मुझे अपनी ही आत्मा समझ कर प्यार करे, प्रेयसी समझ कर नहीं। अब तुम समझ गये होगे कि आचार्य के प्रति मेरा प्रेम कितना नैसर्गिक और पवित्र था। यकीन करो, मैंने जीवन में पहली बार यदि किसी युवक का स्पर्श किया तो वह आप ही थे। इस बात का भी विश्वास रखिये कि यदि आपको मेरे चरित्र के प्रति सन्देह न होता तो मैं स्वयं ही कभी आचार्य का आपसे परिचय भी कराती। उनको ढूंड कर आप को सौंप देती। मृणाल की शिक्षा दीक्षा उन्हीं की संरक्षता में होती। वह तो कोयले में भी हीरे की चमक पैदा कर देते हैं। हमारी मृणाल आपकी और मेरे प्रेम की निशानी ऐसी चमक उठती कि तुम मेरे चयन की नित्य प्रशंसा करते और बोल उठते, 'गजब के हैं, मृदुला! तुम्हारे आचार्य ...।'

नाथ लेकिन, ! झंझावात कुछ ऐसा चला कि कल्पनाओं के तृण बिखर पड़े। सारा नीड़ ही उजड़ गया। शायद, इसलिए कि तुम्हारा ममत्व एक मृदुला तक ही सीमित न रह विश्व की धरोहर बने–तुम्हारी उदारता दूसरों के काम आये। सृजन आज वक्त ऐसी ही परिस्थितियों की माँग करता है।

अच्छा सदैव के लिए विदा लेती हुई आपको प्रणाम करती हूँ।

आपकी—
'मृदुला।'

अतीत के संस्मरण समाप्त हो गये जिन का संबंध मृदुला से था। दीवान महीधर कुर्सी पर बैठे हुए रो रहे थे—उनके रुमाल और यहां तक कि नीचे कुरता भी आंसुओं से तर हो गया था।

वह फिर सोचने लगे कि मृदुला फिर सचमुच कभी वापिस नहीं आई। वर्षों तक वह उसकी प्रतीक्षा करते रहे पर सब मृग मरीचिका के समान।

उनके पिता का देहान्त हो गया और वह कुंवर से दीवान बन गये—मृदुला फिर भी न आई। उन्होंने आखिर मनोहर को गोद ले लिया। पर दूसरो शादी न की।

समय बीतता चला गया। मृदुला के वापिस आने की तमाम आशाओं पर तुषारपात हो गया। दींवान महिधर सन्तोष में तड़प रहे। उन्हें शान्ति ने मिली। वह आचार्य की खोज में निकल पड़े—ऋषिकेश, हरिद्वार, मथुरा—वृन्दावन और काशी।

तभी समाचार पत्रों में उन्हें आचार्य की सी आकृति वाला चित्र देखने को मिला। नीचे परिचय दिया हुआ था 'वेदान्त और दर्शन के मर्मज्ञ—जिनके भाषणों से जन जीवन में नई आस्था करवट लेने लगी है।' दीवान महिधर ने पूरा समाचार पढ़ा। आचार्य उन दिनों काशी में ही ठहरे हुए थे। वे तुरन्त आचार्य से मिलने इच्छित स्थान पर पहुंच गये। वह आचार्य से मिले तो देखा—वही रूप, पर अब चेहरे पर अधिक तेज और आकृति में थोड़ी प्रौढ़ता थी।

आचार्य उन्हें देख कर बोले, 'अपना परिचय और उद्देश्य—दोनों से अवगत कराइये।' दीवान महधिर संयम तोड़ बैठे। आचार्य के गले लिपटते हुए बोले, 'मुझे नहीं पहचाना, आचार्य ! मैं महिधर हूँ—मृदुला को खो बैठा। अपनी मृदुला को—आपकी शिष्या को, और उनके आखों से आंसू झरने लगे।'

आचार्य को जोर का धक्का लगा। उन्होंने एक झटके के साथ दीवान महिधर को अपने आलिंगन से मुक्त किया और बोले, 'आप महिधर? ये क्या कह रहे हो, मृदुला कुशल से तो है?'

दीवान चिल्ला चिल्ला कर रोने लगे! 'नहीं आचार्य! कुशल होती तो क्यों आज आप की खोज में यहाँ आता? मैंने उसे खो दिया। वह घर त्याग चली गई है। मुझे शान्ति दीजिये आचार्य—मैं जल रहा हूँ।'

आचार्य ने महिधर की वह दशा देखी तो स्वयं भी विह्वल हो कुछ क्षण तो विस्मृति में खोये हुए से बिना लक्ष्य के यूँ ही देखते रहे पर पीछे चौंक कर उन्होंने अपने को संयत किया और दीवान साहब को सहारा देते हुए अन्दर अपने निजी कक्ष में ले आये।

...आचार्य की प्रेरणा पर फिर महिपुर बसा था। जहां एक के बाद एक विद्यालय खुलते गये और कालान्तर महिपुर के ही साथ दीवान महिधर और आचार्य का नाम—चारों दिशाओं में गूंजने लगा। कौन जानता था कि मूल प्रेरणा कहां से प्राप्त हुई। दीवान महिधर परिवार से ऊपर उठ कर अब विश्वबन्धुत्व की भावना अपना चुके थे। जिस सृजन का उनकी पत्नी मृदुला अपने पत्र में संकेत कर चुकी थी, वही साक्षातकार होने जा रहा था।

दीवान महिधर ने आंसू पोंछे और बीती बातों से ध्यान हटा कर सचेत हुये तो उन्होंने देखा कि क्षितिज पर उषा की अरुणिमा व्याप्त थी। रात जागरण में ही बीत चली थी। वह कुर्सी से उठे और टहलते हुए उस कमरे मैं आये जहां मुन्नवर सोई हुई थी। मिन्टों तक वह उसे देखते ही रहे। उनके मुंह से धीमा सा स्वर निकला, 'मृणाल—मेरी प्यारी बच्ची! यदि तुम्हें पता चल जाय कि मैं तुम्हारा पिता हूँ तो न जाने क्या हो। मैं पिता नहीं; नराधम था।'

और बुदबुदाते हुये मुन्नवर अथवा मृणाल को निंद्रामग्न पाकर दीवान साहब चले गये।

थोड़ी देर बाद जब भोर होने लगी और एक बाद एक हवेली में रहने वाले सब जाग गये तो अस्तबल से घोड़ों के हिनहिनाने की आवाज सुनाई दी। कोचवान अस्तबल-से घोड़ों को निकाल कर बग्घी जोत रहा था। अपने २ कमरों की खिड़की से सब झांकने लगे कि पौ फटते ही आज क्यों बग्घी जोती जा रही थी, तभी उन्हें आंगन में दीवान महिधर दिखाई दिये।

कोचवान को संबोधित करते हुये वह बोले, 'बग्घी नहीं, कार पर जाऊंगा। ड्राइवर को बुलाओ।'

कोचवान भागा २ ड्राइवर को बुलाने चला गया।

मृणाल भी जाग गई थी। मीनाक्षी को संकेत करती हुई बोली, 'नोटियाल ! दीवान साहब कहीं दूर जा रहे हैं ?'

मीनाक्षी ने गर्दन हिलादी, 'मुझे कुछ मालूम नहीं।'

उन्होंने देखा भागता हुआ ड्राईवर आ पहुँचा था और दीवान साहब के बैठने पर कार स्टार्ट होकर हवेली का फाटक पार करती हुई सामने वाली सड़क पर दौड़ पड़ी थीं।

मनोहर ने ऊपर अपने से आवज दी, 'कोचवान। आज सुबह २ पिता जी किधर को प्रस्थान कर गये ?'

'महिपुर ! आचार्य से मिलने'। कोचवान का उतर था।

मृणाल ने मीनाक्षी की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा। तो मीनाक्षी बोली, 'अवश्य किसी गम्भीर समस्या पर परामर्श करने गये होंगे। वरना यह समय उनके पाठ पूजा का था।'

'आचार्य कौन ?'

यह बाद में पता चल जायेगा। दीवान साहब के निकटस्थ व्यक्ति महां पण्डित और महिपुर विद्यालय के प्रमुख आचार्य।'

'तो क्या किसी जरूरी मसले पर मशवरा करने गये होंगे ?'

'हाँ जब से मैं इस हवेली में आई हूँ, यह पहला अवसर है कि

उन्होंने अपना नित्य नियम भंग किया है। देखती तो हो कि सब आश्चर्य में हैं। कोई बहुत ही गम्भीर बात है।'

और सचमुच ही मीनाक्षी का कथन सत्य निकला—घण्टे दो घण्टे के बाद ही कार धूल से सनी वापिस आंगन में प्रवेश कर रही थी, कार का दरवाजा खुला तो दीवान साहब के साथ आचार्य कार से उतरे। दीवान महिधर उन्हें अपने निजी कमरे में ले आये और सारे दिन भर वह आचार्य से मंत्रणा करते रहे किसी को भी अन्दर आने की आज्ञा नहीं थी—मीनाक्षी को भी नहीं जो, दीवान साहब के निकटस्थ और बिश्वस्थ कर्मचारियों में से थी। सब विस्मय में थे कि आखिर कौन सी घटना घट पड़ी अथवा कौन सी इतनी गम्भीर समस्या आन पड़ी कि दीवान महिधर इतने गम्भीर और असाधारण रूप से परिवर्तित दिखाई दे रहे थे न केवल आकृति से बल्कि प्रकृति से भी।

मुन्नवर अथवा मृणाल सोचने लगी। उसे लगा, सम्भव है अपने दत्तक पुत्र मनोहर की दुर्बलता का रहस्य दीवान साहब पर खुल गया हो और शायद वह इसीलिये उत्तेजित हों। तो क्या उसी के कारण आज हवेली में बेचैनी पैदा हो गइ थी। वह मन ही मन में बोली, 'नहीं नहीं, मैं चली जाऊंगी—मैं बुरी हूँ। जहाँ भी जाऊंगी, वहां परेशानी पैदा करूंगी।'

वह बढ़ी और दीवान साहब से विदा लेने के इरादे से उनके कमरे में घुस गई।

मीनाक्षी रोकती हुई चिल्लाई, 'मुन्नवर!'

पर उसे मुन्नवर नही दीवान महिधर का गम्भीर स्वर सुनाई दिया 'मुन्नवर को आने दो, मीनाक्षी! कोई हर्ज नहीं। तुम जाओ।'

मुन्नवर के कमरे में प्रविष्ट होते ही दीवान महिधर और आचार्य चौंकते हुए खड़े हो गये।

'मृणाल यही है, आचार्य!' दीवान साहब ने मुन्नवर का आचार्य

को परिचय दिया। आचार्य ने आदर और प्यार सहित मृणाल को अपने पास बिठा लिया।

अगले दिन हवेली में तो मुन्नवर ही दिखाई दी और न आचार्य ही। बल्कि मीनाक्षी भी लापता थी। किसी को कुछ पूछने की हिम्मत न हुई क्योंकि हवेली में दीवान साहब का विधान था। हवेली पर दीवान साहब का राज्य था।

८

मनोहर हफ्ते में एक ग्राध बार मंजु को देख ग्राता था। मंजु की ससुराल देहरादून से ८-१० मील पर ही थी। महिम ने उस स्कूल की नौकरी से त्याग पत्र दे दिया था जहाँ वह ग्रध्यापक के रूप में कार्य फरता था। छोटी मोटी जमींदारी तो थी ही मंजु के परामर्श पर गाँव में हीं उसने एक छोटा सा पोलट्री फार्म भी खोल लिया। कुछ बाग बगीचा ग्रौर साग सब्जियों की ग्रोर भी उसका ध्यान गया ग्रौर इस प्रकार गांव में ही उसने इतने साधन जुटा लिये कि जितना वेतन ग्रध्यापक के रूप में मिलता था, उससे दुगुनी तिगुनी ग्राय उसे गाँव में ही बैठे होने लगी। मंजु में उसे एक शिक्षित पत्नी मिली जो नित्य उस के साथ विचार विमर्श में पूरा सहयोग देती। वह उसका खूब विनोद करती, नित्य उसे खुश रखती। उसे किसी चीज की कमी न रही, पर न मालूम क्यों उसे लगता कि वह विचार शून्य हो चला हो। उसकी चंचल शक्ति समाप्त हो गई थी। उसे लगता था कि न मालूम वह कितना बूढ़ा हो चला है। मंजु भी कभी २ उसकी इस प्रौढ़ प्रकृति पर कटाक्ष कर देती ग्रौर वह सुनकर झेंप जाता था।

उसके ब्याह को साल हो चुका था। मंजु कभी पिक्चर देखने

देहरादून जाने का प्रस्ताव करती, तो वह अनिच्छा सी प्रकट करता। शुरु २ में तो वह उसकी इच्छा पूरी करता गया पर ज्यूं २ समय बीतता चला गया उसकी क्या, तो पिक्चर, क्या खेल तमाशे, सब में दिलचस्पी जाती रही। एक ही क्षेत्र रह गया उस की दिलचस्पी का– और वह था बागबानी। खेत की क्यारियों में सब्जियों के पौधे की देखभाल करना, उन्हें सींचना, उनमें खाद देना। उसके साथ होता था माणक और कभी कभी मंजु भी। यदि कोई भी न हुआ तो वह अकेले ही खेतों की ओर चला जाता और घंटों तक खेतों का निरीक्षण करता रहता। वह लाल २ टमाटर तोड़ता और खा जाता। फिर पतली कोमल भिडियाँ बैंगन, घिया, सलगम को देखता और उसकी तबीयत भर जाती।

मंजु कुढ़ती हुई ताने मारती, 'तुम तो किसान हो, किसान। कौन तुम्हें बी० ए० पास कहेगा ? बस, जब देखो, खेत, सब्जियाँ फल और अण्डे। मैं पूछती हूं, क्या इसे ही परिष्कृत रुचि कहते हैं ? कभी २ तो काव्य और कला की बात कर लिया करें !'

महिम हंस देता—हल्की सी हँसी। 'काव्य और कला उनके लिये है मंजु ! जिनके पास काम नहीं होता। साहित्य का निर्माण अभाव को पूरा करने के लिये ही तो हुआ है।। मेरे पास बहुत काम है। अभाव नहीं अनुभव करता। देखो तो कितनी बड़ी २ लौकियां लटक रहीं हैं।' मंजु बीच ही में टोक देती, 'भाड़ में जाये, ये लौकियां। कोई भी चर्चा करो, तुम फिर घूम फिर कर आजाओगे इन्हीं लौकियों पर इन लाल टमाटरों पर। आखिर मैं पूछती हूँ कि दुनियां में क्या कोई और विषय नहीं, जिस पर तुम चर्चा कर सको ? साहित्य तो अभाव की पूर्ति के लिये है पर इतिहास ?'

'वह भी साहित्य का ही एक अंग है, कोरे साहित्य का, जिसमें राजाओं का वैभव, युद्धों की विभीषिका, साम्राज्यों के उत्थान और

वतन की कहानियां ढकी पड़ी है। भला उनसे मेरी क्या दिलचस्पी हो सकती है? कृषि पर कोई इतिहास मिले, तो उसे पढ़ूं और उसकी चर्चा करूं कि कौन सी खाद किस सब्जी के लिये विशेष लाभप्रद होती है कुछ ज्ञान भी तो हो। इतिहास में वर्णित किसीकी भूल अथवा किसी की दूरदर्शिता से मेरा क्या सम्बन्ध? उन से जो निष्कर्ष निकलता है, वह राजनीतिज्ञो के लिये है—प्रशासकों के लिये है कि वे उनपर ध्यान दें।

मंजु आश्चर्य करती। और राजनीति को भी तुम यूंही चुटकियों में उड़ा दोगे।

महिम घृणा से होंट सिकोड़ता, 'यह भी चर्चा का विषय है? धोखा, फरेब, झूठ।'

'तुमने बी० ए० में विषय कौन २ से लिये थे?'

'यही, राजनीति, इतिहास आदि।'

'पर इनसे तो तुम्हें घृणा है?'

मुझे है, उनको तो नहीं, जिन्होंने पाठयक्रम निश्चित किया था। मंजु फिर पैनी दृष्टि से महिम को देखती मानों मन हीं मन उसके विचारों की थाह लेती। वह मन ही मन मनोहर और महिम की तुलना करती। एक चंचल बातूनी निडर और रसिक, तो दूसरा गम्भीर अल्पभाषी, बुझा २ और संकोचशील। मनोहर ऊँची लम्बी उड़ान लेता हुआ विहग और महिम दाने चुगता हुआ नीड़ का पक्षी। कितने भिन्न थे दोनों प्रकृति में यद्यपि दोनों एक ही आयु के और समान ही शिक्षित थे।

और वह स्वयं?

मंजु एक लम्बी सी साँस लेती।

उसे ग्राम्य जीवन पसन्द नहीं था। वह ग्राम्य जीवन से घृणा करती हो—ऐसी भी बात नहीं थी, पर गाँव का जीवन सम, एक रस निर्जीव और शान्त सा था–शीतकालीन नदी के पानी के समान—मन्द

मन्द बहता हुआ—बिना कोलाहल के। उसमें चंचल तरंगें नहीं होती—तूफान नहीं होता। वह युवती थी। उसे शीतकालीन नदी का रूप नहीं—वर्षा की तूफानी लहरों से प्यार था, जब दरिया चढ़ाव पर होता है—जब उसकी लहरें इठलाती हुई, निनाद करती हुई, अविरल गति से तट के झाड़ झंखाड़ को बहाती हुई, दौड़ती जाती है—अनन्त जल-राशि की ओर। वह तो भला एक जीवन है। आखिर उसकी धमवनियों में उष्ण रक्त की धार बह रही थीं। क्यों उसे गाँव का एकाँत जीवन—प्रकृति का शांत रूप पसन्द आता? गाँव में न थियेटर थे, न कल्ब—, न संगीत सुनाई देता था, न नूपुरों को छम छम वह युवती थी। उसका सौंदर्य निखर रहा था, अरमान मचल रहे थे। उसके तन वदन में अंगड़ाइयाँ वास करती थीं। यहाँ गाँव में कौन उसकी अंगड़ाइयों को देखता। कौन उसके अरुणिम कपोलों पर, उसकी भूमंगिमाओं पर फिसल कर हवा में मीठी जलती हुई उससे छोड़ता। उसकी साडियाँ ट्रंको में बन्द थी। आखिर किस लिए वह उन्हें पहन कर बनती संवरती? शीशियों में इत्र, डब्बी मैं काजल—सब सौंदर्य सामग्री रखी की रखी पड़ी थी। उसके माता पिता ने क्यों दहेज में ये सब कुछ दिया यदि यह सब व्यर्थ था? क्यों उन्होंने एक कुशासन, एक मिट्टी का घड़ा और पैरों के खड़ाऊं से सन्तोष न कर लिया। गाँव में तो इतना ही बहुत था। वह एक कृषक की पत्नी थी जिसका पति टमाटर की वेल से प्रेम-करता है, भरपूर जवान पत्नी के कटीले नयनों की ओर नहीं देखता। धरती की धूल और गर्द में फिरता रहता है, हाड़—-मांस के गदराये हुए लचीले बदन पर नहीं मंडराता। खेत, श्रम और—सब्जी वस यही दुनिया रह गई थी उसकी। वह झल्ला जाती और आखिर पति पर बरस पड़ती। 'देखो ये खेत, उन पर खड़ी ये हरी बेलें और इन बेलों पर झूमती हुई ये लौकियां—इनकी ही चौकीदारी करने के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है या इन चींजों का अन्वेषण मनुष्य ने स्वयं अपने पेट अपने स्वार्थ के लिए किया। बता सकते हो

इस पृथ्वी पर जन्म लेने का तुम्हारा मूल लक्ष्य क्या रहा होगा ?'

महिम मंजु के पैने व्यंगों को लक्ष्य कर उसके मुख को देखता हुआ सोचने लग जाता। वह समझ जाता कि इन व्यंगों की पृष्ठ भूमि पर मंजु की कौन सी मनोदशा काम कर रही थी। उसे पत्नी से सहानुभूति थी, पर वह ठीक था या उसकी पत्नी ठीक थी—इसका वह निर्णय नहीं कर पाता था। वह सोचता कि मंजु का अभी अनुभव ही कितना था कि वह जीवन का लक्ष्य समझ सके। उसने अभी परिस्थितियों की विडम्बना, विचारों के मोड़ और विचारों की प्रताड़ना ही कितनी सही थी, कि वह इतने गूढ़ विषयों पर चर्चा कर सके।

हल्की मुस्कान उसके होटों पर नाच उठती और वह उत्तर देता, 'लक्ष्य पूर्व निश्चित नहीं होता, मंजु! जन्म उपरान्त ही मनुष्य अपने लक्ष्य निर्धारित करता है। मैंने जो लक्ष्य चुना है, उसके पीछे मेरे आज तक के जीवन का अनुभव छुपा हुआ है। तुम व्यर्थ ही परेशान होती हो ....।'

मंजु बीच ही में टोक देती, "लक्ष्य से आप शायद 'कैरियर' का मतलब ले रहे हैं पर मेरा प्रश्न 'कैरीयर' से नहीं—जीवन के लक्ष्य से है जिस लक्ष्य को लेकर आपने मनुष्य योनि ली। वह लक्ष्य क्या सब्जियां पैदा करना था ?'

महिम उल्टा मंजु ही से प्रश्न करता, "तो तुम्हारा मतलब है कि हमारा जन्म हमारे चुनाव पर ही निर्भर रहता है ?"

"तो क्या नहीं ?"

'फिर तुम क्या लक्ष्य लेकर अपनी मां की कोख में आई थी ?'

"यही कि मनुष्य योनि देने वाले उस विधाता की सृष्टि को देख लूं—क्या क्या आश्चर्य भरे हुए हैं उसकी रची हुई सृष्टि में। ये टमाटर और लौकियाँ ही नहीं बल्कि पूरा गांव—इसके समीप बहने वाले नदी नाले—रात को चमकने वाला चांद—टिम २ करते

हुए –तारों की बारात–फिर गाँव के वातावरण से शहर का वातावरण जहां विधाता का भौतिक रूप देखने को मिलता है—जगमगाती हुई बिजली की रोशनी—उस रोशनी में दौड़ती हुई मोटर कारें—ऊँची विशाल अट्टालिकायें—उन में चल रहा व्यापार वैभव। समझ गये न ?'

"बोलती जाओ।"

"और फिर उससे भी आगे अनन्त आकाश–उसमें उड़ान लेते हुए वायुयानों की सवारी का आनन्द—नीला सागर—उसकी छाती को चीरते हुए स्टीमर और जलपोतों पर बैठे हुए विश्व भ्रमण की महत्वाकांक्षा।

"फिर" ?

"फिर क्या, इतना ही कम है ?"

"क्यों अन्तरिक्ष का भेद—चन्द्रलोक की यात्रा तो अभी शेष रह गई है।

"वहां यो अभी मानव पहुँचा ही नहीं है"

"न पहुंचा हो, पर लक्ष्य तो होना चाहिए। वहां भी विधाता की सृष्टि है। तुम अपनी परिधि को क्यों इस भूलोक तक ही सीमित रखती हो ?"

मंजु हंस पड़ती "आप तो मजाक पर आ गये।"

"मजाक नहीं, तुम जैसी पत्नी पर तो गर्व होता है। काश ! तुम रूस या अमरीका में पैदा हुई होती। वहां इस समय चन्द्रलोक की यात्रा के लिए एडवाँस बुकिंग हो रही है—तुम्हें टिकट मिल जाता"। मंजु खिल खिलाकर हंस पड़ती और साथ ही महिम भी। मँजु यौवन प्रदत्त चंचलता में और महिम मंजु की नादानी पर।

एक दिन मनोहर आ पहुंचा तो महिम को लक्ष्य करती हुई मंजु बोली, "मनोहर बाबू ! आप भी यहां कोई फार्म क्यों नहीं खोल लेते

देखे तो कितना आनन्द है यहां प्रकृति की गोद में बैठे हुये। देहरादून में तो मनुष्यों की भीड़ है—लिप्सा, होड़। कैसे लगती है वहां आपकी तबीयत ? यहाँ देखो न। प्यारी २ कोमल लौकियां, लाल लाल टमाटर बेलौं से झूम रहे हैं। न कोलाहल है न अशान्ति।"

मनोहर और महिम दोनौं मंजु के व्यंग को समझ गये थे।

मनोहर ठहाका लगा कर हंस पड़ा और महिम के अधरौं पर भी मुस्कान नाच उठी।

मंजु हंसती हुई बोली, 'किसी ने कहा है कि "शान्ति नहीं तो जीवन क्या है...।"

'और क्रान्ति नहीं तो यौवन क्या है ?' मनोहर ने वाक्य पूरा किया पर मंजु बीच ही मेंटोक पड़ी, 'छी छी, यौवन की बात न करना। शान्ति और यौवन तो परस्पर विरोधी हैं–एक सौम्य और दूसरा उच्छृंखल एक ओस और दूसरा अंगार। यहाँ प्रकृति की सेज बिछी हुई है, वैभव नहीं मचलता। वैभव की बात न करना। महिम बोला, जलाशय होता है न मंजु ! पानी का बान्ध। जब उसकी भीत टूटती है तो जल की धारा उमड़ती हुई बड़े वेग से धूल धूसर को अपने अंक में समाकर दौड़ती हुई चली जाती है। उसका पानीं मटीला होता है किन्तु थोड़ी ही देर बाद वह पानी साफ हो जाता है। उसकी गति भी मन्द पड़ जाती है। वह अपने नित्य रूप मैं आ जाती है। तुम भी, मंजु वही जलधारा हो जिसका मार्जन होना अभी शेष है, निम्मजित जीवनयौवन और वैभवपर इतना गुमान नहीं करता। मिट्टी में मिला हुआ पानी और लिप्सा से पूर्ण जीवन एक ही समान तो हैं। समय आने पर तुम्हारी लिप्सायें भी मर्जित हो जायेंगी। अभी तुम बही चलो—मार्जन की बात न करना।" मंजु ने महिम के शब्द सुने तो चोट खा बैठी। प्रत्यक्ष में हंसती हुई ही बोली, "आदि ही से ग्राम्य जीवन रहा है, प्राणनाथ ! इसी लिए निम्मजित हो। किसी शहर में जन्म लिया होता तो फिर कहते कि

मिट्टी की बात न करना"।

मंजू ने उल्टी चोट की थी। महिम क्षुब्ध हो उठा, पर फिर प्रतिघात कर उठा। बोला, "मिट्टी के प्रति तुम्हारी उपेक्षा स्वाभाविक है, प्राणेश्वरी ! शहरों की अट्टालिकाओं पर चूना और रंग रोगन लगा हुआ होता है ! कहां फिर तुम्हें मिट्टी की बनी हुई ईंटें दिखाई देंगीं जिन पर अट्टालिकाओं का अस्तित्व कायम है। जिस दिन वह चमक दमक समाप्त हो जायगी, उस दिन कहोगी कि रंग रोगन की बात न करना"।

"तब वह अट्टालिका भी न कहलायेगी—खण्डहर कहलायेगा--

खण्डहर यानि बुढ़ापा-। बुढ़ापे के प्रति कौन तृष्णा रखेगा ? मिट्टी खण्डहर-बुढ़ापा-। तब तो यही कहूँगी कि-जीवन की बात न करना।"

"यानि अन्त ? तुम जीना पसन्द नहीं करोगी ?"

"खण्डहर का वास भी कोई जीना है ? मृत्यु का आलिंगन लूंगी। सन्तोष तो रहेगा कि जितना जीवित रही अट्टालिका में रहीं मिट्टी से दूर।"

"लेकिन क्या अन्त सम्भव होगा ? जन्म और मरण की कुंजी अभी मनुष्य के हाथ में नहीं आई।"

"तुम्हारा मतलब है कि विधाता के हाथ में है ? मनुष्यों के मध्य रहने वाला विधाता के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। उसके हस्ताक्षेप की कल्पना ही एक प्रवंचना है। मिट्टी में रहने वाले क्या सोचते हैं--यह वह जाने।"

मनोहर पति पत्नी के बीच चल रहे व्यंग और संघात-प्रतिघात से पूर्ण वाद विवाद को सुन रहा था। उसे लगा कि कोई भंयकर विस्फोट होने वाला था। भय से उसने गर्दन नीचे कर दी।

मंजु उत्तेजित थी और महिम विचारमग्न।

कुछ देर सब मौन रहे। फिर मनोहर ही उस मौन को भंग करने के उद्देश्य से महिम को संबोधित करता हुआ बोला, "मैं तो आया था

तुम्हें निमंत्रण देने। पिता जी महिपुर की काया पलट कर रहे हैं। पता नहीं, कौनसी योजना कार्यान्वित होने जा रही है। छोटी मोटी मशीनें लगाई जा रही है। उत्पादन केन्द्र और कुटीर धन्धों को चालू करने की व्यवस्था हो रही है। लगता है कि महिपुर अब पुस्तकों का ज्ञान वितरण ही नहीं अपितु औद्योगिक—क्रान्ति का भी सूत्रपात करेगा।

महिपुर और उसकी कहानी सुन मंजु की उत्तेजना जाती रही। चंचल हो बोली 'तो क्या दीवान साहब अब जमींदारी छोड़ उद्योगपति बनने की सोच रहे हैं ?"

"सम्भव है, क्योंकि जमींदारी में अब कुछ नहीं रखा। तुम तो देख ही रही हो कि धड़ाधड़ जमीदारी उन्मूलन के अधिनियम पास हो रहे हैं। आखिर जनता का क्रोध अब जमींदारों पर ही तो बरसेगा। रियासतें तो समाप्त हो ही चुकी।"

महिम अभी तक विचारमग्न ही बैठा था। बोला, "लेकिन मनोहर बाबू ! ये तुम कैसे कह सकते हो कि समाजवादी अर्थ व्यवस्था में उद्योगपतियों की स्थिति सुरक्षित रहेगी ? उद्योगा की भी तो राष्ट्रीयकरण किये जाने की सम्भावना बनी हुई है। मैं तो समझता हूँ कि दीवान साहब को इस समय किसी से परामर्श लेना अनिवार्य है —किसी ऐसे व्यक्ति से जो देश के अन्दर जागृत नूतने विचार धारा का मर्मज्ञ हो"।

मनोहर ने मंजु की ओर देखा और हंस पड़ा। महिम को सम्बोधित करते हुये बोला 'पिता जी का दूर दृष्टि सर्वप्रसिद्ध है फिर भी उन्हें परामर्श देने का कष्ट आप स्वयं उठा लें तो क्या हानी है ?'

महिम को लगा कि मनोहर ने भी व्यंग्य कस दिया था। 'हां ! आचार्य तो वृद्ध हो चले हैं परामर्शदाता का स्थान वैसे भी रिक्त होने चला है।" यह मंजु के शब्द थे—जिनस मनोहर के व्यंग्य को समर्थन मिलता था।

महिम कट सा गया फिर भी संयत स्वर में हंसता हुआ मनोहर से

बोला, "धन्यवाद आप का कि तनिक संकेत पर ही आपका निमन्त्रण प्राप्त हो गया। इसे में आप की उदारता समझू या उस रिश्ते की सिफारिश जो मंजु के कारण आप के और हमारे बीच विद्यमान है ?'

मनोहर चौंक पड़ा। मंजु भी घबरा उठी। झेंप कर उसने सिर नीचे कर लिया।

मनोहर फिर अपनी स्थिति को संभालता हुआ बोला, "आपने बुरा मान लिया पर मैंने सच्चे दिल से राय दी थी"।

महिम हंसता रहा, बोला, "आपको भ्रम हुआ है कि मैंने आपकी राय का उचित सम्मान नहीं किया। आपकी राय को मंजु का समर्थन प्राप्त है फिर सन्देह की गुजाइस ही कहां रहती है। क्यो मंजु ?"

"आप विचार विमर्श में कटुता ला रहे हैं।' मंजु तनिक क्रोधित हो बोली

"गलत ! तुम्हारी विचार विमर्श की परिभाषा ही दूसरी होगी"। महिम ने उत्तर दिया

"जड़ विश्वास भ्रान्ति भी तो उत्पन्न कर सकता है" ?

'अवश्य ! इसी लिए तो कहता हूँ कि विचारों को धारणा बनने से पूर्व तर्क की कसौटी पर उतर जाना चाहिये। तुम्हारी परास्त मनोवृति स्वयँ तुम्हारे जड़ विश्वास की साक्षी हैं।'

मंजु क्रोध में तिलमिला उठी "परास्त मनोवृति मेंरी ? आपको ये भ्रम कैसे हो गया ?"

"क्योंकि तुम अपने क्रोध पर से नियन्त्रण खो वैठी हो। तुम्हारी तार्किक शक्ति जवाव दे गई है सम्भवतः इसी लिए कि तुम्हारे विचार अपरिपक्व थे—तुम्हारा विश्वास जड़ था।

मंजु तिलमिलाई हुई देखती ही रह गई। उसे कोई उत्तर न सूझा। मनोहर बीच बचाव करने के हेतु हंसता हुआ बोला, 'विक्रमादित्य के दरवार में भी सुनते हैं, ऐसी ही घठनायें घटती थी, कालीदास

ग्रौर दण्डी—दोनों का पाण्डित्य टकराता था ग्रौर एक दिन इसी टक्कर को हमेशा के लिए समाप्त करने के उद्देश्य से सरस्वती को भी घसीट लाया गया ताकि वह निर्णय करे कि कौन दोनों में से श्रेष्ठ कवि था।" मनोहर ने एक सरसरी दृष्टि महिम ग्रौर मंजु पर फेंकी मानों यह देखने के लिए कि उनके मध्य व्याप्त कटुता क्षीण हो रही थी या नहीं। दोनों को मौन ग्रौर गम्भीर देखते हुए वह बोलता गया "फिर पता है कि सरस्वती ने क्या निर्णय दिया? वह बोली 'कविर दण्डी' 'कविर दण्डी' ग्रर्थात् दण्डी ही कवि है।"

मंजु ग्रौर महिम दोनों का ध्यान मनोहर की ग्रोर केन्द्रित हो गया। मनोहर ने बोलना जारी रखा-"कालीदास सरस्वती के निर्णय पर क्षुब्ध हो उठा। वह चिल्लाया "ग्रहं किं रण्डे"—यानि मैं फिर कौन हूँ—रण्डी।' मंजु ग्रौर महिम खिलखिलाकर हंस पड़े।

मनोहर ग्रपना कथन समाप्त करते हुए बोला, "सरस्वती ने ग्रपना निर्णय दुहराया–'कालीदास! तुम तो स्वयं मेरे ग्रंश हो।' इसी प्रकार मुझे भी महसूस हो रहा है कि तुम्हारी टक्कर मेरा हस्ताक्षेप ग्रामंत्रित कर रही है—क्यों?"

मंजु ग्रौर महिम की दृष्टि टकराई ग्रौर वे दोनों मनोहर के साथ खिल खिला कर हंस पड़े। तीनों की हंसी की सम्मिलित गूंज से प्रत्यक्ष में सारी कटुता घुल गई।

मनोहर ग्रागे बात बढ़ाता हुग्रा बोला, 'महिम बाबू! चलोगे नहीं महिपुर। मेरे ग्राने का विशेष प्रयोजन यही है।"

महिम सोचते हुए बोला, "मनोहर बाबू! मंजु का कथन सच्चा हैं कि मुझे मिट्टी से प्यार हो गया है। मुझे केवल उस ढंग पर थोड़ी ग्रापत्ति है जिस ढंग से वह बात करती है।'

'छोड़ो भी न इन बातों को। जो मैंने पूछा है उसका उत्तर दो।'

'ग्रापके साथ मंजु चली जायेगी।'

मनोहर ने मंजु को देखा । दोनों की आंखों में चमक थी ।

मनोहर कृत्रिम हठ करता हुआ बोला, 'यह नहीं होगा। आपको तो…'
मनोहर बाबू मैंने कह दिया है मुझे क्षमा करो । बीच ही में महिम बोला,

मनोहर ने फिर ज्यादा आग्रह नहीं किया । उसकी कार वापिस देहरादून की सड़क पर धूल उड़ाती हुई दौड़ गई । साथ में मंजु थी जो कुछ दूर तक तो पिछली सीट पर बैठी रही पर फिर मनोहर की बगल में म आकर अगली सीट पर बैठ गई । मनोहर प्रसन्न था । बोला 'सचमुच ही यदि महिम कहीं मेरे अभिनीत आग्रह पर आने को तैयार हो जाता, तो मजा किर किरा पड़ जाता !'

मॅंजु ने भवें टेढ़ी कर कृत्रिम गुस्से से मनोहर की ओर देखा और फिर गर्दन झुकाकर मुस्कराने लगी ।

मनोहर बोला, 'तुम्हारा महिम तो अजीब सा फूहड़ व्यक्ति लगा । जरा भी मिलनसार नहीं है । बात बात में मान अपमान देखता है । न मालूस कैसी कटेगी तुम्हारी उसके साथ ?'

मंजु चुप थी ।

मनोहर कृत्रिम रूप से तनिक और गम्भींर हो बोला, 'तुमने जरा धैर्य और संयम से काम नहीं लिया, वरना मैं पिता जी को मना ही लेता । आज मुझे अपनी स्थिति यूँ चोर की सी न लगती अर्जब विडम्बना है कि सब कुछ अपना होते हुए भी पराया है ।'

मंजु दर्द से चीख उठी, बन्द करो ये बातें ।

मनोहर कृत्रिम आवेग में बोला, 'बन्द कैसे करू मंजु ? आज तुम्हें अपने साथ लाने में मुझे भिखारीं बन कर महिम की दया का मुहताज बनना पड़ा। जीवन में यह मेरी पहली पराजय थी और अब लगता है कि तुम्हारे कारण शेष जीवन पराजयों का संकलन ही रह जायेगा । विजय छल सी बन जायेगी ।',

मंजु ने मनोहर की ओर देखा तो मनोहर को लगा कि उसकी आँखों के कोर में आँसू छुपे हुए थे ।

मनोहर ने उसकी भावुकता को और उभारना चाहा। वह रोने का सा मुंह बनाते हुए बोला, 'न जाने कितने अरमान लेकर तुम्हारे पास आता हूँ—यही सोचकर कि अन्दर की सारी टीस निकाल कर तुम्हें खूब कोसूंगा। पर जब तुमसे मिलता हूं तो महिम साथ होता है, तब आभास होता है कि तुम तो महिम की पत्नी बन चुकी हो! अब तुम पर रूठने का मेरा अधिकार ही कितना रहा? बताओ क्या दशा होती होगी मेरी, कुछ अनुमान लगा सकते हो?'

मंजु की आँखोंके कोर में बन्द आँसू टप-टप कर गालों पर बह गयें और वह मनोहर के कन्धे पर लुढ़क पड़ी। हल्की सिसकियाँ लेती हुई बोली, 'न करो, मनोहर बाबू! यह बातें (तुम मुझे पागल बना दोगे) मैं वह मछली हूं जो बालू की गर्म परतों पर लेटी हुई तड़पती रहती है। समाज का विधान और लोकलाज मुझे आजीवन इस यंत्रणा को सहन करने को बाध्य कर चुके हैं। मैं तड़पती ही रहूँगी। तुम आते हो तो एक ठण्डी सी बयार का अनुभव करती हूँ—एक शीतल सा लेप। मत यूं मृत्यु के गहन अन्धकार में जीवन की दामनी दमकाओ, वरना जानते हो मछली हूं, उछलना जानती हूँ। कभी जोर की उछाल मार कर वापिस सागर के अंक में समा जाउँगी। समाज का विधान रेत के टीले, मेरी उछाल से टूक टूक होकर गिर पडेंगे—!'

मनोहर ने गाड़ी रोक ली और कसकर मंजु को छाती से लगा लिया। कुछ मिनटों तक मौन हो दोनों उसी स्थिति में रहे।

गाड़ी फिर चल पड़ी—सड़क पर फिसलती हुई सी, दायें बायें सब पीछे छोड़ती हुई।

मंजु बोली, 'तुमने पूरी बात नहीं सुनाई। क्या हो रहा महिपुर में?'

'मैंने कहा तो मंजु कि इमारतें बन रही हैं–कई कक्ष। न जाने कितने छोटे २ कुटीर उद्योग स्थापित किये जायेंगे सुना है कई सौ सिलाई की मशीनें, कई खड्डियां, लकड़ीं चीरने की छोटी मोटी मशीनें आदि मंगवाई

गई है। न जाने कितने शिल्प आरम्भ करने की तैयारियां हो रही हैं। अब तो महिपुर छोटा विश्वविद्यालय ही नहीं एक भरपूर उद्योग स्थली बन जायेगा।'

मंजु चुप हो गई। विचार मग्न सी वह कुछ देर सोचती रही। मनोहर गाड़ी चलाता रहा।

'आह! कितने अच्छे थे वे दिन, जब मैं महिपुर में छात्रा थी। हंसना खेलना, शाम को चन्द्रभागा के छट तक हवाखोरी कर आना। न कोई कुण्ठा थी और न जलन!' मंजु दीर्घ सांस लेती हुई बोली!

'तुम्हीं ने तो जल्दी की विद्यालय छोड़ने की। जो दिन मजे में बीत जायें, वही अच्छे। मैं तो यही विश्वास लेकर चलता हूँ।'

'मनोहर बाबू! यूं तुलना नहीं किया करते। परिस्थितियां सबकी एक जैसी नहीं होती।'

'अब तो मंजु! आचार्य भी न रहे।' मनोहर ने फिर बात बदली।

'वह कहाँ चले गये?'

'क्या पता। तुम्हारे व्याह के कुछ दिन बाद ही पिता जी उन्हें एक दिन अपने साथ देहरादून लाये थे। उसके बाद वह दिखाई नहीं दिये।'

'दीवान साहब के साथ कुछ कही सुनी तो नहीं हो गई? क्यों कि दोनों समान रूप से दम्भी हैं। आचार्य बोलेंगे तो लगता है, बिगुल बज रहा है और दीवान साहब बातें करेंगे तो लगता है, कोई सिंह दहाड़ रहा है।'

'ठीक है पर तुम ने देखा होगा मंजु कि तीव्र मतभेद भी उन्हें अलग नहीं करता। एक विचारक है और दूसरा कर्मवीर। एक सोचता है, योजनायें बनाता है और दूसरा उन योजनाओं को कार्यरूप देता है। महिपुर का विकास आचार्य के चिन्तन और पिता जी के श्रम का ही तो प्रतीक है। वे अलग नहीं होंगे, मंजु, कभी नहीं।'

'तो फिर आचार्य हैं कहां? क्या इस नवीन परिवर्तन में उनके चिन्तन का योग नहीं है?'

'क्या बताऊं, है या नहीं।'

'लेकिन आचार्य विचारक है। विद्यालय की स्थापना उनकी योजना का अंश तो हो सकती है पर उद्योग धन्धों की स्थापना का औचित्य मेरी समझ में नहीं आया। मुझे तो लगता है कि दोनों में टक्कर हुई है और उसी के परिणाम स्वरूप यह परिवर्तन देखने को मिल रहा है—'

मनोहर ने कोई उत्तर नहीं दिया। सोचता हुआ कुछ देर बाद बोला, 'तुम्हारे महिम के सम्बन्ध में भी तो मुझे एक गुप्त भेद का पता चला है।'

मंजु चौंक पड़ी, 'गुप्त भेद ? महिम के सम्बन्ध में ?'

मनोहर रहस्यमय हंसी हँसता हुआ बोला, 'हां।'

'क्या ?'

'छोड़ो, तुम्हें अधिक दुखी क्यों करूं ?'

मंजु अधीर हो उठी, बोली, 'स्वयं ही तो आपने बात निकाली। अब उसे छुपाकर मेरा दुख बढ़ाओगे ?'

मनोहर कुछ ऐसा अभिनय करने लग गया मानो उसे बोलने में संकोच हो रहा हो।

मंजु बोली, 'तुम्हें संकोच क्यों हो रहा है ?'

'मंजु ! बात ही कुछ ऐसी है। महिम शादी से पूर्व एक वैश्या से प्रेम करता था।'

मंजु ने सुना तो ऐसा मुंह बना लिया मानों उसे विश्वास ही नहीं हुआ।

मनोहर बोला, 'तुम्हारे ब्याह के पश्चात जब मैं वापिस देहरादून लौट रहा था तो रास्ते में उससे मुलाकात हो गई। उसकी बातों से सब पता लग गया कि उसके और महिम के बीच क्या संबन्ध थे ?'

''क्या संबन्ध थे ?''

''वह बासना तृप्ती के लिए उसके कोठे पर जाता था। उसके साथ प्रेम का झूठा अभिनय भी करता था।''

"तुम्हें वह यह सब कैसे बता गई ?'

"जख्म की पीड़ा अन्दर का सब भेद खोल देती हैं वरना दर्द हल्का कैसे हो ?"

"तुम उसे पहचान सकते हो ?–बोलो, यदि मिल जाए तो पहचान लोगे ?"

मनोहर कांप गया। उसका चेहरा अचानक स्याह पड़ गया, मानों दूसरों के लिए गढ़ा खोदते २ वह स्वयं गढ़े में गिर पड़ा। पर शीघ्र ही उसने अपने को संयत किया और उसी मुद्रा में बोला "कुछ क्षण ही तो मैंने उससे बात की। कैसे सम्भव हो सकता है उसे पहचानना ? लेकिन तुम ऐसा प्रश्न क्यों कर बैठी ?"

मंजु दाँत काटती हुई क्रोध में बोली, 'मैं महिम के मुंह पर फिर एक जोर का तमाचा मारती। सौ २ चूहे खाकर अब बिल्ली हज को चली। वैश्या पर यौवन का नशा उतार कर वह साधुओं जैसी बातें करता है। मैं हंसती हूँ, अंगड़ाई लेती हूँ. तो मुझे उच्छृखल होने की संज्ञा देता है। इतना घमण्ड और इतना मान ? मैं उसके घमण्ड को चूर २ करके रख देती।"

मनोहर मंजु के यूं क्रोधित होने पर अन्दर ही अन्दर प्रसन्न हुआ पर प्रत्यक्ष में बेचैनी प्रकट करता हुआ बोला, 'मंजु तुम्हारा विद्रोह तुम्हारी मानसिक अशांति को बढ़ायेगा ही तो ?"

"विद्रोह अशांति को समाप्त भी करता है' मनोहर बाबू ! फोड़ा अन्दर से पकता रहता है तो कितना दर्द करता है। पर उस पर नश्तर का वार कर दो तो सारा मवाद बाहर निकल जाता है–सारा दर्द शाँत हो जाता है। मैं चाहती हूं कि मेरे मन का मवाद भी बाहर निकल आये। यदि उस वैश्या को कहीं तुम पहचान जाते तो मैं समझती कि मेरे हाथ में भी नश्तर आ गया है।"

गाड़ी देहरादून पहुंच गयी थी।

मनोहर बोला, 'महिपुर चलने का इरादा है, या फिर कभी और ?'

'हाँ, आज 'मूड' बिगड़ गया है। ऐसी कुण्ठा लेकर क्यों वहां का वातावरण भी दूषित करूँ। महिपुर मेरे अरमानों का गढ़ है। वहां मेरे कण्ठ को स्वर मिला है—शरीर को आत्मा मिली है। मेरे विचार और कल्पना शक्ति प्रखर हुई है। क्यों आज यूँ मलिन मुख लेकर वहां जाऊँ, क्योंकि फिर जिसे पता भी न हो, अब भी जान जाए कि जो कुछ संचय और संग्रह मैंने महिपुर में किया, आज वह सब कुछ लुटा बैठी—संभाल न सकी।"

मनोहर चुप रहा। पर फिर मुस्कराता हुआ व्यंग्य से बोला, 'उस 'सब कुछ' की सूचि में क्या मेरा नाम भी आता है ? मेरा प्रेम भी तो महिपुर की ही देन है—चन्द्रभागा का तट।"

मंजु ने तीखी नजरों से मनोहर की ओर देखा और लम्बी सांस लेती हुई बोली, 'तुम्हें भी तो खो बैठी –'

'तो फिर यूं ही मेरे साथ भाग आई हो ?' मनोहर छेड़ता हुआ बोला। मंजु हंस पड़ी, बोली, 'तुम्हें केवल मजाक सूझता है—जब देखो तब तजाक।'

लेकिन यदि मैं सचमुच ही तुम्हें भगाकर लेजाऊं 'तब तो मजाक न रहेगा" ? मनोहर की मुखाकृति में मन का संकल्प कुछ झलक उठा। मंजु ने उस मुखाकृति को देखा तो वह कुछ न समझी। बोली, 'अब ज्यादा छेड़ोगे तो साथ छोड़ दूंगी। चलो पिक्चर देख आयें।' मनोहर ने तीक्ष्ण दृष्टि मंजु पर डाली और कार को एक थियेटर के सामने लाकर खड़ा कर दिया। टिकिट लेकर दोनों हाल में प्रवेश कर गए।

———

६

आश्रम के तीनों ओर घना जंगल है जिसमें लम्बे लम्बे पेड़ सिर उठाये हुये कभी २ हवा के चलने पर सां २ की सी ध्वनी पैदा करते रहते हैं। नीचे कुछ ही दूर पर गंगा जी बह रही है - सम—न कोई तरंग न कोई स्वर। नीला स्वच्छ जल जिस पर कभी २ लकड़ी की छोटी २ नावें तैरती हुई दिखाई देती हैं। उसके उत्तर पश्चिम और पूर्व में ऊँचे २ पहाड़ और दक्षिण में एक छोटा सा नगर है जो रात को बिजली के प्रकाश से जगमगा उठता है। सामने गंगा के दूसरे तट पर ४०–५० छोटे २ सफेद मकान और उत्तर की ओर कुछ दूरी पर गंगा जी पर बना हुआ लकड़ी का एक पुल है जो इस पार से उस पार जाते हुये यात्रियों के चलने पर हिल उठता है, मानो पुल नहीं, झूला हो। वातावरण एकदम शान्त और नीरव है। दिन को हल्की धूप और रात को तीव्र ठण्ड। सुबह और शाम—कोहरे की हल्की सी चादर फैली हुई रहती है, जिससे वातावरण और शान्त अनुभव होता है। प्रातः भोर होते ही मन्दिरों में घण्टियों की आवाज और पूजा अर्चना का स्वर और इसी प्रकार सन्ध्या को शंख ध्वनी सुनाई देती है। कुल मिला कर ५०–६० सफेद चूने के पुते हुए मन्दिर, धर्मशालायें, आश्रम और

कुटी हैं। इस नगर में स्वर्ग आश्रम सचमुच ही धरती पर स्वर्ग है।

ऋषिकेष से ३ मील उत्तर को गंगा के दायें तट पर वसा हुआ 'स्वर्ग आश्रम' सचमुच ही पृथ्वी पर स्वर्ग की प्रच्छन्न शान्ति प्रदान करता हैं। बद्रीनारायण धाम का मुख्य द्वार, जहां केवल साधु और अहात्मा ही वास करते हैं, या फिर संस्कृत और ज्योतिष का अध्ययन करने के उद्देश्य से आए हुए दरिद्र और दीन छात्र, सर्दियों में भी जिनके पैरों पर लकड़ी के खड़ाऊं, शरीर पर मोटी पांच हाथ की धोती और एक मोटे खद्दर का कुर्त्ता होता है। सिर उस्तरे से साफ—केवल एक लम्बी मोटी शिखा। प्रातः अन्धकार दूर होने से पूर्व ही छात्रों का समूह गंगा के पावन, काटते हुये शीतल जल में स्नान करता है। यह नित्य नियम है, जिस में कभी ढील नहीं होती, क्योंकि यह आश्रम का विधान है जहां छात्रों के निःशुल्क शिक्षा, भोजन और वस्त्र की व्यवस्था रहती है।

स्वर्ग आश्रम—पावन स्थल। इसी के एक छोर पर एक छोटा सा कलात्मक ढ़ंग पर बना हुआ निवास है। सादगी से भरपूर पर साथ ही वैभव से युक्त। आँगन में हरी हरी बेल—तुलसी और फूलों के गमले और अन्दर एक कमरे में ऊंची सी पलंग और उस पर विछा हुआ मोटा सा गद्दा, फर्श पर पटसन के कालीन एक आध मेज और पंक्ति में लगाई हुई कुर्सियां। लकड़ी के रैकों पर सैंकड़ों पुस्तकें रखी हुई हैं। एक और कमरा भी है जो ठीक उसी तरह सजा हुआ है—केवल मेज और कुर्सियों के स्थान पर शीतलपाटी बिछी हुई है, जिस पर सर्दियों के दिनों में ऊनी गर्म कालीन बिछाए जाते हैं। पुस्तकों का एक बड़ा सा रैक इस कमरे में भी देखने को मिलता है। साथ में समाचार पत्र भी—हिन्दी उर्दू और अंग्रेजी के। पलंग के स्थान पर लकड़ी का तख्त बिछा हुआ है, जिस पर नीचे गद्दा और और ऊ र खादी की सफेद चादर बिछी हुई है।

प्रातः का समय। बाहर का अभी धूप और कोहरे में संघर्ष चल

रहा है। एक प्रौढ़ व्यक्ति धोती कुर्ता और चद्दर ओढ़े कालीन पर बैठे हुए समाचार पत्रों के अध्ययन में तल्लीन हैं। कलाई पर घड़ी बंधी हुई है। सहसा घड़ी की ओर देख कर पुकार उठते हैं, 'मीनाक्षी !'

कोई उत्तर नहीं आता तो फिर एक और स्वर कमरे में गूंज उठता है, 'मीनाक्षी नौटियाल।'

तत्काल ही मीनाक्षी प्रवेश करती है तो उससे प्रश्न किया जाता है, 'आठ बज चुके हैं। मृणाल को समय का ध्यान नहीं रहा। उसके अध्ययन का समय हो चुका है, उसे विलम्ब का आभास करा दो।'

मीनाक्षी की दृष्टि फर्श पर जा टिकी। संकोच और लज्जा में बोली, 'देवी विश्राम कर रही है, आचार्य !'

'विश्राम ? अध्ययन की उपेक्षा कर असामयिक विश्राम ?'

मीनाक्षी का स्वर और हल्का पड़ गया, 'कुछ दिनों का विश्राम आचार्य ! प्रकृति द्वारा निश्चित।'

'ओह, समझा' आचार्य की दृष्टि झुक कर फिर समाचार पत्रों पर स्थिर हो गई।

मीनाक्षी जाने लगी तो आचार्य बोले, 'रुको मीनाक्षी। सामने बैठ जाओ।'

मीनाक्षी आचार्य के पास कालीन पर आ कर बैठ गई तो आचार्य बोले, 'मृणाल स्वस्थ चित तो रहती है, मीनाक्षी ?'

'उसे अभाव ही कौन सा है, आचार्य ?'

'मेरा संकेत उनकी मानसिक दशा से है।'

मीनाक्षी कुछ रुक कर बोली, 'उनकी तो काया ही पलट गई है। लगता है, मुन्नवर मर चुकी है, आचार्य ! एक परिष्कृत व्यक्तित्व पनप कर मृणाल में साक्षात हो उठा है—बिल्कुल स्वस्थ, शांत गम्भीर और मृदुल—ठीक आपकी कल्पना के अनुकूल।'

लेकिन इस छोटी सी अवधि में ही ? दो वर्ष ही तो वह मेरे संर-

क्षण में रही है। दो वर्षों में ही क्या उसके पिछले संस्कार मार्जित हो चुके ? तुम उसकी सखी हो, उसकी रुचियों का, प्रकृति का, उसके स्वभाव का और मानसिक स्तर का सही अनुमान लगा सकती हो।'

'आचार्य सम्भवतः मेरी भी परीक्षा ले रहे हैं ? मीनाक्षी मुस्कराई।

'क्यों ?'

'क्योंकि आचार्य स्वयं अपनी क्षमता से अपरिचित नहीं। मुझे परीक्षिका की प्रतिष्ठा प्रदान कर, क्या आचार्य मेरी ही परीक्षा नहीं ले रहे हैं ?'

'तुम्हें भ्रम हो गया है, मीनाक्षी ! मृणाल मुझे श्रद्धेय मान कर मुझ से खुल कर बात नहीं कर सकती। वह अभी युवती है—उसका मुझ से कई बातों में संकोच करना स्वाभाविक है। तुम दोनों सम वयस्का हो और साथ ही सखी। इसी लिये मुझ से अधिक तुम्हें ही उसकी परख हो सकती है।'

मृणाल इतनी परिष्कृत हो चुकी है आचार्य कि मुझे स्वयं कभी २ ऐसा लगता है कि मैं उसके सामने नादान सी बच्ची हूँ। खुल कर कभी हँसी मजाक करतीं हूँ तो उसका व्यक्तित्व मुझे परास्त कर देता है। उसकी निमज्जित हँसी, परिष्कृत रुचि, मर्यादा की सीमाओं के अन्दर ठट्ठा विनोद और लिप्साहीन विचार मुझे स्वयं कभी कभी इतने आश्चर्य में डाल देते हैं कि सोचती हूँ उसमें इतना बड़ा परिवर्तन कैसे आ गया ? फिर सोचती हूं कि आचार्य की शिष्या है। पशु भी होता तो वह भी चमक उठता। मृणाल तो आखिर मनुष्य है—चमकेगी क्यों नहीं।'

आचार्य के मुख पर सन्तोष के भाव थे।

वह बोले, 'मृणाल के अन्दर चाहे सँस्कार न रहे हों, पर भाव अवश्य थे। आखिर मृदुला की ही कोख से तो उसका जन्म हुआ। बुद्धि की कुशाग्रता और विचारों की तरलता ही उसे आज इस रूप में ले

आई। मैंने उसके अन्दर केवल संस्कार ही भरे हैं–भावनायें उसकी जागृत थीं। मैंने उसके विचारों को मोड़ दिये हैं, उसके अन्दर तर्क और कल्पना शक्ति पहले से ही थी। संगति और वातावरण का प्रभाव ही केवल उस पर पड़ा है।'

'लेकिन जो अपरिचित ज्ञान वह संचय कर गई है, उसका श्रेय आचार्य ?'

'उसकी संचय शक्ति को, मीनाक्षी ! मेघ बरसता है लेकिन उसके जल का संचय केवल वे ही क्यारियां कर पाती हैं जो भीत रखती हैं— उसके जल को वे सरितायें ही पचा पाती हैं जो गहरी होती है। बिना भीत की क्यारियों में जल नहीं रहता, कम गहरी नदियों में बाढ़ आ जाती है। इसे ही तो गुण-ग्राह्य कहते हैं। मृणाल में गुण ग्राह्य पर्याप्त है।'

मीनाक्षी नौटियाल मौन हो चली और आचार्य भी फिर समाचार पत्रों के पृष्ठ उलटने लगे।

मीनाक्षी ने फिर उनका ध्यान भंग किया, बोली, 'आचार्य ! मृणाल की शिक्षा दीक्षा कब तक चलेगी ? प्राचीन साहित्य, इतिहास, स्मृतियां और साँख्य का तो वह अच्छा ज्ञान प्राप्त कर चुकी है। किसी भी विषय पर बात करो तो ऐसी तर्कयुक्त शैली में विवेचना प्रस्तुत करती है कि लगता है, मृणाल नहीं, स्वयं आचार्य बोल रहे हैं। आगे भी क्या उसे अध्ययन करना है ?'

आचार्य हँस पड़े। बोले, 'मीनाक्षी ! तुम बहुत भोली हो। शिक्षा से तुम क्या तात्पर्य रखती हो—पुस्तकों की संख्या ? उन्हें पढ़ जाना ?' नहीं मीनाक्षी ! शिक्षा तो वह अतुल ज्ञान भण्डार है जिसे हजारों वर्षों के परीक्षण और अनुसन्धान, खोज और मनन के पश्चात् मानव जाति अर्जित कर पाई है। वह भण्डार इतना विशाल है कि पृथ्वी का अन्त मिल जाएगा, पर उसका अन्त नहीं मिलेगा। मृणाल यदि सहस्त्रों वर्ष

तक भी अपनी तपस्या को चालू रखें, तब भी वह अपने को किसी एक छोर पर ही पाएगी। यह अनन्त साधना है, मीनाक्षी !'

मीनाक्षी कुछ खीझे हुये स्वर में बोली, 'आचार्य ! तो क्या अब मृणाल आयु पर्यन्त तपस्वनी बन कर ही इस अनन्त पथ पर चलती रहेगी ?—इसी आश्रम में ?'

आचार्य हंस पड़े। मीनाक्षी के मन के भावों को ताड़ते हुवे बोले, 'घबराओ नहीं मीनाक्षी ! मृणाल के साथ तुम भी कुछ समय बाद मुक्त कर दी जाओगी। मृणाल इस समय पुस्तकों से ज्ञानार्जन कर रही है, बाद में वह कार्यक्षेत्र में पदार्पण कर स्वयं अपने अनुभवों में वृद्धि करेगी। तब मेरे स्थान पर वाह्य जगत के क्रिया कलाप और व्यवहारों से उसे शिक्षा लेनी होगी। वह स्वयं ही शिक्षिका होगी और स्वयं ही शिष्या।

'लेकिन कब ? आचार्यं।'

'बस, थोड़ी सी अवधि बाकी रह गई है।'

'उसका कार्यक्रम क्या होगा ?'

'यह वह स्वयँ निश्चित करेगी।'

'शिक्षिका ?'

'यदि उसकी रुचि इसी में हो तो शिक्षिका भी बन सकती है।'

'आखिर आपने भी तो उसकी रुचि की परख लीहोगी ?,

'उसका पिछला जीवन अति भयंकर रहा है जहां वह विनाश ही विनाश देखती रही। मेरा अनुमान है कि वह उस पथ का अनुसरण करेगी जहां सृजन ही सृजन हो।'

'आख़िर वह पथ कौन सा हो सकता है, आचार्य ? यदि आपने मार्ग प्रदर्शन न किया तो क्या यह सम्भव नहीं कि ज्ञानोपार्जन कर भी वह भ्रान्त ही रहेगी ?'

आचार्य फिर हंस पड़े।

'तुम, मीनाक्षी ! बहुत चतुर और कुशाग्र बुद्धि रखती हो। घबराओ नहीं। मृणाल के कार्यक्रम की पृष्ठभूमि का निर्माण हो रहा है। दीवान महिधर वह सब कुछ करेंगे जो एक पिता पुत्री के लिए करता है। अब तुम जाओ।'

मीनाक्षी चली गई तो आचार्य मन ही मन में हंसते गए। आंखें मूंद कर उन्होंने दीवान महिधर से सुनी हुई मृणाल की जीवनी पर एक विहंगम दृष्टि डाली और फिर सोचते २ उनकी आंखों में कुछ अश्रुकण छलक आए। शायद वे करुणा और सन्तोष के अश्रु थे।

उनके अधरों से एक धीमा स्वर निकला, 'मृदुला ! तुम मेरी केवल भावनाओं की प्रतिमूर्ति थी, इसीलिए केवल विचारों तक ही तुम्हारा व्यक्तित्व सीमित था। मृणाल ने मेरे भाव और महिधर की कर्मठ शक्ति ग्रहण की है। वह पूर्ण व्यवहारिक व्यक्तित्व लेकर जीवन के रंगमंच पर आने वाली है। तुम्हारी आत्मा शान्त हो।'

— --- —

१०

बसन्त ऋतु की एक प्रभात को मृणाल गंगा जी में स्नान कर वापिस आश्रम को लौट रही थी तो मार्ग में एक खरगोश का बच्चा उछलता कूदता हुआ मिला। चुपके से उसने उसे पकड़ लिया और गोद में उठाकर आश्रम में ले आई।

'मीनाक्षी ! देख तो, मैं क्या लाई हूं, आश्रम के आंगन में पहुंचते ही वह प्रसन्न स्वर में चिल्ला उठी।'

मीनाक्षी ने मृणाल के शब्द सुने तो चौके से उठकर आँगन में चली आई। मृणाल की गोद में धवल रंग का प्यारा सा खरगोश का बच्चा देखा तो मचल कर आगे बढ़ी और मृणाल से उसे छीन कर पुचकारने लगी। मृणाल की ममता भरी दृष्टि खरगोश के बच्चे पर टिकी हुई थी। मीनाक्षी कभी उसे गले से लगाने लगी तो कभी उस पर चुम्बनों की बोछार करने लगी।

'कितना प्यारा है। सुबह-सुबह कहां से उठा लाई ?' मीनाक्षी ने पूछा।

'मार्ग में ही पड़ा उछल रहा था। ला मुझे भी दे। मैं भी तो प्यार कर लूं। मैं तो अभी उसे प्यार भी नहीं कर पाई। आंखें तो

देखो—कितनी बड़ी हैं। और बाल भी, लगते हैं जैसे रेशम के हों।'

मृणाल उस खरगोश के बच्चे को लेने आगे को झुकी तो मीनाक्षी पीछे हटते हुए बोली, 'बस ! यह मेरा हो गया है। इसे अब तुम्हें नहीं दूँगी।'

मृणाल कृत्रिम गुस्से में बोली, 'अरी दे भी। मैंने क्या पाया इसे उठा कर लाने में ?'

मीनाक्षी मुड़ी और भागते हुये चौके में चली गई।

मृणाल भी दौड़ती हुई मीनाक्षी का पीछा कर चौके में आई और खरगोश के बच्चे पर झपटते हुये उसी कृत्रिम गुस्से के स्वर में बोली, 'तू बड़ी वैसी है—मीनाक्षी। सच मुच ही बच्चे पर एकमात्र अधिकार कर बैठी है।'

मीनाक्षी ने फिर भी बच्चा नहीं दिया। 'दीदी ! शैशव पर ममत्व रखना प्यार की दूसरी सीढ़ी है। पहला प्यार यौवन से और फिर दूसरा प्यार शैशव से। यही क्रम है। समझी ?' मीनाक्षी मुस्करा उठी। मृणाल मीनाक्षी की मुस्कान में छुपे हुये व्यंग्य को ताड़ गई। लज्जा से तनिक उसकी आंखों की भौं नीचे को झुक गई। पर फिर तत्काल संयत हो कृत्रिम गम्भीर स्वर में बोली, 'नौटियाल ! आचार्य से तुम्हारी शिकायत करनी पड़ेगी। तुम दिन प्रतिदिन उच्छृंखल होती जा रही हो। ला खरगोश का बच्चा मुझे दे।' कहती हुई फिर मृणाल आगे को बढ़ी।'

'त् त् त् ऐसा गुस्सा न दिखाना दीदी, वरना मुझे भी आचार्य से शिकायत करनी होगी कि दीदी मुझे जलाती है।'

'तुझे जलाती हूँ ?'

मीनाक्षी ने खरगोश का बच्चा मृणाल के सुपुर्द किया और दूसरे कमरे से शीशा लाकर मृणाल को देती हुई बोली, 'लो अपना रूप देख लो पहले, फिर तुम स्वयं मेरे कथन की पुष्टि करोगी।'

मृणाल कुछ न समझी। खोखली निगाहों से शीशे पर अपना प्रतिबिम्ब देख कर मीनाक्षी से बोली, 'नौटियाल ! तुझे क्या हो गया है ? मैं तेरा मन्तव्य नहीं समझी।'

मीनाक्षी आंखों से अधरों को भींचते हुये हंस रही थी। हंसते हुये ही बोली, 'होता है कभी ऐसा भी। हनुमान बहुत बली थे पर उन्हें अपने बल का विश्वास उसके आभास कराये जाने पर होता था। तुम्हारे छलनी रूप का भी मैंने तुम्हें आभास करा दिया है। गुस्से में सौंदर्य द्विगुणित हो जाता है। जलूंगी नहीं तुम्हारे सौंदर्य से तो और क्या करूंगी ?' मीनाक्षी की हंसी मुक्त हो चली। मृणाल ने मीनाक्षी की बात सुनी तो तत्क्षण कुछ न बोल पाई। उसकी दृष्टि फिर नीचे को झुक गई। उसकी आंखों में लज्जा और अधरों पर हल्की सी मुस्कान थी। दृष्टि ऊपर कर वह मीनाक्षी को संबोधित करती हुई बोली, 'शब्दों की इतनी लम्बी चौड़ी परिक्रमा, नौटियाल ? मुझे यह अभिनय बिल्कुल पसन्द नहीं—इतना याद रखना।'

'याद रखूंगी दीदी। पर पहले स्वयं अपने को तोल लो। अभिनेत्री को अभिनय पसन्द नहीं।'

'मीनाक्षी ! मैं अभिनय नहीं कर रही। सच ही कहती हूं कि तुम्हारी छेड़ छाड़ मुझे पसन्द नहीं।'

'तो फिर क्या आचार्य का अनुमान गलत था ?'

'आचार्य का अनुमान ? क्या कहते थे आचार्य ?' मृणाल गम्भीर हो उठी। मीनाक्षी भी गम्भीर स्वर में बोली, 'कहते थे कि समवयस्का होने के नाते तुम मुझ से कई बातों में संकोच नहीं करोगी। कई बातों से उनका तात्पर्य सम्भवतः यौवन सम्बन्धी बातों से ही रहा होगा। लेकिन उनका अनुमान झूठा ही तो निकला, वरना फिर तुम ही अभिनय कर रही हो'

मृणाल मीनाक्षी के शब्दों पर विचार सा करने लग गई। कुछ

क्षण वाद हंसते हुए उसने एक हल्की सी चपत मीनाक्षी के गालों पर लगाई और दूसरे कमरे में आ गई।

जाते हुए, मीनाक्षीं को उसके शब्द सुनाइ दिये 'नट-खट--चपल कहीं की।' वह मृणाल के पीछे भागी तो देखा मृणाल आचार्य से बातें कर रही थी।' मीनाक्षी के साथ बद्रीनाथ केदार नाथ की यात्रा करलूं, आचार्य ! काफी दिनों से यह इच्छा बलवति होती जा रही है। ग्रीष्म ऋतु हीं इस यात्रा के लिए उपयुक्त समय समझा जाता है!' मृणाल का प्रस्ताव था यह।

मीनाक्षी भी आकर पास ही में खड़ी हो गई।

आचार्य हंसते हुए बोले, 'इस प्रस्ताव में मीनाक्षी का षडयन्त्र तो नहीं है, मृणाल ?'

'मीनाक्षी का षडयन्त्र ? आपका तात्पर्य, आचार्य ?'

'मीनाक्षी को सम्भवतः अपनी जन्मभूमि के दर्शन करने की इच्छा हो।'

'तब मैं स्वयं भी जा सकती हूं आचार्य ! इसमें बन्धन ही कौन सा है।' मीनाक्षी बोली।

'फिर मैं मृणाल के प्रस्ताव को नहीं समझा।' आचार्य के शब्द थे।

'तीर्थ यात्रा का प्रस्ताव क्या अनुचित हैं ?' मृणाल ने सशंकित हो पूछा।

'अनुचित नहीं, असामयिक है ! तुम जीवन की उस सीढ़ी में हो जहां सतत् कर्म निर्धारित हैं। यात्रा वानप्रस्थियों के लिये होती हैं, बेटा !' मृणाल भूल महसूस करती हुई बोली, 'पर्यटन से तात्पर्य था मेरा, आचार्य !'

आचार्य कुछ क्षणों तक सोचते रहे और फिर बोले, 'पर्यटन के भी दो उद्देश्य होते हैं; एक ज्ञान वृद्धि और दूसरा मनोरंजन ! तुम्हारा इस प्रस्ताव में कौन सा उद्देश्य निहित है ?'

मृणाल आचार्य की पैनी दृष्टि से घबराकर सोचने लगी पर उसे अपना प्रस्ताव कहीं भी अनुचित नहीं लगा। वह बोली, 'यदि दोनों उद्देश्य भी हों तो प्रस्ताव अनुचित कहाँ है, आचार्य ?'

मृणाल के स्वर में आत्मविश्वास था। आचार्य ने उसे लक्ष्य किया और फिर सोचते हुये कमरे में टहलने लगे। मृणाल और मीनाक्षी खड़ी खड़ी आचार्य के असमंजस को समझने की चेष्टा कर रहीं थी। आखिर उन्हें आचार्य का उत्तर मिल गया।

'एक सप्ताह उपरान्त तुम्हारा प्रस्थान सम्भव होगा, मृणाल ! मैं उचित व्यवस्था के लिए दीवान साहब से अनुरोध करूंगा।'

मृणाल और मीनाक्षी दोनों अपने कमरे में आ गईं।

मीनाक्षी बोली, 'दीदी तुम आचार्य के असमंजस को समझीं ?'

मृणाल की आंखों की पलकें नीचे को झुक गईं। धीमे स्वर में बोली, 'सम्भवतः उन्होंने मेरी आयु का विचार किया हो। स्वतन्त्रता की सीमायें अवस्था के अनुसार ही निर्धारित की जाती है। अतः उनका संकोच उचित ही था।' मीनाक्षी तरंगित हो उठी। हंसी में बोली, 'सौंदर्य स्वय एक समस्या है—बहुत ही बड़ी उलझन। वह सभी का प्रिय है पर साथ ही उसके भय से ऋषि मुनि भी निर्मुक्त नहीं हैं।'

मृणाल ने मीनाक्षी के शब्दों को सुना तो उसका अन्तर भी तरंगित हो उठा। एक अज्ञात सिहरन उसने महसूस की। पर अन्तर के भावों को छुपाती हुई कृत्रिम उलाहने के स्वर में बोली, 'बहुत चपल होती जा रही हो, नौटियाल ! मुझे आश्चर्य होता है तेरी अल्हड़ सी बातों को सुनकर।'

'हाँ और शायद तुम अन्दर से मचल उठती होगी मुझे अपने प्यार भरे आलिंगन में कसने को, पर तुम्हारा आत्म नियन्त्रण अंकुश बन तुम्हारी उदत्त प्रकृति को हर समय दबाये रखता है। इतनी कृत्रिमता भला अपने ऊपर अन्याय ही तो है।'

मृणाल ने सुना तो आश्चर्य में मीनाक्षी को देखती ही गई। उससे तत्काल कुछ नहीं बोला गया।

मीनाक्षी बोली, 'दीदी ! तुम हँसती हो लेकिन उस हंसी में प्रवाह नहीं होता। तुम बोलती हो तो तुम्हारे शब्दों में हर समय ज्ञान और संयम होता है। तुम्हारा एक ही रूप समक्ष आता है और वह रूप है एक तपस्वनी का जिसे इस आत्म नियंत्रण ने यंत्रणा दे दे कर उससे उसकी तरुणाई छीन ली है। भला यह भी कोई बात है। तरुणी हो - सौंदर्य छलक रहा है—कभी २ तो तरुणियों जैसी मीठी बातें कर लिया करो।' मीनाक्षी मजाक से सच्चाई पर आ गई थी, मृणाल इस तथ्य को समझ गई। वह गम्भीर हो ध्यानपूर्वक उसकी बातों को सुनती गई।

मीनाक्षी आगे बोली, "तुम इन बातों को उच्छृंखल कहती हो। शायद अन्दर से तुम्हारा ही हृदय तुम्हारे कथन का विरोध करता होगा। पर मैं कैसे विश्वास करुं कि तुमने मन और हृदय की इस विरोधावस्था का स्वयं जान बूझ कर निर्माण किया है। यदि ऐसी बात नहीं तो बताओ फिर तुम्हारा रूप और सौंदर्य क्या व्यर्थं नहीं है? कली फूल बनकर महक न लुटाये तो क्या उसका जीवन निरर्थक नहीं ?'

मृणाल के अन्दर एक जोर का कम्पन उठा और वह पीड़ा से कराह उठी, 'मीनाक्षी !'

'दीदी ! विश्वास करो कि तुम्हारे प्रति मेरी आत्मीयता ही अन्दर की इस सच्चाई को उगलवा रही है। मैं समझती हुं कि तुमने अपने को बहुत ही छुपाकर रखा हुआ है और यही अनुभूति कभी कभी मुझे असीम व्यथा पहुँचाती है। तुम्हारे इतने निकट होते हुए भी वास्तव में न मालूम तुमसे कितनी दूर हूँ।'

मृणाल कुर्सी में लुढ़क गई। उसकी आंखे बन्द हो चलीं। पलकों की छाया में अन्तरद्वन्द नाच रहा था। कुछ-कुछ व्यथा भी।

मीनाक्षी फिर उसी के समीप बैठकर उस के गले में बांहें डालती हुई बोली 'दीदी ! बोलो, मेरी बातें तुम्हें अप्रिय तो नहीं लगी ?'

मृणाल उस स्थिति में आंखे मूंद कर लेटी हुई ही धीमें स्वर में

बोली, 'नहीं मी ाक्षी ! तुम कोई अप्रिय बात भी कहोगी, तब भी मुझे बुरी नहीं लगेगी। स्नेह की तरलता उस का विष धो डालेगी।'

मीनाक्षी गद-गद हो उठी। मृणाल की गोद में सिर रखकर बोली 'तुम्हारी ममता का खजाना अतुल है, दीदी। केवल तुम्हारा सामीप्य किसी को प्राप्त हो जाये।'

मृणाल आंख मूंदकर मीनाक्षी के सिर पर हाथ फेरती जा रही थी। रुक २ कर कभी उसकी लम्बी साँस बाहर आ जाती।

मीनाक्षी उसकी गोद से सिर उठाकर फिर बोली, 'दीदी ! तुमने बताया नहीं कि अभाव से उत्पन्न व्यथा का कैसे उपचार करती हो ? तुम्हारी प्रणय की इच्छा ... ?'

मृणाल की आँखें थोड़ी खुलीं और हठात मीनाक्षी को जोर से आँलिगन में कसते हुए वह व्यथित स्वर में बोली, 'पगली ! तू क्यों आज इन अनर्गल बातों को छेड़ बैठी है ?'

मीनाक्षी ने देखा कि मृणाल की आँखों से आंसु झर रहे थे। वह बोली, 'इसलिये दीदी कि तुम्हारे विवेक संयम और शालीनता से तो परिचित हूँ, अब जरा तुम्हारा नारी का हृदय भी देख लूं। तुम्हारे अन्दर जो नारी तड़प रही है, उसके भी दर्शन कर लूं। बोलो, जब अकेली होती हो तो सिसकियां भरती हो न ···कि तुम्हारा भी कोई होता, कि तुम्हें भी कोई अंक में भर लेता।'

'मीनाक्षी !' मृणाल बीच ही में चीख उड़ी। 'पगली ह क्या बकने लगी है ? बन्द कर इस बकवास को। क्या तू अपनीं नहीं है जो तेरी गोद में मुझे शान्ति न मिले ?'

छोड़ दो, दीदी ! इन बातों को। अपने को और साथ में मुझे भी धोखा दे रही हो। सखी के प्यार को प्रणय की संज्ञा देती हो ? मैं जितनी तुम्हारी हृदय की पीड़ा को बाहर निकाल देना चाहती हूं, तुम उतना ही उस पीड़ा को समेटने की चेष्टा करती हो। आखिर तुम्हें

यह झूठा मोह क्यों ?'

मृणाल ने सुना तो मीनाक्षी के कन्धों पर सिर रख फफक २ कर रो पड़ी।

'उत्तर नहीं दोगी ! दीदी !' मीनाक्षी फिर गुस्से में बोली।

मृणाल ने थोड़ी देर बाद अपने को संयत किया और बोली, "मेरे अतीत का ज्ञान है तुम्हें ?'

"हाँ जानती हूँ कि तुम एक वेश्या थी'

'फिर भी प्रणय की बात करती हो ?'

'यह तो प्राकृतिक कामना है, वरना प्रणय का अभाव तुम्हें अखरता क्यों ?।

चर्चा कामना की नहीं थी, मीनाक्षी, अधिकार की थी। मैं प्रणय का अधिकार खो बैठी हूँ। उसकी कामना कर व्यर्थ ही 'प्रणय' शब्द को भी क्यों कलंकित करूँ

मीनाक्षी ने सुना तो अवाक हो चली। खोखली दृष्टि से मृणाल को देखती ही रही।

मृणाल फिर बोली, 'तुमने कुछ देर पूर्व भावनातिरेक हो मेरी उपमा फूल से दी थी। मैं मानती हूँ कि तुम्हारी भावनायें पवित्र थी। तुम्हारे शब्दों में सहानुभूति और सचाई थी पर तुम समय और स्थिति की उपेक्षा कर गई।

मीनाक्षी ने मृणाल के शब्द सुने तो उसे लगा कि मृणाल अतीत के अपने घृणित जीवन के कारण आत्मग्लानी से प्रताड़ित थी। उसे लगा कि मृणाल की पीड़ा को बाहर निकालने में उसने अच्छा नहीं किया। वह मृणाल के विवेक और व्यक्तित्व पर और भी मुग्ध हो उठी। तभी उसे महिम का ध्यान आ गया वह सोचने लगी कि मृणाल से महिम की चर्चा करे या नहीं। कहीं यह चर्चा भी केवल उसकी कड़वी स्मृतियों को ताजा करके ही न रह जाये, विशेषकर यह जानते हुए कि महिम ने दूसरी शादी कर ली थी।

फिर भी मीनाक्षी प्रयत्न करने पर भी अपनी जिज्ञासा शान्त न

न रख सकी ।

सहमी हुई सी बोली, 'दीदी, महिम बाबु के प्रति तुम्हारा प्यार···?'

मृणाल एक बार फिर कांप उठी। उसके विशाल नेत्रों में असजमंस झलक उठा।

'फिर तुम उन बातों को दुहराने लगी ?' मृणाल दवी हुई पीड़ा और ममत्व से पूर्ण फटकार देती हुई बोली ।

'यह प्रश्न तुम्हारी पीड़ा को ताजा करेगा, मैं जानतीथी। पर आत्मीयता का अभिमान मेरे संकोच को दबा गया, इसीलिये पूछ बैठी !

मृणाल मीनाक्षी के शब्दों को सुनकर पिघल गई।'

'उन की शादी हो गई है, मीनाक्षी। 'तुझे पता है। मृणाल का स्वर धीमा और निराश था।

मीनाक्षी का उत्साह बढ़ा। वह बोली, तुम उन्हें अभी भी प्यार करती हो ?

मृणाल फिर कांप ठठी। एक उड़ती हुई दृष्टि मीनाक्षी पर डाल कर उसने गर्दन नीची करली।

'मौन का अर्थ 'हां' होता है, दीदी ?'

मृणाल मीनाक्षी के प्रश्नों से परेशान हो गई। क्या उत्तर दे उसे।

मीनाक्षी ने मृणाल की परेशानी को लक्ष्य किया तो बोली, 'एक बार—केवल एक बार ही तुम से इस उत्तर के लिये आग्रह करूंगी, यदि सच बताओगी।'

मृणाल पहले तो कुछ झिझकी पर फिर बोली, 'मैंने उन्हें पति के स्थान पर प्रतिष्ठित किया था, मीनाक्षी ! तुम विवाहिता स्त्री हो—अपने प्रश्न का स्वयं ही उत्तर प्राप्त कर सकती हो।'

मीनाक्षी ने सुना तो उसकी आंखें चमक उठीं, 'ओह ! इतना गुप्त प्यार दीदी ! लेकिन मिलन ?'

'इस जीवन में असम्भव है, मीन क्षी ! अब तुम जाओ। मेरे अध्ययन का समय हो चुका है। और हाँ, प्रयत्न करना कि ये चर्चायें हमारी दिनचर्या में स्थान न लें।'

मीनाक्षी लौटकर चौके के काम धन्धों में लग गई। पर उसके कानों में मृणाल के शब्द गूंजते रहे। कि इस जीवन में उसका महिम के साथ मिलन असम्भव है। महिम को पति की प्रतिष्ठा देकर फिर भी उसके सहवास से विरोध। कितना त्याग था मृणाल के प्यार में ! पर इससे भी अधिक आश्चर्य था मीनाक्षी को इस बात पर कि उस प्यार को मृणाल कितने दम्भ के साथ निभा रही थी। तो क्या यों जल जल कर मरजाने में प्यार की श्रेष्ठता बढ़ती है ? मीनाक्षी को हंसी आ गई। उसे तो यदि अपने पति का पत्र हर सप्ताह के बाद मिलता न रहे तो वह सब छोड़ छाड़ कर देहरादून भाग जाय। मृणाल को फिर यह सब सहन करती होगी। इससे तो अच्छा यही था कि वह दूसरी शादी करले। तब से अब की स्थिति में भी तो कितना अन्तर हो गया था। पर मीनाक्षी जानती थी कभी भी उसका इतना साहस नहीं हो सकेगा कि सखी होते हुए वह इस आशय का प्रस्ताव मृणाल के समक्ष रख सके। मृणाल समवयस्का ओर तरुणी होते हुए भी मर्यादा और शिष्ठाचार में स्वयं अपने को क्षमा नहीं करती थी। उसका जीवन औचित्य और त्याग कीप्रतिमूर्ति बना गया था।

एक सप्नाह पश्चात सचमुच ही आचार्य के कहे अनुसार देहरादून से दीवान महिधर आ पहुंचे और उनके आने पर मृणाल की पर्वत यात्रा का कार्यक्रम निश्चित हो गया।

साथ में मीनाक्षी, मीनाक्षी के पति नौटियाल और एक दो नौकर चाकरों का जाना निश्चित हुआ।

मृणाल पहाड़ी प्रदेश का भ्रमण कर एक आध माह बाद वापिस आ गई ! पहाड़ी प्रदेश में उसे शिक्षा का सर्वथा अभाव दिखाई दिया। वहां के निवासी दीन थे पर उनको उसने अशांत और उद्विग्न नहीं पाया। मृणाल ने महसूस किया कि शिक्षा ने मनुष्य के मानसिक शितिज को आलोकित तो किया पर साथ ही उसे इतना मक्कार और स्वार्थ लोलुप भी बना दिया कि उसका जीवन कुण्ठित और अशान्त हो उठा।

है। पहाड़ी प्रदेश में शिक्षा का सा नहीं था। इसी लिये शायद वहां के स्त्री पुरुष सरल और सद्चित थे। प्रकृति के बिल्कुल समीप, शान्त और प्रसन्न। बाहर की दुनियाँ से वे अनजान थे और शायद सुखी जीवन को अक्षुण्ण रखने के लिए वे नित्य अनजान ही बने रहना चाहते थे।

मृणाल नवीन अनुभूतियां लेकर फिर स्वर्ग आश्रम लौट आई—मौन सी और मस्तिष्क में एक अजीब सी हलचल लिये। आचार्य ने उससे यात्रा के सम्बन्ध में कई प्रश्न किये पर वह संक्षिप्त सा उत्तर देकर चुप रही। मन में उसके एक अद्भुत सा संकल्प जागृत हो रहा था कि वह मानव जाति पर, उसके मौलिक और परिवर्धित रूप पर एक विस्तृत विवेचना तैयार करे। अपनी इस अनुभूति की पुष्टि के लिये कि धर्म, रीति रिवाज, सामाजिक मान्यतायें, सब परीक्षण मात्र हैं जिनका आविष्कार अथवा प्रचलन केवल इसलिये हुआ कि मनुष्य अपनी विलक्षण प्रतिभा से स्वयं अपने को ही समाप्त न कर दे। ये सामाजिक मान्यतायें और धार्मिक विश्वास मूल सत्य की प्रतिध्वनी नहीं है और इसीलिये समय-समय पर इनकी परिभाषा बदलती गई ताकि मानव-जाति प्रगतिशील व्यक्तित्व लेकर अपने विकास के क्रम को चालू रखे।

उसे आभास हुआ कि उसका वेश्या जीवन घृणित अवश्य रहा पर था वह भी जीवन का एक परीक्षण ही जो परिस्थितियों द्वारा परि-चालित हुआ। परीक्षण विकास में अवरोध उत्पन्न नहीं करता अपितु योग देता है। क्यों न वह भी जीवन को एक परीक्षण समझ कर मानव जाति के विकास में अपना योग दे। विरक्त जीवन मूल सत्य न हो कर परास्त मनोवृति का परिचायक मात्र ही तो है।

और मृणाल अपने अनुसन्धान में जुट गई—मनुष्य के मौलिक एवं परिवर्धित रूप पर एक विवेचना तैयार करने।

———

१२

मंजु ने माणक को कई प्रलोभन दिये कि महिम और मुन्नवर के सम्बन्ध में वह खुल कर सारी बातें उसे बता दे। पर माणक,अविचलित हो केवल इतना ही उत्तर देता कि मुन्नवर एक वेश्या थी जिसे मालिक यानि महिम ने आश्रय दिया था। केवल मानवता के नाते ही वह उसका उद्धार करना चाहते थे।

मंजु अन्दर ही अन्दर क्रोध से उबल पड़ती पर संयत हो फिर माणक को कुरेदती : 'तो क्या वह उसे कोठे से उठा कर अपने ही साथ रखने लगे थे?'

माणक घबरा जाता। उसे कुछ न सूझता कि वह सच सच सब बातें बता दे अथवा सब गोलमोल रखे।

'बीबी जी! आपको किसने बताया कि मालिक उसे प्रेम करते थे?' वह उल्टा मंजु से प्रश्न करता ताकि वह उस सुराग का पता लगा सके जहां से यह जहरीली हवा आने लगी थी।

पर मंजु भी उत्तर देने की अपेक्षा प्रश्न ही करती। बोली, 'कहीं से भी पता चला हो! तुमसे जो बातें मैं पूछ रही हूं उनका उत्तर दो?'

माणक दुविधा में फंस जाता। सोच विचार कर बोलता, 'मैं

अधिक कुछ नहीं जानता, बीबी जी ! जितना मालूम था, सब आपको बता दिया। फिर ऐसे मामलों में यदि आप खुद मालिक से बात कर लें तो अच्छा रहे। मैं तो आपका नौकर हूँ। बातें करते हुये झिझक भी महसूस होती है।'

मंजु बड़ी-बड़ी आंखें बना कर माणक को घूरती और फिर दांत पीसते हुए चली जाती।

कई दिनों तक यह क्रम जारी रहा। माणक उद्विग्न और मंजु उत्पीड़ित सी रहती, पर दोनों अपनी अशान्ति को अपने तक ही सीमित रखते। परिवार के किसी और सदस्य को महिम और मुन्नवर के सम्बन्धों का पता न चला। माणक इसे इसलिए रहस्य बना कर दबाना चाहता था कि व्यर्थ में महिम का चरित्र कलंकित न हो और साथ ही कोई पारिवारिक अशान्ति जन्म न ले और मंजु सिवाय मनोहर के, किसी से इस सम्बन्ध में कुछ बात करना न चाहती थी क्योंकि वह चाहती थी कि माणक को अपने विश्वास में लेकर वह पहले सारा रहस्य जान ले। पर उसका विश्वास झूठा निकला। कई दिनों तक वह माणक को विश्वास में लेकर भी उसके मुंह से एक शब्द भी ऐसा न निकलवा सकी जिससे उसे मुन्नवर और पति के सम्बन्धों की विस्तृत जानकारी प्राप्त हो सके।

अब उसके स्वभाव में अकस्मात बहुत परिवर्तन दिखाई देने लगा। वह पहले महिम से कुढ़ती तो थी पर अब उस कुढ़न के साथ उपेक्षा और कटु व्यंग्य भी होने लगे। माणक ने यह सब लक्ष्य किया तो चाहा कि महिम को वह सब कुछ बता दे जो उसके सम्बन्ध में मंजु किसी न किसी तरह पता लगा चुकी थी पर महिम की दिन प्रति दिन बढ़ती हुई गम्भीर प्रकृति को लक्ष्य कर उसे कभी साहस न हुआ कि वह कुछ बोले। पर एक दिन राख की पर्त हठ ही गई और उसके नीचे दबी हुई चिनगारियां बाहर निकल पड़ीं।

महिम ने एक दिन मंजु से प्रस्ताव किया 'मंजु ! चलो देहरादून चलें।' अब बाग में सब्जियों की उपज इतनी अच्छी होने लगी है कि सब्जियों का व्यापार ही हमें समृद्ध बना देगा। सोचता हूं कि देहरादून जाकर मण्डी में इनके विक्रय की ठोस व्यवस्था कर लूं !'

मंजु को पता था कि महिम कुछ सब्जियों के ही सम्बन्ध में बात करेगा। क्योंकि हमेशा ही उसकी बातें पैदावार और व्यापार तक सीमित रहती थी। उसने एक कान से सुना और दूसरे कान से उन बातों को निकाल दिया। बोली कुछ नहीं।

महिम पुनः बोला, 'तुमने उत्तर नहीं दिया ?'

मंजु ने वक्र दृष्टि से महिम को देखा और बोली, 'मैं नहीं बजाऊंगी।'

महिम ने मंजु की उस रूखी आकृति को देखा और चुप हो गया। एक लम्बी सांस लेकर कुछ देर बाद बोला, 'अजीब विडम्बना है, मंजु ! कि जब कभी मेरे मन में संकल्प उठते हैं कि कुछ ऊपर उठूं, कोई न कोई अवरोध खड़ा हो जाता है और मेरे आदर्श, मेरे अनुष्ठान, इन अवरोधों से टकरा कर अपनी गरिमा खो बैठते हैं। यह एक भारी 'ट्रेजिडी' है—बहुत भारी, विशेषकर तुम जैसी शिक्षित पत्नी के होते हुए भी।'

मंजु ने महिम का यह प्रगूढ़ आलाप सुना तो एक बार फिर उसे घूरते हुए देखने लगी, मानो यह समझने की चेष्टा करने लगी कि इन शब्दों में व्यक्त भावना और उसके 'वेश्या प्रेम' में कहां तक सामंजस्य है। वह कुछ न बोली।

महिम बोला, 'तो नहीं चलोगी तुम ?'

'मेरी आपके संकल्प और अनुष्ठानों में कोई आस्था नहीं है, मंजु धीमे स्वर में बोली।

'पत्नी हो कर भी ?'

'मैंने आपको अपनी इच्छा से वरण नहीं किया।'

'मैं जानता हूँ, पर अब इच्छा का प्रश्न उठाना कुछ व्यर्थ ही तो है वरना वह आत्मघात होगा। आवश्यकता अब आत्मसात की है।'

मंजु कुछ रुकी—शायद प्रत्युतर देने को। फिर अभिमान से सिर उठातीं हुई बोली, 'वैवाहिक जीवन के जिस आदर्श को आप चित्रित करने का प्रयास करते रहे हैं, वह नितान्त खोखला है। और अब तो वह समय भी जाता रहा जब इस आडम्बर में लोगों को कुछ आकर्षण दिखाई देता था।'

महिम ने सुना तो उसे लगा कि मानो मँजु ने उसे एक जोर का धक्का दिया हो। वह गम्भीर हो मंजु के शब्दों को मन ही मन तोलने लगा। रुक कर बोला, 'मंजु ! क्या तुम भूल से यह समझ बैठी हो कि तुम्हारे और मेरे विचारों में सामंजस्य असम्भव है ? यदि ऐसी वात है तो अपनी धारणा बदल दो। प्रणय त्याग पर पलता है—उसकी तीव्र आँच सब मतभेदों को गला देती है।'

मंजु ने सुना तो वह अन्दर से जल उठी। प्रहार करती हुई सी बोली, 'अपने प्रणय की तीव्र आँच में तुम एक वैश्या को तो गला चुके हो। अब मुझ से भी मेरा पृथक व्यक्तित्व छीनना चाहते हो ताकि मैं भी उसी की भांति अपने अस्तित्व को समाप्त कर दूं ?'

महिम ने सुना तो तीव्र आश्चर्य में बड़ी २ आंखों से मंजु को देखता ही रहा।

मंजु आगे बोली, 'तुम उन्हीं वृद्ध गिद्धों में से हो जो निर्बल कीड़े मकोड़ों को निगल कर, लकड़ी पर चोंच मार कर, उस चोंच को साफ करते हैं, ताकि उनकी हिंसा का किसी को पता न चले। पर मैं प्राचीन पन्थी स्त्री नहीं हूँ। मेरे अपने विचार हैं और अपना व्यक्तित्व। यदि तुमने मुझ पर चोंच उठाई तो मैं उस चोंच को तोड़ दूँगी। मैं तुम्हारी पत्नी हूँ, ठीक उसी तरह जिस तरह तुम मेरे पति हो।

हमारा व्याह एक समझौता है, यदि निभ सका, तो निभेगा, बलात इसे निभाने में जीवन की कुरबानी नहीं होगी।'

कह कर मंजु कुछ देर वहाँ पर खड़ी रही ताकि महिम का प्रत्युत्तर सुन ले, पर जब उसने महिम को उसी तरह मौन और विभ्रान्त सा पाया तो वह मुड़ चली।'

उसका मुख विजयोल्लास में चमक रहा था।

वह महिम की दृष्टि से ओझल होने ही वाली थी कि उसे महिम का धीमा स्वर सुनाई दिया, 'रुको मंजु !'

वह रुक तो गई पर वहीं पर खड़ी रही। लौट कर महिम के पास न गई।

अतः महिम ही उसके समीप आकर बोला, 'मैंने तुमसे कभी भी मुन्नवर की चर्चा नहीं की। इसी लिये कि मैं स्वयं पिछले दिनों को भूल जाना चाहता था। मेरा ऐसा कोई विचार नहीं था कि तुमसे अपने जीवन से संबधित कोई घटना छुपा कर रखूं। तुम मेरी पत्नीं हो। तुमसे छिपाऊंगा भी क्यों ? मुझे क्या पता था कि इसी कारण तुम्हें मुझे समझने में इतनी बड़ी भूल होगी...।'

महिम अभी बोल ही रहा था कि मंजु उसी अभिमान भरे स्वर में बोली, ' मैंने तुम्हें समझने में कोई भूल नहीं की। हाँ तुम मुझे अवश्य भुलावे में रखना चाहते हो।'

'तुम्हारा मतलब है कि मैं तुम्हें प्यार नहीं करता ?'

'यह आप मुझ पर ऐहसान जता रहे हैं ?'

महिम को मंजु का स्वर बहुत रूखा और बात करने का ढंग बड़ा अशिष्ट लगा। पर फिर भी संयत स्वर में बोला, 'मंजु ! मुझे केवल यह बता दो कि मुझसे तुम्हें शिकायत क्या है ? यकीन करो कि यदि तुम दिल खोल कर बात करोगी तो तुम्हारी सारी कुण्ठा समाप्त हो जायगी। मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने तुम्हारी बहुत सी बातों की उपेक्षा भी की है

पर उस उपेक्षा के पीछे सामीप्य की भावना और विश्वास था। यह मेरी व्यवहारिक भूल थी और मैं अपनी भूल को अनुभव करता हूँ।'

मंजु ध्यान से महिम के शब्दों को सुनती रही। उसने महसूस किया कि वैश्या की चर्चा कर वह महिम के दर्प को चूर कर उसे एकदम आसमान से धरती पर ले आई थी। अब वह कितनी सरल और कोमल बातें कर रहा था। अब कहां गये थे उसके आदर्शमय प्रवचन और दार्शनिकों का सा अभिनय? वह एक बार फिर अपनी विजय पर मुस्करा उठी।

वह अधिकार भरे स्वर में बोली, 'उस वैश्या के साथ केवल आपका शारीरिक संबंध था या उसे हृदय भी दे बैठे थे?'

'दोनों।'

'तो फिर मेरे जीवन को नष्ट करने से आपका कौनसा संकल्प पूरा होगया?'

'मैंने विनाश की कभी कामना नहीं की, सृजन की ही चाह रही है! पर दुर्भाग्यवश मेरा प्रत्येक अनुष्ठान दुःखान्त होता रहा है। मुन्नवर से मेरा संबंध हुआ...उसमें भी कहीं मेरी चारित्रिक दुर्बलता नहीं थी अपितु यही इच्छा थी कि वैश्या को भी गृहणी का मान मिले। फिर तुमसे मेरा ब्याह हुआ तो मैंने यही सोचा था कि मैं जिस भंवर में फंस चुका था उससे निकल कर कोई किनारा पकड़ सकूं। मेरा पहला अनुष्ठान असफल रहा और परिस्थितियों की विडम्बना तो देखो कि तुम भी मुझ पर विश्वास खो बैठी हो। अब तुम्हीं बताओ कि मेरे इरादों से परिस्थितियों का बैर रहा है या नहीं?'

महिम की बातें सुन कर मंजु कुछ द्रवित हो चली। उसे लगा कि महिम की बातों में कुछ सच्चाई अवश्य थी। महिम उसे दया का पात्र लगा। वह कोई और प्रश्न न कर चुपचाप धीमे पग बढ़ाती हुई चिन्तनशील मुद्रा में वहाँ से चली गई।

जाते २ महिम ने अपना प्रस्ताव फिर दुहराया, 'तो देहरादून चलोगी ?'

मंजु तनिक रुकी और सोचती हुई बोली, 'मेरे विचार से मनोहर बाबू को यहां बुला लेते हैं। उनके आने पर फिर देहरादून जाने का विचार करेंगे। उनसे भी परामर्श कर लेंगे।'

महिम बोला, 'मनोहर को यहां बुलाने की क्या आवश्यकता है—उनसे मिलना हो तो वहीं क्यों न मिल लें !'

मंजु झुंझलाती हुई बोली, 'बस यही तो आपकी हठ है कि अपनी ही बात रखते हो—दूसरों की मर्जी का बिल्कुल खयाल नहीं करते।'

महिम हंस दिया। हंसते हुए ही बोला, 'मान गया, मंजु। आगे अब तुम्हारी ही बातें चलेंगीं !'

मंजु भी मुस्करादी।

महिम की हंसी और मंजु की मुस्कराहट से कुछ देर पूर्व जो विषाद और कटुता उत्पन्न हो गई थी, दूर हो गई। उनकी दृष्टि टकराई तो उसमें भी पूर्ण समझौता था।

मंजु ने अपने निश्चय के अनुसार ही मनोहर को पत्र लिख दिया कि वह आकर उनसे मिले। लेकिन एक सप्ताह हो गया, मनोहर नहीं आया।

मंजु महिम से बोली, 'मनोहर बाबू की कहीं तबीयत खराब न हो—चलो देहरादून चलकर देख आयें।'

'मैंने तो पहले ही प्रस्ताव किया था—तुम्हीं नहीं मानी।'

मंजु बोली, 'तो क्या हुआ, आसमान तो नहीं गिर गया। आज ही चल कर देख आते हैं।'

'अब तो कुछ दिन तक मुझसे जाना न हो सकेगा। खेत पर मजदूर लगाए हुए हैं।'

'तो फिर मैं अकेली हो आती हूं।' मंजु के शब्दों तत्परता थी और मुख पर चिन्ता की झलक।

महिम ने उसकी तत्परता को लक्ष्य किया और बोला, 'यदि तुम्हें रोकता हूँ तो तुम बुरा मान जाओगी और यदि जाने दूं तो न मालूम क्यों कुछ अच्छा नहीं लगता।'

मंजु को कोई खटका सा हुआ। महिम को घूरती हुई बोली, 'यह तुम्हारा पतन ही तो है कि मुझ पर विश्वास खो बैठे हो या तुम्हारा विश्वास संदिग्ध हो चला है।'

महिम फिर सन्न रह गया। मंजु के संकेत को वह समझ गया था। बोला, "तुम्हें मेरी बातों से इतना डर क्यों होने लगा है, मंजु क्या यह तुम्हारा भय स्वयं इस बात का साक्षी नहीं है कि तुम्हारा अपने आप पर विश्वास उठ गया है ? अन्यथा मेरी बातें तुम्हें शूल की भांति न चुभती। तुम्हारा यूं अकेला जाना मर्यादा के अनूकुल नहीं है।"

'मनोहर बाबू मेरे मित्र हैं' मंजु गम्भीर हो बोली।

'विवाहित स्त्री की मैत्री पति की अपेक्षा नहीं कर सकती!"

'तुम्हारा मुझ पर इतना अंकुश ?' मंजु क्रोध में फुंफकार उठी।

'यह अंकुश नहीं, सामाजिक विधान है, ताकि दाम्पत्य जीवन स्थिर रह सके।'

मंजु ने सुना तो गूस्से से उसका शरीर ऐंठ गया।

धीमें किन्तु गम्भीर स्वर में बोली, 'देखो ! गरमा गर्मी ठीक नहीं। यदि आप समझते हैं कि फिर उन्हीं प्राचीन आदर्शों का रोना रो कर। आप मुझे प्रभावित कर लेंगे, तो आप तुरन्त विचार बदल दीजिए। मैं अपनी स्वतंन्त्रता के लिये ब्रह्मा से भी टक्कर लूंगी, आप तो केवल मनुष्य हैं, सामाजिक बन्धनों द्वारा मनोनीत साथी—मन और हृदय के विजेता नहीं। मन और हृदय कोई पशु नहीं कि बलात उन पर विजय के स्वप्न देखो। आपको मेरे मन और हृदय में तिल भर भी स्थान नहीं।

महिम ने सुना तो वह भी क्रोध से पागल हो उठा। वह बोला 'मुन्नवर संस्कारहीन थी पर सद्‌चरित्र थी। तुम्हारी बातें सुनकर तो अब पता लगा है कि वैश्या वास्तव में कौन होती है ?'

मंजु क्रोध में अपने होंठ चबा बैठी पर पूर्व कि वह कुछ बोलती महिम वहाँ से जा चुका था।

उसने देखा कि महिम खेतों की ओर बढ़ रहा था। उसकी गति बड़ी तेज थी। मैं घायल सर्पणी की भाँति वहीं पर खड़ी-खड़ी फुफुकारती रही।' अगले ही दिन उसकी आशा के विपरीत मनोहर वहीं आ पहुँचा।'

महिम को उसके आने का पता चला तो उसकी उपेक्षा कर खेतों की ओर चल दिया।

मनोहर मंजु से बोला, 'देखा अपने महिम को। यह जानते हुए भी कि मैं आ गया हूँ, वह मुझसे न मिला बल्कि मिलने का उसने मौका ही नहीं दिया।'

'मंजु चुप रही।

मनोहर बोला, 'तुमने पत्र भेजा था पर मैं उस समय महिपुर गया हुआ था। तुम्हें शायद नहीं मालूम कि वहां स्त्रियों के लिए एक निकेतन स्थापित किया गया है और न मालूम कहां से इतनी विधवायें आकर वहां भरती हो गई हैं। कई तो उनमें वैश्यायें तक हैं, जिनको कई प्रकार की दस्तकारियां सिखाई जाने लगी हैं। जिस योजना का मैंने कभी तुमसे उल्लेख किया था वही अब कार्य रूप में परिणत होने लगी है, अहा ठाठ तो देखो निकेतन के, आचार्य का विद्यालय भी उसके सामने फीका पड़ गया है।'

मँजु एक टक मनोहर को देखती रही।

मनोहर ने उसकी नाक पकड़ी और उसके गालों पर एक हल्की सी चपत लगाते हुए हँस पड़ा। बोला, 'तुम्हारी यही रोनी वाली सूरत बनी रहेगी, यदि ऐसा पता होता तो कभी न आता! कभी मुस्कराकर स्वागत कर लिया करो।''

मंजु ने मनोहर के शब्द सुने तो उसकी आंखे भर आईं। अपने को सम्भालती हुई वह बोली, 'चलो जरा बाहर घूम आयें। तुमसे वहुत सी बातें करनी हैं।'

मनोहर नाटकीय ढँग से आश्चर्य प्रकट करते हुए बोला, 'मुझसे ? और बहुत सी बातें ? अपने घर बुलाकर अपमान तो नहीं कर रही हो ?'

मंजु उसी पूर्व अवस्था में बोली, 'ज्यादा मजाक करोगे तो मैं रो पड़ूँगी। चलो कहीं एकान्त में चलें। मेरा मन बहुत भारी हो रहा है।'

मनोहर ने सरसरी दृष्टि से मंजु को देखा और उसको सहारा देता हुआ बोला; 'चलो।'

'इधर खेतों की ओर नहीं—इधर महिम गया हुआ है—उधर सामने नाले के पार उन पेड़ों की ओर' उँगली से इशारा करते हुए मंजु बोली।

रास्ते में मंजु तो कुछ न बोली, केवल सोचने में ही लीन रही, पर मनोहर कभी खेल और टूर्नामैंट की बातें करता गया तो कभी सिनेमा और सर्कस की। आखिर फिर घूम फिर कर वह महिपुर के संबंध में ही बोलने लगा। 'मंजु ! इतना विशाल निकेतन है कि अधिक नहीं तो कमसे कम ३००—४०० लड़कियाँ होंगी। मजा तो यह है कि प्राय: अधिकतर ज़वान हैं। निकेतन नहीं, बगीचा है बगीचा जहाँ एक से एक बढ़कर सुन्दर कलियां मिलेंगी। दुर्भाग्य यही है कि बगैर अभिभाविका की आज्ञा के वहाँ प्रवेश नहीं होने देते।'

'अभिभाविका ? तो क्या निकेतन आचार्य की देख रेख में नहीं हैं ?'

'नहीं, कोई महिला है। सुनते हैं, वह भी अद्वितीय सुन्दरी है, पर रहती पर्दे में है।'

मंजु के मुख पर आखिर मुस्कान आ ही गई। वह बोली, 'तुम क्या नित्य यूँ चंचल ही रहोगे ? कोई भी हो—बस एक ही दृष्टि से

देखोगे चाहे छात्रा हो, वैश्या हो विधवा हो अथवा अभिभाविका ही हो।'

मनोहर हंसा, बोला, 'क्या करूं ? चाहा तो था कि एक फूल की पंखुड़ियों पर बैठ कर ही जीवन निर्वाह करूं पर भाग्य ने साथ नहीं दिया। परिणाम स्वरूप यूं ही मंडराना पड़ रहा है।'

मंजु ने मनोहर के कटाक्ष को लक्ष्य किया और झेंप कर गर्दन झुका दी।

मनोहर बोला, 'पिता जी ने तो सारी सम्पति ही निकेतन पर लुटा दी है। बस एक ही संकल्प उनका शेष रह गया और वह यह कि देश की समस्त विधवाओं को वह निकेतन में आश्रय दें और निकेतन—हाथ करघा एवं ऐसे ही छोटे मोटे कितने ही कुटीर उद्योगों का केन्द्र बन जाये। वहां जाओ तो ऐसा कोलाहल सुनाई देगा कि मानो युद्ध की सी तैयारियां हो रही हो।'

दोनों अब एक ऐसे स्थान पर आ गये थे जहां एक ओर तो नाला बह रहा था और दूसरी ओर आम के पेड़ों की घनी छाँव थी।

मंजु रुक गई और बोली, 'बैठ जाओ यहीं पर।'

दोनों बैठ गये तो मनोहर बोला, 'हाँ, क्या बात थी जिसे कहने को तुम इतनी आतुर थीं ?'

मंजु सोचने लगी कि कैसे अपने और महिम के बीच कटु सम्बन्धों की चर्चा करे। वह चुप हो सोचती ही रही और सोचते-सोचते उसकी मुख की आकृति फिर म्लान हो उठी।

मनोहर बोला, 'क्या बात है, मंजु ? तुम कुछ दुःखी दिखाई देती हो।'

मंजु पहले तो आंख उठा कर मनोहर को देखती रही पर फिर उसकी गोद में लुढ़क कर रो पड़ी।

मनोहर ने मंजु के सारे शरीर को अपनी गोद में छिपा लिया और पुचकारते हुए बोला, 'कुछ बताओगी भी या यूं ही उल्टा मुझे भी दुःखी करोगी।'

मंजु कुछ देर तक तो रोती रही। फिर बोली, 'मेरा महिम से झगड़ा हो गया है, मनोहर बाबू ! हम अब एक दूसरे से बिल्कुल अलग हो चुके हैं।'

'क्यों, क्या बात हो गई ?' कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करते हुए मनोहर बोला !

'कुछ नहीं। तुमने मेरे हृदय पर अधिकार कर रखा है। उसने तुम्हें हटाने के लिए थोड़ा संघर्ष किया पर हार मानकर दूर हो चला।'

मनोहर ने सुना तो उसकी छाती फूल उठी। पर अन्दर के भावों को छुपाता हुआ बोला, 'क्या बचपने की बातें करती हो ?'

मंजु उसके वक्ष से चिपटती हुई एक लम्बी सांस लेकर बोली, ,काश ! यह हक़ीकत न होकर बचपना ही होता। तब मेरे अन्दर यह उत्पीड़न और व्यथा तो न होती। मैं छट पटा रही हूँ मनोहर बाबू ! मन और हृदय पर किसी और का अधिकार है और शरीर किसी और को सौंप चुकी हूं।'

मनोहर मंजु के अन्तर में चल रहे द्वन्द को भांप गया। उसने तनिक और कस कर मंजु को छाती से लगा लिया। भावनातिरेक हो बोला, 'तुम कायर हो, मंजु ! बुद्धिहीन-अभिशापिता। वरना समर्थ होकर भी यूं त्रस्त न रहती।'

'मनोहर !' मंजु के मुंह से लड़खड़ाता स्वर निकला।

'मुझे यूं न पुकारा करो। तुम्हारे पास आता हूँ तो मुझे नाग फाँस में बाँध देती हो और फिर दूर खड़ी होकर रोती हो। आज मैं तुम्हारी बाँधी हुई बेड़ियों को तोड़ दूँगा। स्वयं मुक्त हो जाऊंगा और तुम्हारी प्रवंचना भी नित्य के लिए समाप्त हो जायेगी।' कहते हुए मनोहर के गाल गरम हो उठे। उसकी नासिका से गर्म सांसें निकलने

लगी ।

मंजु की आंखों की पलकें बन्द हो गई। मूर्छित अवस्था में ही मनोहर की गोद में लेटी हुई वह संज्ञा हीन हो चली ।

बादलों का एक टुकड़ा अन्तरिक्ष में दिखलाई दिया। सूर्य खिसक कर उसी की ओट में जा छुपा ।

आमों के पेड़ों पर पक्षियों की चहचहाट में काना फूंसी का सा स्वर सुनाई देने लगा ।

कि तभी घूमता हुआ महिम उधर आ पहुंचा ।

अमराई में सहवा विप्लव सा छा गया। पक्षियों के पंखों की फड़फड़ाहट से अमराई गूंज उटी। विहग दल नीड़ त्याग तितर वितर हो उड़ने लगे। और तभी मंजु की आंख खुली तो उसने देखा कि महिम और मनोहर आपस में भिड़ चुके थे।

भय से एक जोर की चीख उसके कण्ठ से निकली और वह हांपती हुई गाँव की ओर चली।

महिम और मनोहर उसी तरह कुछ देर जूझे रहे कि आखिर महिम ने मनोहर की कनपट्टी पर एक भरपूर मुष्टी प्रहार किया और मनोहर बेहोश हो जमीन पर लुढ़क पड़ा ।

मंजु गांव की ओर भागी जा रही थी—पागलों की भांति कि सहसा उसे कुछ विचार आया और वह बीच ही में से लौट कर उसी तरह दौड़ती हुई वापिस वहां आ पहुँची जहा घायल हो मनोहर लेटा हुआ था। महिम न जाने कहां गायब हो गया था।

सप्ताह बीत गया पर महिम वापिस घर नहीं लौटा। मंजु के होश गुम थे। मनोहर घटना वाले दिन ही देहरादून वापिस चला आया था और फिर न वह मंजु से मिला, न मंजु ही ने उसे बुलाया ।

महिम की खोज जारी थी। स्थिति भयावनी सी चलती रही। मंजु को यह सब असह्य सा हो गया और वह अपने पीहर चली गई।

तभी एक दिन संध्या को महिपुर के समीप निकेतन की कुछ लडकियां टहलती हुई चन्द्रभागा की ओर जा रही थी कि उन्हें मार्ग से कुछ दूर एक बड़े से पत्थर पर एक फटे चीथड़ों में लम्बी दाढ़ी और उलझे केश लिए एक युवक लेटा हुआ दिखाई दिया। उसे मृतक समझ कर लड़किमो में काना फूसी चल पड़ी और तुरन्त निकेतन की अभिभाविका तक खबर पहुंच गई।

अन्धकार बढ़ता गया और उस अन्धकार और नीरव वातावरण में भी जब उस युवक को कुछ कोलाहल सुनाई दिया तो वह बौखलाया हुआ सा उठ खड़ा हुआ। लालटेनों की रोशनी और स्त्रियों के एक छोटे से समूह में अपने को घिरा हुआ पाकर वह विमूढ़ हो चला।

'कोई आवारा शख्स है।' उस समूह में से आवाज आई।

'क्या पता, पागल हो?' दूसरी आवाज थी यह।

वह युवक चिल्लाया 'मैं पागल नहीं हूँ।'

'तो फिर इतनी रात यहां पर क्या कर रहे हो?' समुह में से एक गरजती हुई आवाज आई।

'यहां निकेतन की लड़कियां टहलती रहती हैं। क्या तुम्हें मालूम नहीं?'युवक से दूसरा प्रश्न किया गया!

'कौन हो तुम?' यह तीसरा प्रश्न था।

'आप कुछ ऐसा वैसा ख्याल न करें! थक कर सो गया था। मैं चला जाता हूँ!' करुण स्वर में वह युवक बोला।

लेकिन उसके शब्दों पर किसी को विश्वास न हुआ।

फिर काना फूँसी चल पड़ी।

तभी अभिभाविका उस समूह में से आगे बढ़ीं। तनिक मुंह का आँचल हटा कर उसने लालटेन की बत्ती तेज कर दी और लालटेन का तेज प्रकाश जब उस युवक पर पड़ा तो वह चौंक सी पड़ी। उसने तुरन्त आंचल में अपना मुंह छिपा लिया और पीछे हठ कर एक स्त्री क कंधों

पर लुढ़क सी पड़ी, मानों सहारा ले रही हो।

'लालटेन पकड़ो, मीनाक्षी !' अभिभाविका के स्वर में कंपन था।

'लेकिन यह युवक ?' लालटेन पकड़ती हुई मीनाक्षी ने पूछा !'

'उसे निकेतन ले चलो। शायद कोई दीन दुःखी है।'

———

१३

दूसरे दिन सुबह तीसरी बार मीनाक्षी उस कमरे में आई जहां उस युवक को ठहराया गया था और उसे सोता हुआ ही पाया तो वापिस अभिभाविका यानि मृणाल के पास जाकर बोली, 'वह महाशय तो कोई पक्के अल्हड़ ही मालूम पड़ते हैं। देखो न, ८ बज गये पर अभी खर्राटे ही भर रहे हैं।'

मृणाल की पलकें झुकी हुई थीं, धीमे स्वर में बोली, 'सोने दो, मीनाक्षी ! उठाना मत। शायद बहुत थके हारे हों।'

मीनाक्षी गौर से मृणाल की मुखाकृति का अध्ययन कर रही थी। झुकी झुकी पलकें, मीठा और धीमा स्वर और उस स्वर में उस युवक के प्रति छुपी हुई इतनी सहानुभूति को लक्ष्य कर उसके होठों पर शरारत भरी मुस्कान खिल उठी।

आंखों से एक हल्का सा कटाक्ष करती हुई बोली, 'दीदी ! उनके सिरहाने बैठ जाऊं ताकि जब उठें, तो सीधे तुम्हारे पास ले आऊं ?'

मृणाल ने नजर उठाकर मीनाक्षी को देखा तो लजा कर पीठ करली और बोली, 'जा बाबा ! जैसी तू ठीक समझे, वैसे ही कर।'

और फिर जब मीनाक्षी हंसती हुई चली गई तो मृणाल ने अन्दर से अपने कमरे की चिटखनी बन्द कर ली और पलंग पर लेट गई।

एक वार फिर कल शाम से ले कर अब तक की घटनाओं को वह आंख मूंद कर याद करने लग गईं।

कल रात वह एकांत में कितना रोई थी। तीन वर्ष से भी अधिक समय बाद, कल संध्या को यूं पागलों की सी हालत में उसे महिम दिखाई दिया। कितना परिवर्तन हो गया था उसमें। महिम का सुकुमार सा चेहरा अब कितना वदल गया था। पीला और खुरदरा मुख, आंखें धंसी हुई और सूनी-सूनी जिनसे निराशा झलक रही थी। न मालूम कैसे गुजरे होंगे उसके ये तीन साल।

मृणाल सोचने लगी कि किस तरह वह कल संध्या को बड़ी मुश्किल से अपने को सम्भाल पाई थी। यहां तक कि उसकी वेचैनी को मीनाक्षी भी लक्ष्य न करने पाई।

उसे याद हो आया कि किस तरह कल महिम निकेतन लाये जाने पर बौखलाया हुआ, विभ्रान्त और चकित सा मीनाक्षी का आतिथ्य ग्रहण कर रहा था। उसे क्या पता था कि किवाड़ों की ओट में अभि-भाविका भी एक टक उसे देख रही थी--उसकी और मीनाक्षी, दोनों की नजर वचाकर।

मृणाल सोचने लगी कि मीनाक्षी के सामने कल वह कितनी संयत और गम्भीर सी वनी रही—केवल इस लिए कि मीनाक्षी को उसके अन्तर्द्वन्द का तनिक भी संकेत न मिले। उसका अभिनय कितना सफल रहा।

वह मीनाक्षी से वोली थी, 'यह युवक शिक्षित मालूम पड़ता है लेकिन शायद वेरोजगार होने के कारण दुःखी है। क्यों न प्रवन्धक के स्थान पर नियुक्त कर लें ? स्थान तो रिक्त है ही।'

मीनाक्षी आश्चर्य में वोली, 'किसी पुरुष को नियुक्त करोगी ? निकेतन का विधान क्या आज्ञा देगा ?'

वह अभिनय करती हुई सी गम्भीर और चिन्तनशील मुद्रा में वोली

थी, 'कहती तो तुम ठीक हो—पर दीवान साहब के शब्दों को भूल गई क्या कि मेरी इच्छा ही यहां का विधान है ? उन्हें मेरी सूझ-बूझ पर पूरा विश्वास है और मैं जो करने का प्रस्ताव रख रही हूँ, उसमें मुझे कितना अज्ञात प्रेरणा का हाथ मालूम होता है।'

मृणाल को स्मरण हो आया कि मीनाक्षी उसकी बातों पर अचम्भित हो चली थी मानो उसे यकीन नहीं हो रहा था।

उसे विश्वास दिलाने के लिए वह फिर बोली थी, 'कल सुबह उस युवक से बात कर निश्चय करेंगे।' और इसीलिए आज सुबह से वह मीनाक्षी को तीन बार महिम के पास भेज चुकी थी पर महिम अभी सो रही थी क्योंकि सारी रात उसकी जागरण में कटी थी। आंसू बहाते हुए और अतीत की स्मृतियों को ताजा करते हुए।

मृणाल सोचती जा रही थी कि तभी द्वार पर दस्तक सुनाई दी।

वह हड़बड़ा कर उठी और जल्दी से अपने सिर पर आंचल डाल कर उसने कुण्डी खोली।

सामने महिम के साथ मीनाक्षी खड़ी मुस्करा रही थी—क्षणिक और संयमित मुस्कान।

किवाड़ की ओट में खड़ी होकर मृणाल ने आंखों से ही मीनाक्षी को इशारा किया और मीनाक्षी ने तत्काल कमरे से एक कुर्सी उठाते हुए कमरे के बाहर बराण्डे में महिम के समुख रख दी।

'आप बैठिये। दीदी पर्दा रखती हैं—अन्दर कमरे से ही बात कर लेगी।' मीनाक्षी बोली! महिम चुपचाप बिना कुछ बोले कुर्सी में बैठ गया।

मृणाल का इशारा पाकर फिर मीनाक्षी बोली, 'आपको कष्ट देने का कारण मैं अभी स्पष्ट करती हूं—जरा पहले आपका परिचय पूछ लूं।'

महिम सोचता हुआ बोला, 'मेरा कोई परिचय नहीं है। आप अपना प्रयोजन बताइये।'

मीनाक्षी बीच में मृणाल की ओर देखती हुई प्रश्न करती गई पर महिम की ओर से उसे कोई उत्तर प्राप्त न हुआ सिवाय इसके कि वह निरुद्देश्य ही महिपुर चला आया। उसने अपना नाम बताने से भी इन्कार कर दिया। अन्ततः मीनाक्षी बोली, 'आप क्या प्रबन्धक का कार्यभार संभालना स्वीकार करेंगे ? यह निकेतन एक आदर्श ले कर स्थापित किया गया है। हमें ऐसे युवक की तलाश थी जो इसके आदर्शों के लिए जीवन दान दे सके।'

'क्या होता है यहां ?' कुछ क्षण मौन रहने के बाद उत्सुक सा महिम ने प्रश्न किया।

'निराश्रितों को अवलम्बन दिया जाता है। यहां इस समय अनुमानतः ३०० विधवा और निराश्रित स्त्रियों के जीवन के पुनर-निर्माण की व्यवस्था की जा रही है।'

महिम ने सुना तो सोचने लगा। बोला, 'यहां पहले कोई विद्यालय होता था—किसी विद्वान आचार्य के संरक्षण में ?'

'क्यों ?'

'वैसे ही पूछ रहा हूं। सुना था कि यहां के छात्र और छात्रायें विलक्षण प्रतिभा प्राप्त कर लेते हैं।'

'आपका अनुमान ठीक है पर अब प्रतिभा का मापदण्ड तर्क और साहित्यिक ज्ञान न होकर उन कामों में दक्ष होना रखा गया है जिनसे जीवन का वास्तविक संबंध है यानि भौतिक दृष्टि से उन्नत और समृद्ध जीवन का निर्माण करना।' महिम कुछ देर तक फिर सोचता रहा और बोला, 'लेकिन अचानक यूं आप मुझ पर विश्वास कर बैठी हैं—यह बात मेरी समझ में नहीं आई ?'

मृणाल ने महिम के शब्द सुने तो मीनाक्षी को सम्बोधित करती हुई स्वयं ही बोल पड़ी, 'मीनाक्षी ! इनसे कह दो कि अभी कुछ दिन ये हमारा अतिथ्य स्वीकार करें। निकेतन की गतिविधियों और आदर्शों का अध्ययन कर शायद इन प्रश्नोत्तरों की आवश्यकता जाती रहे।'

महिम ने अभिभाविका के शब्द सुने तो उसे लगा कि अभिभाविका के स्वर में विनीत दर्प छुपा हुआ था।

वह मृणाल को सुनाता हुआ बोला, 'मेरा प्रश्न सामयिक था। मुझे अतिथि का सम्मान देकर आपकी शिष्टता तो प्रकट होती है और उससे आपका मान भी बढ़ता है पर मुझे भी अपने लक्ष्य को स्वयं निर्धारित करने का अधिकार होना ही चाहिए।'

'यानी ?' मीनाक्षी ने प्रश्न किया।

'जीवन दान देने से पूर्व मुझे अपनी हर शंका का समाधान कर लेना उचित है।'

'आप अकेले हैं अभी जीवन में, या···?' मीनाक्षी झिझकती हुई बोली।

'मुझे खेद है कि मैं आपके प्रश्नों का उतर नहीं दूंगा' महिम बोला।

'फिर आपकी शंकाओं का समाधान कैसे हो ?' मीनाक्षी हंस पड़ी।

मृणाल ने मीनाक्षी के शब्द सुने तो वह कांप उठी। उसे मीनाक्षी का प्रश्न असंगत और अशिष्ट लगा। वह क्रोध से लाल हो उठी।

गर्ज कर बोली, 'मीनाक्षी ! मर्यादा के अनुकूल बातें करो। यदि इन्हें हमारा आतिथ्य स्वीकार नही तो इन्हे विदा करने में दुःखी होने का कोई कारण नही है। किसी पर विश्वास करने में आत्मा की प्रेरणा होती है। इन्हे निकेतन का प्रबन्ध सौपने में हमें भी केवल अपनी आत्मा से प्रेरणा मिली थी। तर्क से विश्वास की परख करना कहां तक उचित है ?' मीनाक्षी ने सुना तो वह डर सी गई। उसे लगा कि

वह वास्तव में आवश्यकता से अधिक खुल कर बात करने लगी थी। और महिम ? उसे अभिभाविका बहुत ही अनुशासित और बुद्धिमति स्त्री प्रतीत हुई जो थोड़े शब्दों में बात करना पसन्द करती थी। वह कुछ प्रभावित सा हुआ।

'मैं कार्य कर देख लेता हूं कि यह भार मैं संभाल सकूंगा या नहीं' महिम धीमे स्वर में बोला।

मृणाल ने सुना तो उसकी आँखों की पलकें एक बार कुछ क्षण के लिए वन्द हो गई। कभी कभी ऐसा भी होता है कि हृदय में किसी वस्तु की चाह के होते हुए भी, उसे प्राप्त करने की दिशा में हमारे प्रयत्न प्रर्याप्त नहीं होते क्योंकि लोक—लाज, संसारिक व्यवहार और कभी २ स्वाभिमान ही अंकुश बन कर हमारे व्यवहार में अद्‌भुत कृत्रिमता का समावेश कर हमें इच्छा के विपरीत कार्य करने को मजबूर कर देता है। परिणामस्वरूप कई ऐसी घटनाऐं भी घट जाती हैं जो हमें अप्रिय होती हैं, पर हमें मजबूर हो उनका स्वागत करना पड़ता है। मृणाल को भी महिम के साथ बातें करते हुए कुछ ऐसा विश्वास हो चला था कि वह शायद ही प्रबन्धक का कार्यभार संभालना स्वीकार करे। आग्रह करने की स्थिति में वह थी नहीं। अतः उसे महिम से बिछुड़ जाने की पूरी सम्भावना हो चली थी। पर जब महिम ने बिना अधिक आग्रह के कार्य करना स्वीकार कर लिया तो वह अन्दर से अपने भाग्य के प्रति कृतज्ञ हो उठी। इसी अनुभूति पर उसकी पलकें कुछ देर के लिए बन्द रहीं।

वह कम्पित स्वर में मीनाक्षी को संबोधित करती हुई बोली, 'इन्हें निकेतन का निरीक्षण करवा दो और उसके बाद इनको अपने उत्तरदायित्व से अवगत करा दो।'

मीनाक्षी और महिम चले गये तो फिर मृणाल अपने कमरे के किवाड़ वन्द कर पलंग पर लेट गई।

वह सोचती चली गई। आद्योपांत अपने जीवन पर उसने एक विहंगम दृष्टि डाली—तब जब वह बच्ची थी और अपनी माँ के साथ घर २ वर्तन मांझने जाती थी। उसके बाद फिर जब वह जवान हो चली और उसकी मां उसे अकेला छोड़ संसार से कूच कर गई। फिर विवश होकर उसका वैश्यालय में जीवन व्यतीत करना—कुछ वर्षों में बाद महिम से उसका परिचय और उसका पुनरोद्धार। मृणाल को वह दिन याद आ गये जब वह महिम की पत्नी बन कर रहती थी। कुछ ही महिने तो वह उसकी पत्नी बन कर रही, पर वह थोड़ा सा समय अपने गर्भ में कितने बड़े परिवर्तन को छुपाये हुए था। उसी समय ही तो उसे अपने पराये का ज्ञान हुआ। मां की मृत्यु के उपरांत वह विभ्रान्त सी जीवन के मोड़ों को पार करती चली गई। न उसका कोई उद्देश्य था न आस्था ही। जीवन वह नाटक बन चुका था जिसमें अनुराग और विराग, दोनों प्रदर्शित करने होते थे, चाहे अन्दर से हृदय और मन ऐसी स्थितियों को स्वीकार करता हो या नहीं। वैश्यालय के प्राणी हृदय और मन से मृतक होते हैं, केवल तन लेकर जीवन लीला अभिनीत करते हैं। ऐसी जिन्दगी में फिर यह एक काल्पनिक बात ही तो थी कि उसकी भावनायें मुखरित हो उठतीं। महिम के सम्पर्क में आने पर उसे एक झटका सा लगा, मानों उसे उसने स्वनावस्था से जगाया हो। उसे आत्मीयता की अनुभूति हुई और फिर दुनिया के क्रियाकलापों की। वैश्यालय में रहने पर उसके जन्मजात संस्कार मिट से चले थे। महिम के सहवास में उन संस्कारों को वापिस लाने के लिए एक संघर्ष सा चल पड़ा जिसमें एक ओर तो उन दोनों का पारस्परिक प्रेम था और दूसरी ओर उन के अलग २ विचार और अलग अलग मान्यताएं। मृणाल को याद हो आया उन दिनों का तीव्र मतभेद जिसकी आंच में उनका प्रेम आखिर एक दिन दम सा तोड़ बैठा और सब कुछ भाग्य पर छोड़ महिम दिल्ली से

अपने गाँव चला आया था–दूसरी शादी करने के लिए। सोचते सोचते मृणाल की आँखें आँसुओं से तर हो गई। उसने वह रात कितनी यातना सहते हुए काटी थी—यह शायद महिम नहीं जानता था। महिम को प्राप्त करने का उसने एक प्रयत्न और किया था और वह उसके गांव की ओर चल पड़ी थी। पर मार्ग में ही उसे महिम के व्याह के समाचार ने उसकी रही सही आशाओं पर तुषारपात कर दिया था। उस समय उसकी मन और हृदय की क्या दशा थी, यह भी उसके अतिरिक्त संसार में कोई नहीं जानता था। वैश्या के संस्कारों को मिटाते मिटाते जब वह एक गृहणी के से संस्कारों को पकड़ने की होड़ लगा बैठी थी, ठीक उसी समय उसका गृहस्थ चौपट हो गया। उसे अपनी स्थिति उस समय ठीक वेसी ही लगी जैसी गन्ने के रस से भरे हुए मटके को लिए उस कल्पित व्यक्ति की सुनते हैं जो मन ही मन कल्पना के ऊँचे वितान बनाता हुआ लुढ़क कर अपना मटका फोड़ देता है और जिसके इस प्रकार सारे स्वप्न मिट्टी में मिल जाते हैं।

मृणाल सोचती चली गई। उसके वाद कैसे आशाओं के विपरीत उसके भाग्य ने पल्टा खाया। उसके सामने दीवान महिधर और आचार्य के चित्र आ गये। कितने विशाल थे दोनों—मानों दीवान साहब ने अपने कन्धों में विश्व की आधारशिला थाम रखी हो और आचार्य अपने मस्तिष्क में उस विश्व का मानचित्र बनाने के लिए अटूट साधना में लगे हों। दोनों का जीवन कितना कर्मठ, निस्वार्थ और आस्थापूर्ण था।

और अव वह स्वयं? मृणाल ने अपने से ही प्रश्न किया। वह अनेकानेक अनुभूतियों का पुंज मात्र वन गई थी। उसके अन्दर अब चेतना आगई थी। वह अब न केवल अपने ही संवन्ध में ठीक सोच विचार कर सकती थी, अपितु विश्व में चल रही समस्त गतिविधि-

यों से अवगत थी, उन पर विवेचना करने की स्वस्थ मानसिक दशा में। उसकी अब अपनी निश्चित धारणायें, निश्चित मान्यतायें और निश्चित दृष्टिकोण था। केवल लक्ष्य अपना चुना हुआ न था यद्यपि उस लक्ष्य में उसे अब पूर्ण आस्था हो चली थी। वह अपने आप को अब उन आदर्शों की पूर्ति के लिए अर्पित कर चुकी थी जो दीवान महिधर और आचार्य निर्धारित कर गये थे। वह आदर्श था—विश्व को कुटुम्ब समझते हुए व्यक्तिगत मोह और स्वार्थ की सीमा से ऊपर उठकर कार्य करना। निकेतन की स्थापना इसी आदर्श को क्रियात्मक रूप देने की दिशा में एक पग था। वह जो तीन साल तक आचार्य से दीक्षा लेती रही, वह इसी अनुष्ठान की तैयारी थी। अब उसका लक्ष्य वही था जिसकी दीवान महीधर और आचार्य उससे आशा रखते थे। मृणाल को लगा कि इस लक्ष्य की सीमायें बड़ी व्यापक थीं जिनकी पूर्ति के लिए उसे अब प्रयत्नशील रहना है। अब उसे वैयक्तिक हित नहीं सामूहिक हित देखना है—चाहे उससे उस का जीवन वीरान ही क्यों न अनुभव हो। अब उसका जीवन नियंत्रण और साधना का जीवन था—ऐसी साधना जिस में समूची स्त्री जाति का उत्थान निहित था। मृणाल ने यह लक्ष्य स्वीकार किया, इसलिए नहीं कि उसे बाध्य किया गया, अपितु इसलिए कि जो पीड़ा अन्दर से नित्य उसे कचोटती रहती थी, उसका समाधान इस लक्ष्य में था। दलित स्त्री समाज में उसे अपना प्रतिविम्ब दिखाई दिया जिस पर बड़े २ धब्बे थे—कुष्ट रोग के से। वह उन धब्बों को मिटा डालना चाहती थी ताकि उसे अपना प्रतिबिम्ब भी स्वच्छ नजर आये और इसी लिए आज निकेतन में निराश्रत विधवाओं और भ्रष्ट वेश्याओं को स्वावलम्वी बनाने का महान अनुष्ठान चल रहा था। आज निकेतन में विधवायें और पथ भ्रष्ट युवतियां कला-कौशल का प्रशिक्षण प्राप्त कर रही थी और मृणाल को लग रहा था कि वे स्त्रियाँ नहीं, बल्कि जैसे वह स्वयं अपना भाग्य का निर्माण कर

रही हो—पुरुष की दासता से मुक्त होने का मार्ग प्रशस्त कर रही हो ताकि उसके गोरे मुखड़े पर—स्त्रीं समाज के निर्मल स्वरूप पर फिर वे काले धव्वे न दिखाई दे। मृणाल सोचती कि स्त्रियों को बलात वैश्यालय का जीवन व्यतीत करना पड़ता है इसीलिए कि स्त्री समाज पराश्रित है। यदि उसे अवलम्बन दिया जाए तो कैसे देश के अन्दर ये चकले फिर पनप सकें—?

मृणाल सोचते २ अपने लक्ष्य और अपने अनुष्ठान पर मुग्ध हो गौरव अनुभव करती। उसके अन्दर से आवाज आती कि निकेतन को माध्यम बना कर वह स्त्री जाति को सवल बनाये ताकि उसका अवला का स्वरूप केवल इतिहास की गाथा बन कर ही रह जाये—वह आजीवन इसी संकल्प को चरितार्थ करने में जुटी रहेगी।

तभी मृणाल को स्मपर्ण हो आया कि कुछ ही देर पूर्व उसने महिम को प्रवन्धक के पद पर नियुक्त किया है। वह कांप उठी। इस नियुक्ति की पृष्ट-भूमि में क्या उस का वैयक्तिक स्वार्थ नहीं? यदि नहीं, तो फिर उसकी नियुक्ति से उसके किन संकल्पों की पूर्ति में योग मिलने की उसे आशा थी? मृणाल को लगा कि किसी ने जैसे उसे चोरी करते हुए पकड़ लिया हो। आखिर क्यों उसने महिम को नियुक्त किया? क्यों उसने उसे चन्द्रभागा के तट से उठवाकर निकेतन में आश्रय दिया? स्पष्ट था कि वह अभी वैयक्तिक मोह से मुक्त नहीं हुई थी और अन्दर हृदय की पर्तों में उन भावनाओं का पोषण करती चली आ रही थी जो उसके निर्दिष्ट संकल्पों से टकरा कर फिर उस के जीवन को अशान्त बना सकते थे। मृणाल को स्मरण हो आया कि एक बार जब वह स्वर्गाश्रम में आचार्य से दीक्षा लेती थी तो मीनाक्षी ने उससे महिम से मिलने की सम्भावनाओं पर प्रश्न किया था। तव उसने बड़े संयम से उत्तर दिया था कि इस जीतन में महिम के साथ उसका मिलन असम्भव है। अब यदि मीनाक्षी को पता चल जाये

कि प्रबन्धक के पद पर नियुक्त व्यक्ति और कोई नहीं बल्कि महिम है, तो वह क्या सोचेगी ?

मृणाल सोचने लगी कि महिम को कौन-कौन व्यक्ति पहचान सकता है ?

दीवान महिधर अथवा आचार्य ? नहीं, वे नाम से परिचित हैं— सूरत से नहीं। दीवान साहब का वह आवारा दत्तक पुत्र ? हां, वह तो महिम की शादी में गया था। जरूर पहचानता होगा। लेकिन उस का निकेतन में आना वर्जित किया जा सकता है। दुष्ट कहीं का। इतने महान व्यक्ति का दत्तक पुत्र हो कर भी उसकी आन पर दो बार आक्रमण कर बैठा।

मीनाक्षी ? उसने भी केवल महिम का नाम ही सुन रखा है, अभी तक वह पहचान नहीं पाई क्योंकि महिम ने अपना नाम नहीं बतलाया था। पर यदि कभी वह अपना पूरा परिचय दे गया तो उस समय यह रहस्य, रहस्य न रह सकेगा। मृणाल अपने से पूछ बैठी, 'तो क्यों मैं इसे रहस्य रखूं। यह कमजोरी ही तो है--बल्कि कमजोरी नहीं, चोरी है। यदि स्वयं महिम को पता लग जाये कि निकेतन की अभिभाविका और कोई नहीं, बल्कि उसी की परित्यक्ता है, तो उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी ?

मृणाल सोचते-सोचते अपने को पागल सा अनुभव करने लग गई। उस के अन्दर एक आवाज आती कि महिम को नियुक्त कर उसने अच्छा नहीं किया--कि अभी भी उसे प्रबन्धक के पद से मुक्त कर दे— कि अब महिम से उसका कोई व्यवहारिक सम्बन्ध नहीं रहे--कि उसे अपना लक्ष्य देखना है। तभीं अन्दर से एक मीठी दबी हुई गुदगुदी उठती और वह सोचती कि महिम को नियुक्त कर कौना सा वह विचलित होने जा रही है। वह उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखेगी। वह अभिभाविका ही रहेगी और महिम प्रबन्धक ही।

कई दिनों तक मृणाल के अन्दर यह द्वन्द चलता गया। वह अस्वस्थ हो उठी पर उससे कोई निर्णय न हो पाया। उसने यथा-शक्ति प्रयत्न किया कि उसे महिम की उपस्थिति का आभास न हो पर वह असफल रही। मीनाक्षी से कभी भी वह विस्तृत रूप में महिम के सम्वन्ध में बात नहीं करती, केवल कार्य सम्बन्धी बातों तक ही चर्चा सीमित रहती। पर अन्दर ही अन्दर उसकी अशान्ति बढ़ती गई। उसका दिल करता कि वह मीनाक्षी से पूछ तो ले कि प्रबन्धक ने अपना कुछ परिचय दिया है या नहीं--कि प्रबन्धक का स्वभाव कैसा है-कि वह प्रसन्न तो दिखाई देते हैं। पर मृणाल घुट-घुट कर रह जाती। एक शब्द भी कभी उसके मुख से न निकल सका। एक दिन स्वयं मीनाक्षी ही बोली, 'दीदी ! तुम्हारी सूझ-बूझ का लोहा मानती हूं। तुम ने प्रवन्धक नियुक्त नहीं किया है, बल्कि पुरुष के रूप में स्वयं अपने को ढूंढ लिया है।'

मृणाल सुन कर कांप गई। उसे लगा कि प्रवन्धक का रहस्य खुल गया है, तभी तो मीनाक्षी कटाक्ष कर रही थी। उसने सरसरी दृष्टि मीनाक्षी पर डाली मानो मीनाक्षी की भाव भंगिमाओं से पता कर सके कि उसका अनुमान सही है या नहीं। पर मीनाक्षी के मुख पर कोई वैसे भाव नहीं थे। कृत्रिम गम्भीर स्वर में बोली, 'खैर तो है मीनाक्षी ? प्रवन्धक की इतनी प्रशंसा ?'

'इतनी लग्न और तत्परता है काम में, कि लगता है जैसा वह स्वयं न जाने अपना भी कोई संकल्प ले कर आये हों। मुझे तो समझाने बुझाने की कोई गुजांइश ही न रही। पिले रहते हैं काम पर।'

मृणाल ने सुना तो कुछ देर चुप हो सोचती रही।

फिर हँसती हुई बोली, 'मैं तो सूरत देखते ही भांप गई थी कि व्यक्ति निष्ठावान और कर्मठ है।'

मीनाक्षी भी तनिक उत्तर में हंस दी पर बोली कुछ नहीं।

मृणाल को मीनाक्षी के अल्प भाषण पर अन्दर ही अन्दर बड़ा गुस्सा आया । पर प्रत्यक्ष में शान्त ही बनी रही ।

उसने फिर दूसरा प्रश्न किया, 'क्या नाम है इनका' ?

मीनाक्षी ने इस समय नाक भों सिकोड़ लिये । बोली, 'हैं कुछ रूखी ही तबीयत के। कई बार पूछ चुकी पर अभी तक नाम न बताया ।'

मृणाल तत्काल बोल उठी, 'हठ करने की आवश्यकता ही क्या है । 'प्रबन्धक' के रूप में ही संबोधित कर लिया करो ।'

'तो मैं क्या इनके घुटने पकड़ने चली हूं ?' मीनाक्षी उपेक्षा भरे स्वर में बोली । मृणाल मीनाक्षी के बात करने के ढंग पर हंस दी । बोली, 'आजकल तू बड़ी अल्पभाषी हो गई है । मिजाज भी तुनका हुआ रहता है । क्या नौटीयाल भाई साहब की याद तो नहीं सता रही ? यदि ऐसी बात है तो देहरादून भेज देती हूँ—कुछ दिनों के लिए ।'

मीनाक्षी को मृणाल का अनुराग भरा मजाक बड़ा अच्छा लगा पर प्रत्यक्ष में उलहाना देती हुई बोली, 'मजाक कर मुझे सखी का मान दे रही हो, दीदी ! पर जानती हो सखा भाव में मैं यदि कुछ बोल पड़ी तो तुम गुस्सा हो जाओगी' ?

मृणाल विनोद करती हुई बच्चों के से स्वर में बोली, 'अच्छा चिढ़ा के दिखा । देखती हूँ कितना गुस्सा दिला सकती है ।'

मीनाक्षी की चपलता उभर आई पर संयम रखती हुई उसने प्रश्न किया "तो उस दिन तुम्हें क्या हो गया था जिस दिन प्रबन्धक के समक्ष तुम मुझे फटकार दे बैठी ?'

मृणाल ने सुना तो वह चकित रह गई । अब उसे पता चला कि क्यों तब से मीनाक्षी सखा भाव छोड़ सेविका का सा अभिनय करने लगी थी । वह दुःखी हो उठी । मीनाक्षी की बांह खींच कर उसने

मीनाक्षी को छाती से लगा लिया और बोली, 'इतनी सी बात पर रूठ गई थी ? और फिर मुझे बताया भी नही ?'

मृणाल का स्वर आर्द्र था। मीदाक्षी ने उस स्वर को लक्ष्य किया और पश्चाताप के स्वर में बोली, 'तुम दुःखी हो उठी हो, दीदी ?'

'तुम्हें अपमान की अनुभूति हुई है, मीनाक्षी ! मेरे लिए इस से अधिक दु.ख की और क्या बात हो सकती है ?'

मीनाक्षी मृणाल से लिपट गई और फिर उस दिन उनकी बातें वहीं पर समाप्त हो गई।

लेकिन एक सप्ताह बाद मीनाक्षी फिर महिम के संबंध में मृणाल से बाते करने लग गई। बोली, 'प्रबन्धक कर्मठ तो है पर कभी २ सीमा से बाहर चला जाता है।'

मृणाल को खटका हुआ कि कहीं महिम ने किसी लड़की से छेड़-छाड़ न कर दी हो। आखिर यह अवगुण प्राकृतिक ही तो था। वह सशंकित हो मीनाक्षी की ओर देखने लग गई।

मीनाक्षी बोली, 'महोदय ने यह निरूपण प्रस्तुत किया है। पढ़ लो इसे। न जाने कितनी अलोचना की है हमारी।' कहते हुये मीनाक्षी ने एक फाइल मृणाल के समुख पटक दी।

मृणाल ने सारे कागज पढ़े और गम्भीर हो सोचने लगी। उसके मुख में चमक थी। निरूपण में महिम ने मासिक आय व्यय का हिसाब देते हुये कुछ बातों पर कड़ी टिप्पणी दी थी—कि जितना भी सामान निकेतन में समय २ पर क्रय किया जाता रहा, वह ऊंचे दामों पर रहा और हिसाब किताब ठीक २ ढँग पर अंकित नहीं हुआ। महिम ने इसका कारण अभिभाविका की उदारता अथवा अनुभवहीनता बताया और साथ में सुझाव दिया कि इन कामों को सुचारु रूप से चलाने के लिये एक क्लर्क की भी निपुक्ति की जाये। महिम ने मासिक व्यय में कटौती के भी कुछ प्रस्ताव रखे जिनका आशय निकेतन के प्रशिक्षणार्थियों के रहन

सहन में सादगी और भोजन व्यवस्था में सात्विकता लाने से था।

मृणाल बोली, 'प्रवन्धक द्वारा प्रस्तुत किये गये निरूपण में सचाई है, मीनाक्षी ! मैं कल्र्क की नियुक्ति का आदेश दिये देती हूँ। पर प्रशिक्षणार्थियों के रहन सहन और भोजन व्यवस्था पर मुझे अभी और सोचना है।'

मीनाक्षी बोली, 'तो तुम्हें निरूपण कुछ भी आपत्तिजनक नहीं लगा ?'

मृणाल गर्दन हिलाते हुए हंस पड़ी।

मीनाक्षी बोली, 'तो इसे खूब सिर पर चढ़ाओ। इतना कि एक दिन वह स्वयं अभिभावक बन जाए, और तुम एक मामूली......।'

मृणाल हंसती हुई बोली, 'किसी का मूल्यांकन उसकी क्षमता को देखकर किया जाना चाहिए, मीनाक्षी ! प्रबन्धक से कह दो कि वह संध्या की गोष्ठियों में भी मेरे स्थान पर स्वयं सम्मिलित हो।'

मीनाक्षी आश्चर्य में देखती ही रही।

दूसरे दिन शाम को निकेतन के प्रांगण में ३००-४०० प्रशिक्षणार्थियों को संबोधित करता हुआ महिम 'जीवन और उसकी मधुरता' पर भाषण दे रहा था। संध्या के समय ऐसे भाषणों की नित्य ही व्यवस्था की जाती थी। प्राय: मृणाल ही इस दिनचर्या को निभाती थी या फिर कभी विशेष निमन्त्रण पर पास ही के विद्यालय से आचार्य आते थे।

महिम ने निकेतन में चल रहे महा-अनुष्टान की भूरी २ प्रशंसा की। फिर जीवन का लक्ष्य समझाया और फिर शिक्षा से जीवन के लक्ष्य का सम्वन्ध स्पष्ट किया। मीनाक्षी उसी के पास एक ओर बैठी हुई महिम के सार गर्भित भाषण को सुन रही थी और मृणाल अपने कमरे की खिड़की पर खड़ी।

महिम बोलता गया, 'वैसे तो यह प्रकृती का विधान ही रहा है कि जब समाज परिवतन और परिवर्द्धन काल में से गुजरता है तो उसकी सामाजिक मान्यतायें, संस्कृति और सामान्य दृष्टिकोण आन्दोलित हो

समस्त अंकुशों की उपेक्षा कर मोड़ लेते हैं। प्रत्येक क्षेत्र में मानव नवीन परीक्षणों का अवलम्बन लेता है, बल्कि यूं कहना चाहिए कि नवीन परीक्षणों के प्रति उसकी जिज्ञासा बढ़ती जाती है। मानव की यह प्रवृत्ति उसके सर्वांगिक विकास के लिये लाभप्रद ही रही है और निःसन्देह यह प्रवृत्ति प्रगतिशीलता की द्योतक है। पर साथ ही मानव जाति के क्रमिक विकास का इतिहास यह तथ्य भी हमारे समक्ष प्रस्तुत करता आया है कि नवीन परीक्षणों के साथ मनुष्य की चेतना शक्ति भी सतत इस बात के लिये प्रयत्नशील रही है कि हमारी बौद्धिक क्रान्ति हमारी मान्यताओं और संस्कृति के मूल स्वरूप को नष्ट न करें। अतः प्रत्येक क्षेत्र में सन्तुलन रखने का प्रयत्न भी उसी आस्था के साथ निभाया जाता रहा, जिस आस्था और उत्साह के साथ नवीन परीक्षण सम्पन्न होते गये।'

मोहन बोल ही रहा था कि उसकी दृष्टि बांई ओर खिड़की पर गई, जहां थोड़ा आंचल किये अभिभाविका खड़ी उसका भाषण सुन रही थी। वह और आवेग में बोला, 'आज दूसरे देशों में शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परीक्षण हो रहे हैं। यद्यपि इस अभागे देश में ये परीक्षण बहुत ही सीमित पैमाने पर चल रहे हैं तो भी आज समाज के स्तम्भ, शिक्षा के उद्देश्यों को समझने का प्रयत्न करने लग गये हैं। सम्भवतः वह समय दूर न रहे जब वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की जाये।' निकेतन में चल रहे अनुष्ठान की ओर संकेत कर वह बोला, 'यह प्रशिक्षण तुम्हें आजीविका दे कर अवलम्बन प्रदान करेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर यह तुम्हें प्रकाश भी दिखाये—तुम्हारे मानसिक क्षितिज को आलोकित कर सके, इसमें सन्देह है। मेरा विश्वास है कि निकेतन के आदर्श महान होते हुए भी अधूरे हैं क्योंकि यहां का प्रशिक्षण संस्कारों की उपेक्षा कर अवलम्बन पर ही जोर देता आया है। शिक्षा के क्षेत्र में यह नवीन परीक्षण तो है, पर इसमें सन्तुलन बनाये रखने का मुझे कहीं भी संकेत दिखाई नहीं

देता। परिणाम यह होगा कि भौतिक उन्नति में बौद्धिक सूझ बूझ का योग न मिलने से तुम्हारा व्यक्तित्व उच्छृंखल रह जायेगा।'

महिम अभिभाविका को सुनाता हुआ सा बोला, 'शिक्षा का मूल उद्देश्य मानसिक विकास रहा है यानि शिक्षार्थी के ज्ञान तन्तुओ को चेतना देकर विकसित करना और साथ ही साथ उनका मार्जन। प्राचीन भारत में शिक्षा के इन उद्देश्यों में पूर्ण निष्ठा और आस्था रही है। परिणामस्वरूप छात्र शिक्षकों से ज्ञान प्राप्त कर प्रकाशपुंज सिद्ध हुए। भारत ने महान दार्शनिकों को जन्म दिया। काव्य और कला के क्षेत्र में अद्वितीय ख्याति पाई। उनके विचारों में मौलिकता थी। पर कालान्तर शिक्षा के इन मूल उद्देश्यों की उपेक्षा की जाने लगी और जब 'मैकाले' की शिक्षा प्रणाली का श्रीगणेश हुआ तो इस लक्ष्य की पूर्ण रूप से आहुति दे दी गई। आज मानसिक चेतन एक प्रवंचना बन गई—तथा कथित शिक्षित वर्ग उच्छृखल, निरुद्देश्य और मार्ग भ्रष्ट होकर समय की प्रगति के प्रति उदासीन हैं। परिणाम हमारे सामने है। राष्ट्रीय भावनाओं का ह्रास—विकास योजनाओं के प्रति उदासीनता और नैतिक पतन सार्वजनिक जीवन की राम कहानी बने हुये हैं। यदि कोई पूछे, कि यह सब क्यों? तो एक ही उत्तर है कि हमारी बुनियाद गलत पड़ी हुई है—हमें गलत शिक्षा मिली है—राष्ट्र के नागरिक सच्चे अर्थों में शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाये।

महिम का भाषण समाप्त हुआ तो उसने देखा कि अभिभाविका खिड़की से जा रही थी।

गोष्टी समाप्त हो चुकी थी।

महिम को संबोधित करती हुई मीनाक्षी बोली, 'आप या तो कोई नेता हैं अथावा समाज सुधारक, वरना आपकी वाणी में इतनी आग कहां से आ जाती?'

महिम मुस्करा दिया। दर्प भरी सी मुस्कान थी उसकी। बोला, 'न

मालूम अभिभाविका की क्या प्रतिक्रिया हो, मेरे भाषण पर क्योंकि मैंने निकेतन के कार्यक्रम और लक्ष्य पर आक्रमण किया था।'

मीनाक्षी हंस पड़ी, बोली, 'दीदी बहुत ही माननी स्त्री है। किसी के भाषणों से वैसे कम ही प्रभावित होती है, क्योंकि उन्होंने भी बड़ी पैनी बुद्धि पाई है। तर्क और विवेचना उन्हें भी प्रिय है। पर न मालूम क्यों वह तुम्हारे आक्रमण से परास्त हो जाती हैं।'

महिम उत्सुक हो बोला, 'पहली ही वार तो मैंने भाषण दिया है, विजय और पराजय का अभी प्रश्न ही कहां उठता है। वैसे उनसे अभी बात करने का अवसर भी प्राप्त नहीं हुआ।'

'ठीक है, पर तुम्हारा वह निरूपण? क्या भूल गये? दीदी कुछ भी न बोल सकी।'

महिम खिलखिला कर हंस पड़ा, बोला, 'मालूम पड़ता है, तुम सब छोटी मोटी बातों का हिसाब रखती हो। बताओगी यह क्यों?'

'यह मेरी रुचि का प्रश्न है, महाशय! बता सकते हो कि तुम्हें यूं मुझे कुरदने का क्या अधिकार है?' कहती हुई मीनाक्षी भी खिलखिला कर हंस पड़ी।

महिम मीनाक्षी की चपलता देख दंग रह गया। उसने अपने से मन ही मन प्रश्न किया 'यह तो अभिभाविका की अनुचर है—अभिभाविका कितनी कुशाग्र बुद्धि की होगी।'

और महिम को दूसरी संध्या को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया। महिम फिर व्याक्यान देने के लिये प्रांगण में जाने लगा तो मीनाक्षी आई और बोली, 'आज दीदी स्वयं प्रशिक्षणार्थियों को संबोधित करेंगी। आप मेरे साथ आइयेगा।'

'कहाँ?'

'जहां मैं ले जाऊं। दीदी की यही आज्ञा है' कहती हुई मीनाक्षी महिम को मंच की पीठ की ओर एक ऐसे स्थान पर ले आई जहां एक

कुर्सी लगी हुई थी।

'आप कुर्सी पर बैठिये, मैं नीचे दरी में बैठ जाऊंगी।' मीनाक्षी बोली।

'लेकिन अकेले मेरे लिये ही कुर्सी क्यों ?'

'दीदी की यही आज्ञा है' मीनाक्षी बोली।

सामने मृणाल मंच पर आ कर व्याख्यान देने को तैयार हुई तो महिम सकुचा कर कुर्सी पर बैठ ही गया। वह अभिभाविका का मुख तो न देख सका पर फिर भी उसने अनुमान लगा लिया कि अभिभाविका अद्वितीय सुन्दरी और यौवना थी।

वह दत्त चित्त हो अभिभाविका का व्याख्यान सुनने लगा। अभिभाविका का स्वर पतला, मधुर और शब्द नपे तुले और सार गर्भित थे।

मृणाल बोली, 'शैक्षणिक संस्थाओं का औचित्य परिणामों से आंका जाना चाहिये न कि बातों से। इस देश का यही दुर्भाग्य रहा है कि यहाँ बातूनियों को अधिक प्रतिष्ठा मिली है, बजाय कि काम करने वालों को। समाज की शक्ति का स्रोत सृजनात्मक कार्यों में निहित है न कि वक्तृता और आलोचना में। पहले किसी चीज का अस्तित्व में आना आवश्यक है, उसके परिमार्जन की आवश्यकता बाद में पड़ती है वरना वह परिमार्जन ठीक वैसा ही है जैसा कि जूतों का अविष्कार करने से पूर्व पौलिश का आविष्कार करना है। संस्कार आवश्यक हैं, पर ठीक वैसे ही जैसे मकान बनाने के बाद उसमें रंग रोगन की आवश्यकता होती है। प्राथमिकता अवलम्बन की है, संस्कार बाद में आते हैं।'

महिम मृणाल के भाषण को सुन रहा था। उसे लगा कि मानो अभिभाविका प्रशिक्षार्थियों को सम्बोधित नहीं कर रही थी, बल्कि जैसे उसके पहले दिन के भाषण का ही उत्तर दे रही हो।

मृणाल बोलती गई, 'शिक्षा का सर्व प्रथम उद्देश्य अवलम्बन प्रदान

करना है, यानि छात्रों को इस योग्य बनाना कि विद्यालय से मुक्त होने पर उन्हें याचक की सी वृति अपनाने पर बाध्य न होना पड़े, अपितु उन्हें अपनी सृजन शक्ति पर इतना विश्वास रहे कि एक स्वाभिमानी नागरिक की भांति वे जीवन यापन कर सकें। छात्रों में ऐसी सृजन शक्ति का समावेश तभी किया जा सकता है जब उन्हें प्रावैधिक शिक्षा हस्त कौशल अथवा विज्ञान सम्बन्धी जानकारी दी जाये। यह उद्देश्य आज सर्वथा उपेक्षित है और केवल इसी लिए बेरोजगारी राष्ट्रीय जीवन में भयंकर महामारी बनी हुई है। विकास योजनायें अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पा रहीं, क्योंकि उन योजनाओं को क्रियान्वित करनेके लिए राष्ट्र के पास सच्ची जन शक्ति का अभाव है। आज के स्नातक जीवन के कल्याण के लिए अपना योग नहीं दे पा रहे, क्योंकि वे कर्ल्की करने के उद्देश्य से स्नातक बने हैं अथवा उन्होंने केवल विवेचना और साहित्य चर्चा करनी सीखी है। उन्हें उचित प्रशिक्षण नहीं मिला।'

मृणाल बोलती गई, 'निकेतन एक निश्चित लक्ष्य ले कर स्थापित हुआ है। वह लक्ष्य वकील और वैरिस्टर, दार्शनिक और कवियों को पैदा करना नहीं, बल्कि वैज्ञानिक, इंजीनियर आदि जन शक्ति के मूल स्त्रोतों को प्रतिष्ठा देना है। निकेतन अभी शैशव-अवस्था में है और अभी इन लक्ष्यों की पूर्ति उसके लिए स्वप्न मात्र है। पर यह विश्वास कि सतत संघर्ष और सच्ची लग्न स्वप्न को भी वास्तविकता में परिणित कर देती है—हमें प्रोत्साहन देता रहेगा और निकेतन एक दिन अपना लक्ष्य प्राप्त कर सच्चे अर्थों में तथा कथित नवीन परीक्षणों का सूत्रपात कर शिक्षा के क्षेत्र में मार्ग प्रदर्शन करेगा।'

मृणाल गम्भीर स्वर में बोली, 'निकेतन में किसी भी विषैली विचारधारा के प्रवेश को सहन नहीं किया जायेगा। यहां की नीतियों के निर्माण में परामर्श अवश्य आमंत्रित है, पर प्रचार की आज्ञा नहीं होगी, क्योंकि यहां प्रशिक्षण वे अभागिन बहनें पाती हैं, जो संस्कारों

के अभाव में नहीं, बल्कि अवलम्बन के अभाव में शोषित होती रही हैं। यहाँ उनके नव निर्माण का महान अनुष्ठान चल रहा है। उस अनुष्ठान में हस्ताक्षेप महापाप समझा जायेगा।'

मृणाल का भाषण समाप्त हो चुका और वह चली गई तो महिम विक्षुब्ध हो खोखली निगाहों से देखता ही गया। उसे लगा कि मानों अभिभाविका के भाषण के उपरान्त उसके पिछले दिन का भाषण अर्थहीन सा हो गया। उसने कल्पना भी न की थी कि अभिभाविका उसके विचारों का इतने कठोर शब्दों में खण्डन करेगी। उसने अनुभव किया कि पिछले दिन के भाषण से उसने अपने और अभिभाविका के मध्य वि-ारों के शीत युद्ध का सूत्रपात कर दिया था। अभी तक उस का समस्त ध्यान निकेतन के प्रबन्ध की ओर केन्द्रित था, पर अब वह महसूस करने लगा कि अभिभाविका के कड़े प्रतिवाद ने उसका ध्यान निकेतन के आदर्श की ओर अधिक आर्कषित कर दिया था। आदर्शो का चिन्तन उसकी अधिकार परिधि से बाहर होते हुए भी अप्रत्यक्ष रूप से उसकी रुचि का विषय बन गया था। यह क्यों? शायद इसलिये कि अभिभाविका के शब्द चुनौती के रूप में उसने ग्रहण किये। अभिभाविका के स्वर में उसने प्रताड़ना महसूस की। उस प्रताड़ना का प्रति-उत्तर अपने स्वाभिमान को रक्षा के लिये वह आवश्यक समझता था।

मृणाल भाषण समाप्त कर जब अपने कमरे में आ गई तो उत्सुक हो मीनाक्षी की प्रतिक्षा करने लग गई। उसने मीनाक्षी के आते ही प्रश्न किया, 'कैसे लगा तेरे प्रबन्धक को मेरा भाषण?'

मीनाक्षी को जोर की हंसी छूट गई। बोली 'आज तो महाशय खिसिया गये। रोना सा मुंह बना रखा था। कल अपना भाषण समाप्त करने पर तुम्हारी प्रतिक्रिया जानना चाहते थे, पर अब पता लग गया होगा कि अभिभाविका किस मिट्टी की बनी हुई है।'

मृणाल मुस्कराकर सोचती रही। धीमे स्वर में फिर पूछने लगी

'और भी क्या मेरे सम्बन्ध में बातें करते हैं ?'

मीनाक्षी शरारत भरी मुस्कान में बोली, 'जब कभी तुम उनके सामने से गुजरती हो, उनकी मुग्ध दृष्टि तुम्हारा पीछा करती है।'

मृणाल के कपोल लाल हो गये। लजाकर उसने गर्दन झुका ली और मुस्कराती हुई बोली, 'चल बेशर्म। तुझे तो नित्य मजाक सूझता है।'

मीनाक्षी पूर्व मुस्कान के साथ बोली, 'सच ही कह रही हूं। आज जब तुम मंच पर आई तो पीछे से उसकी मुग्ध दृष्टि तुम पर ही टिकी रही।'

मृणाल कृत्रिम क्रोध प्रकट करती हुई बोली, 'अच्छा छोड़ इन बातों को। यह बता कि वह, विवाहित तो होंगे ही, पत्नी को क्यों नही बुला लेते ? शायद कोई बाल बच्चा भी हो।'

मीनाक्षी ने मुंह चढ़ाया और बोली, 'उस दिन जब पहले २ इन्हें तुम्हारे समक्ष लाई तब तो तुमने मुझे फटकार दिया और आज मेरी ही जिज्ञासा को लिये बैठी हो ?'

मृणाल मुस्कराकर बोली, 'पगली ! शुरु २ में ऐसा प्रश्न अशिष्ट और असामयिक लगता है। अब तो वह परिवार के से सदस्य हैं। इतना भी परिचय न हो तो कुछ भी बात न हुई।'

मीनाक्षी बोली, 'अच्छा दीदी ! जरूर पूछुंगी। भगवान करे अविवाहित हों' कहते हुए हँस पड़ी।

मृणाल ने उसकी कटाक्ष भरी हंसी लक्ष्य की तो लज्जा से टूक २ हो गई। मीनाक्षी जाने लगी तो वह बोली, 'और देखो, वह दिन रात परिश्रम करते रहते हैं। तुमने भोजन आदि की व्यवस्था तो उत्तम की हुई है न ?'

मीनाक्षी बोली, 'व्यवस्था मैं क्या करूंगी, प्रबन्ध तो स्वयँ उनके हाथ में है। मुझे नहीं मालूम कि कैसा भोजन करते हैं। हां रहने का

ढंग बड़ा सादा है।'

'तो भोजन आदि की व्यवस्था की जिम्मेदारी आज से तुम्हारे सिर पर रखती हूँ। कमरे की भी तुम देखभाल कर लिया करना।'

मीनाक्षी चली गई तो मृणाल दोनों हाथों से मुँह छिपाकर औंधी लेट गई। एक अजीब गुदगुदी उसके अन्दर समाई हुई थी।

दूसरे दिन सुबह जब मीनाक्षी आई तो मृणाल फिर तत्काल ही पूछ बैठी, 'कुछ बातें हुई उनसे ?'

और समय होता तो मीनाक्षी मृणाल की व्यग्रता पर फिर व्यंग्य कसती, पर इस समय वह आतुर मुंह बनाकर बोली, 'उन्हें तो कल रात से ही ज्वर है। शय्या पर लेटे हुए हैं।'

'ज्वर है' ? कम्पित स्वर में मृणाल बोली।

'हां और सारी रात अकेले करहाते रहे। इस समय जा कर कुछ फल आदि की व्यवस्था की है। दूध पीने को भी मना कर रहे थे, पर जबरदस्ती एक गिलास पिला आई हूँ।'

मृणाल घबराई हुई सुनती जा रही थी।

मीनाक्षी बोली, 'कमरे की हालत देखती तो दंग रह जाती। शायद महाशय ने तो कभी झाड़ू ही नहीं दिया। सब सामान अस्त-व्यस्त पड़ा हुआ था।'

'बिस्तर आदि देखे तुमने ?' मृणाल चिन्तित और परेशान सी बोल 'खाक देखा। एक कम्बल और दरी के अतिरिक्त कुछ और हो, तभी तो।'

मृणाल झल्लाई और बोली, 'तो तू यहाँ मेरा मूँह क्या देख रही है ?' कहते हुए उसने तत्काल एक विशाल सा सन्दूक खोला और उसके अन्दर बन्द कपड़ों को फेंकती हुई एक गलीचा, एक उमदा दरी रजाई और एक रुई का गद्दा निकाल कर बोली, 'यह लो और अभी बिछा दो उनके कमरे में।'

मीनाक्षी अचम्भित सी मृणाल को देखती रही, पर फ़िर जाने लगी

तो मृणाल ने उसे टोक दिया, बोली, 'यह चद्दरें भी लेती जा। रोज बदल दिया कर।'

मीनाक्षी चली गई तो मृणाल ने तत्काल कोचवान को बुलाया और बोली, 'जाओ, देहरादून से डाक्टर को बुला लाओ। जल्दी ही लौटने की कोशिश करना।'

महिम को सचमुच ही बड़ा तेज ज्वर था और साथ में सिरदर्द।

मीनाक्षी दत्त चित हो उसकी टहल में लगी रही। पर मृणाल उस पर क्रोधित हो उठी।

उसने एक छात्रा को बुलाया और बोली, 'जरा देखना, मीनाक्षी क्या झक मार रही है जो इतनी देर से अभी वापिस नहीं आई।'

वह लड़की चली गई और थोड़ी देर में वापिस आकर बोली, 'बाबूजी को बड़ा तेज ज्वर है। वह सिर में गीले कपड़े की पट्टी रखती जा रही है। सारा कमरा भरा पड़ा है छात्राओं से। क्या मीनाक्षी देवी को बुला लाऊं?'

मृणाल हड़बड़ाती हुई बोली, 'नहीं २, मीनाक्षी को वहीं रहने दो। पर तुम जाकर फिर खबर लाओ कि अब ज्वर में कुछ कमी हुई है या नहीं?'

वह छात्रा बोली, 'मां जी! अभी २ एकमिनट भी तो नहीं हुआ। इतनी सी देर में ज्वर क्या कम होगा?'

'हां, कहती तो तुम ठीक हो। अच्छा थोड़ी देर में पता देना।'

'जी, अच्छा' कहती हुई वह छात्रा मृणाल को घूरती हुई चली गई।

मृणाल बेचैन और उद्विग्न सी चहलकदमी करती रही। उसकी इच्छा हुई कि वह स्वयं महिम के कमरे में जा कर उसे देख आये पर उसके कदम आगे नहीं बढे।

उसने एक और छात्रा को बुला भेजा और उसके आने पर बोली 'देख तो आओ कि बाबू की तबीयत कैसी है?'

महिम को छात्रायें 'बाबू' कह कर सँबोधित करती थीं और मृणाल को 'देवी' या 'मां' कह कर।

वह छात्रा भी चली गई, पर वापिस वह नहीं स्वयं मीनाक्षी आई और बोली, 'दीदी ! इतना भी घबराना क्या हुआ कि मिनट २ बाद तुम छात्राओं को भेज रही हो। प्रबन्धक स्वयं तुम्हारी बेचैनी पर मुस्करा रहे थे।'

'मुस्करा रहे थे ? क्या कहते थे ?'

'कहना क्या है, सोचते होंगे कि अभिभाविका का दिल कितना कोमल है।'

'तो क्या उन्हें पता चल गया कि छात्राओं को मैं ही भेज रही थी ?'

'तो क्या तुम समझती हो कि वह बच्चे हैं जो इतना भी न समझें ?'

'फिर क्या सोचते होंगे ?' मृणाल के कण्ठ से धीमी आवाज निकली।

'वही, जो तुम सोच रही हो।' मीनाक्षी उल्लसित हो बोली।

मृणाल अचानक होश में आती हुई सी बोली, 'बकवास बन्द कर, मीनाक्षी ! उनकी तबीयत खराब है। मेरी जरा सी सहानुभूति का तुम दूसरा ही अर्थ लगा रही हो।'

मीनाक्षी अन्दर से हंस पड़ी पर प्रत्यक्ष में सरल भाव से बोली, 'तो मैं जाऊं ?'

'हाँ, ऐसे समय में जो कुछ भी बन पड़े, टहल करना हमारा कर्तव्य है।'

मीनाक्षी जाने लगी तो उसके मुंह से हंसी छूट गई।

मृणाल ने उसकी हंसी लक्ष्य की तो आंखें चढ़ाती हुई बोली, 'ढीठ कहीं की !'

शाम को कोचवान के साथ देहरादून से डाक्टर भी आ गया और महिम की परीक्षा कर गया।

मृणाल के पास आकर बोला, 'थोड़ी ठण्ड लग गई है, इसी से ज्वर हो आया है। अब वह ५-७ दिन विश्राम करें, पूर्ण स्वस्थ हो जायेंगे।'

डाक्टर के चले जाने पर मृणाल निश्चिन्त हुई।

अगले दिन उसने महिम के कमरे में एक पलंग भी बिछवा दिया।

जब महिम स्वस्थ हुआ तो मीनाक्षी से बोला, 'वास्तव में तुम्हारी अभिभाविका को समझना आसान नहीं। बाहर से चट्टान की भांति कठोर है पर अन्दर से मोम की तरह पिघलने वाली है। मेरा दुर्भाग्य तो देखो कि मैं उनके संबंध में अभी तक कुछ भी नहीं जान सका।'

मीनाक्षी बोली, 'और शायद आगे भी कुछ नहीं जान सकेंगे।'

'ये क्यों भला ?'

'क्योंकि आप भी तो अभी तक रहस्य के पुतले बने हुए हैं।'

महिम बोला, 'मेरा अपना कोई रहस्य नहीं है, भाग्य रहस्यमय अवश्य रहा है। आप केवल इतना ही जान लीजिए कि जीवन में पहली बार मुझे वास्तविक शान्ति की अनुभूति हो रही है।'

मीनाक्षी पहले तो चुप रही पर फिर सोचती हुई बोली, 'यह जान कर तो हमारा खुश होना स्वाभाविक है। पर भाग्य को रहस्यमय बता कर आपने हमारी उत्सुकता को भी साथ ही साथ जागृत किया है। यदि आप इसे अशिष्टता न समझें तो मैं उस रहस्य के उद्घाटन करने की हठ अवश्य करूंगी।'

महिम प्रफुल्लित सा हो कर कुछ बोलने जा रहा था पर फिर रुक गया।

मीनाक्षी ने उसके संकोच को लक्ष्य किया और मुस्कराती हुई बोली, 'आपका संकोच उचित ही है, क्योंकि अभी हमारे इतने भाग्य कहां कि आपकी आत्मीयता प्राप्त कर सकें।'

'अरे नहीं,' महिम तत्काल बोला, 'मैं तो पहले ही बता चुका हूँ कि जिन मधुर क्षणों का संचय मैं यहां कर पा रहा हूं, वे क्षण मेरे जीवन में अभी तक कभी नहीं आने पाये। यह आप लोगों की सहानुभूति और सौहार्द के कारण ही तो है। वास्तव में आज तक का मेरा जीवन एक परीक्षण मात्र रहा है। मेरे सभी परीक्षण निष्फल हुए हैं और यही असफलता आखिर मुझे उद्विग्न और अशांत बना कर यहाँ ले आई। आप शायद और अधिक स्पष्टीकरण चाहेंगी ?'

'नहीं !' मीनाक्षी बोली, 'मैं समझ गई हूँ। आपके बालबच्चे हैं ?'

'मैं संसार में अकेला हूं।'

मीनाक्षी ने सुना तो उसकी इच्छा हुई कि दौड़ कर वह मृणाल को बता दे, पर महिम ने उसे रोक दिया। बोला, 'देखिये—ये बातें तो हुई। पर मैं एक बात और कहना चाहता हूँ। मैं समझता हूँ कि निकेतन में जो अनुष्ठान चल रहा, है वह अपने वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा। यहां जितनी भी छात्राएँ हैं। सभी पथ भ्रष्ट और नारकीय जीवन व्यतीत करती रही हैं, आज उन्हें यहां प्रशिक्षण मिल रहा है। सम्भवतः वह जीवन यापन करने के योग्य बन जाये।, पर वह परिवार का सफल संचालन कर सकें, इसका कैसे विश्वास हो ?'

मीनाक्षी पहले तो सोचती रही पर फिर बोली, 'निकेतन के कार्य-क्रम और लक्ष्य के संबन्ध में तो दीदी ही बोल सकती हैं, तथापि जितना मैं उन्हें समझ सकी हूँ, उसी आधार पर आपकी शंकाओं का समाधान करूंगी। दीदी का मत है कि ये बेचारी नरक में सड़ती रहीं, केवल इसी लिए कि उनके पास कोई हुनर अथवा कौशल नहीं था, जिससे कि वे अपनी जीविका कमा सकतीं। घर घर में परिस्थितियाँ अलग होती हैं। ऐसी विषम परिस्थितियों में जबकि स्त्री आश्रय से वंचित हो जाती है, उसके लिए और कोई मार्ग नहीं रह जाता, सिवाय इसके

कि वह अपने सतीत्व का व्यापार करे। क्यों न फिर स्त्री जाति को अवलम्बन दिया जाय, ताकि वह पराश्रित न रहकर विषम परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता प्राप्त कर सके। बस यही मूल धारणा है, जिससे प्रेरित होकर यहाँ इन छात्राओं को हुनर सिखाया जा रहा।'

महिम ने सुना तो कुछ देर सोचता रहा।

वह फिर बोला, 'मेरा तुम्हारी दीदी से एक प्रश्न है और वह यह कि जितना भी व्यभिचार आज समाज में व्याप्त है, उसका कारण क्या एक मात्र स्त्री जाति में अवलम्बन का न होना है ? यदि यही बात है तो व्यभिचार को केवल वहीं तक सीमित रहना चाहिए था जहां भूख और गरीबी है। यह इतना व्यापक पैमाने पर क्यों है ?'

मृणाल ने हंसते हुते मीनाक्षी के गालों की चुटकी भरी और बोली, 'बड़ी पैनी मार करना सीख गई है ? अच्छा, बता तो, क्या कहते हैं, तेरे प्रबन्धक मेरे विषय में ?'

'तुम्हारी उदारता की भूरी भूरी प्रशंसा कर रहे थे। कहते थे कि तुम्हारा दिल नम्र है—मोम के समान द्रवित होने वाला।'

मृणाल अन्दर से तरंगित हो उठी पर अन्दर के भावों को छुपाती हुई मज़ाक के ही ढंग पर बोली, 'बस फिसल गया इतने ही पर ?'

'उसका दोष नहीं है, दीदी! फिसलन ही तेज है' मीनाक्षी ने कटाक्ष किया और मुस्करा पड़ी।

'वैश्यायें सौ में से शायद ७५ ऐसी होती हैं जिन्हें भूख के उपचार के लिये ही यह जीवन अपनाना पड़ता है।'

'सही है, पर आप केवल उन वैश्याओं की बात कर रही हैं जिन्हें इस नाम से सम्बोधित किया जाता है, पर जो वैश्या न होते हुये भी वैश्यावृति करती हैं, उनके संबंध में आपकी क्या धारणा है ?'

मीनाक्षी महिम का मुख देखने लगी।

महिम बोलता गया, 'वैश्या नाम से पुकारी जाने वाली स्त्रियों की

संख्या तो बड़ी सीमित है। बड़े से बड़े शहरों में हजार दो हजार या इससे कुछ ही अधिक होगी। पर जो बिना वैश्या बने व्यभिचार करती हैं, उनकी संख्या का अनुमान इससे कहीं अधिक है। आखिर इस महामारी का ठोस उपचार क्या हैं?' प्रश्न वैश्याओं का नहीं, बल्कि वैश्यावृति के उन्मूलन का है। वैश्याओं को तो कानून द्वारा भी समाप्त किया जा सकता है पर कानून से वैश्यावृति समाप्त हो सकेगी, यह संदिग्ध है।'

मीनाक्षी धीमे स्वर में बोली, 'तो आपका विचार है कि अवलम्बन कोई महत्व नहीं रखता है ?'

'ऐसा मैं नहीं कह सकता, पर अवलम्बन से अधिक महत्व है संस्कारों का। चारित्रिक उत्थान नेक संस्कारों पर निर्भर करता हैं। हमें इन छात्राओं में नेक संस्कारों का सूत्रपात करना होगा, अन्यथा ये स्वावलम्बी होकर भी वैश्यायें ही बनी रहेंगी।'

मीनाक्षी महिम की बातों से बड़ी प्रभावित हुई। वह सोचने लगी कि प्रबन्धक के बिचार मनोवैज्ञानिक और अनुसन्धानयुक्त हैं। मृणाल उन्हें यदि स्वीकार नहीं करती, तो यह उसकी हठ है।

वह तुरन्त मृणाल के पास आई और बोली, 'दीदी, तुमने उस दिन संध्या गोष्टी में प्रबन्धक के विचारों की खिल्ली उड़ाकर अच्छा नहीं किया। यदि उन्हें समझने का प्रयत्न करो तो तुम्हें आभास होगा कि उनके विचारों में समस्या का सही निचोड़ भरा पड़ा है। मालूम पड़ता है, उन्होंने इस विषय मैं पर्याप्त अध्ययन भी किया है।'

मृणाल मीनाक्षी के यूं प्रभावित होकर बात करने के ढंगपर हंस दी। खिलवाड़ करती हुई बोली, 'लगता है, आज तुझे तेरे प्रबन्धक ने कुछ रिश्वत खिला कर भेजा है ?'

'में दलाली नहीं करती जो तुम मुझ पर यह अभियोग लगा सको। वह बेचारा तो स्वयं तुम्हारे सम्पर्क के लिये ललायित है।'

मृणाल को मीनाक्षी के शब्द बड़े प्रिय लगे। उसने लजाकर दोनों हथेलियों से अपना मूंह ढांप लिया और मीनाक्षी के साथ स्वयं भी हंस पड़ी।

मीनाक्षी प्रोत्साहित हो बोली, 'एक बात और सुनाऊँ। वह संसार में अकेला है, और शायद संताप में जला भुना भी, वरना बातें करते समय यूं लम्बी २ सांसें न लेता।'

'तूने पूछा था क्या ?'

'तुमने पुछवाया जो था।'

'चल, निर्लज्ज कहीं की।' मृणाल की आंखों में अनुराग और मुंह पर कृत्रिम क्रोध था। दोनों की नजरें फिर एक दूसरे से जा टकराई और दोनों खिलखिला कर हंस पड़ी।

मीनाक्षी फिर गम्भीर हो कर बोली, 'लेकिन दीदी ! उन्हें तुम्हारे उस दिन के भाषण से कुछ दुःख ही हुआ है। वह संस्कार पर जोर देते हैं, अवलम्बन को उतना महत्त्व नहीं देते।'

'क्या कहते हैं ? मृणाल उत्सुक हो गम्भीर स्वर में बोली।'

मीनाक्षी ने महिम के विचार मृणाल के समक्ष रख दिये।

मृणाल की मुखाकृति गम्भीर हो उठी। वह बोली, 'उनका कथन आँशिक रूप में सत्य है पर उससे समस्या का समाधान नहीं होता। चरित्र संस्कारों से बनता है, यह मैं मानती हूँ। पर संस्कारों का भी तो निर्माण किसी चीज से होता होगा। जन्म से ही तो कोई बुरे संस्कार ग्रहण किये इस दुनियां में नहीं आता। विषम वातावरण अच्छे या बुरे संस्कारों का सूत्रपात करता है। उनसे तुमने पूछना था कि वातावरण की विषमता का उत्तरदायित्व किस पर है ?'

मीनाक्षी हत्प्रभ हो गई। अभी २ कुछ देर पूर्व जिस विश्वास को लेकर वह आई थी, मृणाल के प्रश्न ने उसको हिला दिया। प्रबन्धक

ने जो निचोड़ उसके सामने रखा था, उस निचोड़ में कहीं भी मृणाल के प्रश्न का उत्तर उसे नहीं मिला।

मृणाल फिर बोली, 'व्यभिचार के दो रूप हैं और दोनों का संबन्ध पेट से है। एक भूखा पेट जो मजबूर हो व्यभिचार को अपनाता है और दूसरा अति भरा पेट, जो हल्का होने के लिए व्यभिचार को माध्यम बनाता है। एक का नाम मजबूरी है और दूसरे का नाम ऐश्वर्य। हमारी बातों का संबन्ध केवल मजबूरी से है और मजबूरी का संबन्ध है विषम वातावरण से।'

मृणाल बोलती गई, 'कौन माता पिता नहीं चाहेंगे कि उनके बच्चे उचित संस्कार ग्रहण करें? पर संस्कार मुंह मांगी वस्तु तो नहीं कि चाह करने पर ही प्राप्त हो जाये। संस्कारों का संबन्ध जीवन स्तर से है—अच्छी संगति, अच्छी शिक्षा और उचित संरक्षण। एक भूखा परिवार अपने बच्चों को यह सब कुछ प्रदान नहीं कर सकता, बल्कि पेट की भूख अपने उपचार के लिए उदण्ड हो जो कुछ न करवा सके, वह करवा डालती है। फिर नेक संस्कार कहां से लायें? नेक संस्कार और नेक चरित्र के लिए आवश्यक है कि मनुष्य और विशेष कर स्त्री जो अबला है, मजबूरी से मुक्त हो सके। मजबूरी की दासता उन्हें उठने नहीं देगी—उन्हें कभी भी आत्म चिन्तन का अवसर प्रदान नहीं करेगी। हमें अपनी छात्राओं में यह मजबूरी हटानी है, उन्हें स्वावलम्बी बनाना है, वरना कितने ही नेक संस्कार उनके अन्दर विद्यमान क्यों न हों, मजबूरी उन्हें फिर वेश्या वृति अपनाने का खतरा पैदा कर देगी।'

मृणाल मीनाक्षी को झकोरती हुई बोली, 'तू समझी है या नहीं?'

मीनाक्षी फटी फटी आँखों से मृणाल को देखती हुई बोली,—

'मैं कुछ नही समझी, दीदी! तुम्हारा और प्रबन्धक का यदि इसी

प्रकार तर्क सुनती रही तो किसी दिन पागल हो जाऊँगी। जिसको सुनती हूँ, उसी की बातें घर कर जाती हैं। कुछ देर पूर्व सोचती थी कि प्रबन्धक की विचारधारा सही है। अब लगता है कि तुम्हारा तर्क अधिक ठोस है।'

मृणाल बोली, 'तू उनसे जा कर कह दे, कि वे छात्राओं पर अपने आदर्शों का परीक्षण न करें, बल्कि अभिभावक बन कर उनके वास्तविक हितों को देखें। सम्भव है, व्यवहारिक अनुभव उनके विचारों में परिवर्तन ला सकें।'

मीनाक्षी बोली, 'छात्राओं का हित तो वे आरम्भ से ही देखते आ रहे है।'

'मेरा तात्पर्य उतरदायित्व की सीमा से है। वह उन कर्तव्य और भावनाओं का आदर करें जो एक अभिभाविक से उपेक्षित हैं। वह मेरा स्थान ग्रहण करें।'

मीनाक्षी को थोड़ा आश्चर्य हुआ। बोली, 'आ गई न वही बात, जिसका सँकेत मैंने पहले भी किया था कि तुम उन्हें इतना चढ़ाओगी—इतना चढ़ाओगी कि वह मालिक बन बैठेंगे और तुम शनैः २ पृथक होती जाओगी।'

'अच्छा यही सही,' मृणाल बोली, 'अब कुछ ही दिनों में जिस छात्रा का ब्याह होने वाला है, तुम्हारे प्रबन्धक को उसका अभिभावक बनना पड़ेगा। इस बात की सूचना उनको दे दो।'

'और तुम ?'

'नहीं, वही उपयुक्त रहेंगे। इसमें हानि ही क्या है ?' मृणाल बोली।

मृणाल के इस निर्णय से निकेतन में एक विशेष चर्चा चल पड़ी। छात्राओं की धारणा थी कि पहले संध्या गोष्ठियों में 'बाबू' को सम्मिलित कर और फिर शनै २ उन्हें अभिभावक के पद पर प्रतिष्ठित कर

शायद 'देवी' निकेतन से संबन्ध तोड़ती जा रही हैं।

महिम समझता था कि अभिभाविका उसे प्रतिष्ठा दे कर परोक्ष में उसके ऊपर अपना आदर्श थोपना चाहती थी। वह समझता था कि उसे परास्त करने को ही अभिभाविका ने यह शिष्ट नीति अपनाई थी। विचार परिवर्तन का वह मार्ग उसे अद्‌भुत सा लगा और साथ ही इससे उसे अभिभाविका की विलक्षण प्रतिभा का भी आभास हो गया।

ब्याह का दिन समीप आता जा रहा था। महिम की कुण्ठा बढ़ती जा रही थी कि वह अभिभाविका के उस अद्‌भुत निमन्त्रण को स्वीकार करे या ठुकरा दे। स्वीकृती का अर्थ था सिद्धान्तों की पराजय और अस्वीकृती के मायने हो सकते थे विद्रोह।

उसे मालूम हुआ कि उक्त छात्रा के ब्याह में सम्मिलित होने देहरादून से दीवान महिधर भी आ रहे थे। वह पूर्व भी प्रत्येक ऐसे ब्याह में सम्मिलित होते आये थे। आचार्य भी आशीर्वाद देने निकेतन में आते रहे थे। उसे ग्लानि महसूस हुई। वह सोचता था कि उसकी पत्नी मंजु भी तो दीवान महिधर द्वारा स्थापित विद्यालय की छात्रा थी—आचार्य की ही शिष्या। यदि पता चल गया कि मंजु का पति ही अभिभाविक के पद पर प्रतिष्ठित ब्याह की रस्म अदा कर रहा है तो क्या उत्पात नहीं खड़ा होगा ?

उसके अन्दर एक भयंकर तूफान उठ खड़ा हुआ। उसे अपना दूसरा भय उतना भारी नही लगा जितना अपने चिर पोषित विचारों के प्रति-कूल आचरण करने में। अभिभावक बनने में उसकी केवल हंसी होगी। अब यदि अवलम्बन ही महत्वपूर्ण था तो क्यों उसने मुन्नवर का परित्याग किया था ? मुन्नवर के अन्दर चाहे संस्कार न रहे हों पर प्यार तो था। संस्कारों की वेदी पर वह तो उस प्यार को कुरबान कर गया था। अब यदि वह संस्कारों की उपेक्षा करे, तो कि मुंह से ? अभिभावक बनना जीवन में उसकी सबसे बड़ी पराजय होगी और वह किसी भी स्थिति में

अपनी पराजय स्वीकार नहीं करेगा चाहे ऐसा करने में वह कितना ही अशिष्ट क्यों न समझा जाए।

फिर उसे याद हो आया कि सम्भवतः मनोहर भी तो दीवान साहब के साथ ब्याह के अवसर पर उपस्थित हो सकता था। फिर क्या होगा? सोचते २ महिम उद्विग्न हो उठा। पर वह किसी निर्णय पर न पहुंच सका।

ब्याह को केवल तीन दिन रह गये। निकेतन में तैयारियां जोरों पर थी, जैसे कि पिता के घर बेटी के ब्याह की तैयारियां की जाती हैं। निकेतन एक बड़े परिवार के मानिंद चहल-पहल से गूंजने लगा। सब कार्य में व्यस्त थे, केवल महिम ही बेचैन और परेशान था।

आखिर वह सोचता हुआ एक दिन मृणाल से भेंट करने उसके कमरे के बाहर पहुँच गया। इससे पूर्व कभी अकेले में महिम ने मृणाल से भेंट नहीं की थी। बल्कि मीनाक्षी के साथ भी वह इने गिने मौकों पर ही मृणाल से मिला था।

आज यूं अकेले बाहर बराण्डे में महिम को खड़ा देखकर मृणाल दंग रह गई। हड़बड़ा कर उसने अपने वस्त्र ठीक किये और सिर पर साड़ी का लम्बा सा आंचल कर सोचने लगी कि क्या करे, अथवा कैसे महिम से उसके आने का कारण पूछे। मीनाक्षी साथ में नहीं थी, इस बात पर उसे पहले तो दुःख हुआ पर फिर उसने महसूस किया कि यूं महिम से अकेले में मिलने के लिये भी तो वह अन्दर से तड़पती चली आ रही थी। अच्छा ही हुआ कि आज मीनाक्षी साथ में नहीं थी।

उसने अपने आप पर काबू किया और द्वार के समीप एक ओर खड़ी हो सयंत स्वर में बोली, 'कैसे कष्ट किया?'

महिम बिना किसी भूमिका बाँधे कमरे के बाहर बराण्डे में खड़ा २ बोला, 'मैं आपसे क्षमा याचना करने आया हूँ। आपने जो मुझे प्रतिष्ठा दी है, वह मुझे स्वीकार नहीं।'

'क्यों ?' धीमा और कंपित स्वर मृणाल के कण्ठ से निकला।

'इसके पीछे मेरी कई मजबूरियाँ छिपी हैं, क्या बताऊं ? चाहता तो था कि कभी उन पर से परदा न उठाऊं पर स्थिति इतनी गम्भीर हो उठी है कि कोई उपाय नहीं सूझता, सिवाय इसके कि जिस भेद को आज तक छुपाता रहा, उसे आप पर प्रकट कर दूं। आपने केवल विश्वास पर ही मेरी नियुक्ति की थी, मैं भी विश्वास पर ही; आप से... केवल आपसे अपना भेद बता रहा हूं।'

महिम चुप हो गया। शायद वह मृणाल से कुछ पूछे जाने की अपेक्षा करने लगा। पर मृणाल तो आंखें मूंद ऐसी खड़ी थी मानो अपनी चेतना खो बैठी हो—चुपचाप बुत की भाँति। केवल आँखों की कोर में आंसू छलक आये थे। उससे कुछ न बोला गया।

आखिर महिम ही फिर बोला, 'दीवान महिधर का दत्तक पुत्र मनोहर एक बहुत ही उच्छृंखल और पथ-भ्रष्ट युवक है। मैं उससे घृणा करता हूँ।'

मृणाल ने सुना तो लगा कि जैसे उसे करन्ट सा लग गया हो। उसके नेत्र चमक उठे, वह आँचल हटा कर महिम की ओर देखने को ही हुई थी कि फिर उसे होश आ गया और पहले ही की तरह आंचल किये बोली, 'कैसे ?'

'उसके मेरी पत्नी के साथ अनुचित सम्बन्ध हैं। वह व्याह में भी शायद सम्मिलित हो। मैं उसे देखना भी पसन्द नहीं करता—उसके रहते हुए अभिभावक की भूमिका अदा करना तो दूसरीबात है !'

मृणाल ने सुना तो उसे लगा कि मानो सैंकड़ों घंटे बाजों के स्वर से उसके कानों के पर्दे फट गये हों। उसका आश्चर्य चरम सीमा पर पहुँच गया। घृणा और क्रोध में उसके होंट दाँतों में आ गये। वह बोली, 'आप अपना कर्त्तव्य निभाते जाइयेगा। उसकी चिन्ता न करें।'

महिम बोला, 'लेकिन मेरा स्वाभिमान कैसे आज्ञा देगा कि एक कर्मचारी के रूप में उसके समक्ष खड़ा रह सकूं ?'

मृणाल दृढ स्वर में बोली, 'दीवान महिधर निकेतन के संस्थापक हैं पर उन्हें भी निकेतन में उतना सम्मान प्राप्त नहीं जितना कि आप को है। उनके दत्तक पुत्र की तो बात ही छोड़ दीजिये। आप क्यों भूल जाते हैं कि आप अभिभावक हैं ?'

महिम को आगे तत्काल और कोई प्रश्न नहीं सूझा। वह कुछ देर सोचता हुआ चुप रहा फिर सकुचाता हुआ बोला, 'लेकिन......मेरा मतभेद भी है।'

'वह समाप्त हो जायेगा।' मृणाल ने तत्काल उत्तर दिया मानो वह महिम से ऐसे प्रसंग की पहले ही आशा लगाये बैठी थी।

महिम फिर निरुत्तर हो गया। पर उसे अभिमाविका के उत्तर से सन्तोष नहीं हुआ।

वह रुक कर बोला, 'मेरा संस्था के आदर्शों में विश्वास भी तो नहीं है। अभिमावक बनना फिर क्या छल नहीं होगा ?'

मृणाल इस बार कुछ सोचने लग गई। धीमे स्वर में फिर बोली, 'सामंजस्य की गुंजाइश सर्वत्र रही है, यदि दृष्टिकोण तनिक उदार और व्यापक बन सके। आप हठ का परित्याग कर दीजिये।'

महिम तड़प उठा। कण्ठ में दर्द भर कर बोला, 'यह हठ नहीं बल्कि मेरे जीवन से जुड़ी हुई विचारों की एक ऐसी कड़ी है जिसे यदि मैं तोड़ बैठा तो न मालूम कितने जीवन मेरे पश्चाताप में ही गुजर जायें। आप से क्या-क्या बताऊं। कलेजे पर इतना बड़ा दाग है कि यदि दिखाऊं, तो आप भी क्षोभ में कराह उठेंगी।'

मृणाल ने महिम के शब्द सुने तो लगा कि मानो उसे मूर्छा आने वाली थी। दीवार का सहारा ले कर वह चुपचाप सुनती गई।

महिम बोलता गया 'पत्नी' शब्द से यदि प्यार ध्वनित होता है तो

मेरी पत्नी एक वैश्या थी, जिसे मैं मंझधार में छोड़ चला। कारण सिर्फ यही था कि उसके अन्दर परिवार में रहने वाली बहु बेटियों के जैसे संस्कार नहीं थे। सद्चरित्र होते हुए भी वह मुझे वैश्या लगी और मैंने उसका परित्याग कर दिया। आज तक मैं मन ही मन उसी सन्ताप में झुलसता आया हूँ। अब यदि वैश्याओं को यूं मान दे बैठा तो उस बेचारी का मुझ पर क्या श्राप नहीं पड़ेगा ?' कहते २ महिम का कंठ भर आया और वह चुप हो गया।

मृणाल की आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो चली थी। वह महिम से छुप कर उन्हें पोंछ रही थी पर जितना वह अपने पर नियंत्रण रखने का प्रयत्न करती, उतनी ही जोर से उसकी बरसों से एकत्रित पीर बाहर निकल पड़ती।

मृणाल को मौन पाकर महिम चला गया।

तीसरे दिन निकेतन विद्युत की जगमग रोशनी में नहा उठा। छात्रा को पत्नी रूप में ग्रहण करने के लिए आधुनिक विचारधारा का एक सम्पन्न परिवार से सम्बन्धित युवक अपने कुछ रिश्तेदारों और मित्रों सहित निकेतन में पहुँच गया। उसका व्यक्तित्व प्रभावशाली था। रूप रंग उत्तम और बातचीत करने का ढंग भी सरल और स्पष्ट था। छात्रायें उस लड़की के भाग्य की दुहाई देने लगी जिस लड़की का ब्याह था और साथ ही 'देवी' की प्रशंसा भी, जिन्होंने यह संबंध तय किया था।

पास ही के विद्यालय से आचार्य और फिर देहरादून से दीवान महिधर भी अपने दत्तक पुत्र मनोहर के साथ पहुंच गये।

ब्याह शुद्ध वैदिक रीति से हो रहा था। आंगन के मध्य में बेदी—उसके चारों ओर केले के पौधे और वही सब कुछ था, जो होता है। जब दीवान महिधर पहुंचे तो वर-वधु के गोत्रों का उच्चारण हो रहा था।

आचार्य मृणाल को संबोधित करते हुए बोले, 'तुम वधु के पास

बैठ जाओ और कन्या दान करो।'

मृणाल आंचल किए समीप ही खड़ी थी, बोली, 'यह भूमिका मैंने किसी और को दे दी है, आचार्य !—अपने नव-नियुक्त प्रबन्धक को।'

दीवान महिधर, आचार्य और मनोहर को कुछ आश्चर्य हुआ !

आचार्य बोले, 'यह क्यों ?'

'यह मेरा चयन है, आचार्य !' मृणाल ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

'तो फिर कहां है, प्रबन्धक ?' दीवान महिधर बोले।

मृणाल ने चारों ओर दृष्ठि दौड़ाई, पर महिम दिखाई नहीं दिया। मीनाक्षी को बुला कर बोली, 'कहां हैं वे ?'

मीनाक्षी ठगी २ सी इधर उधर देखती रही, पर जब कहीं महिम दिखाई नहीं दिया तो वह उसके कमरे की ओर दौड़ पड़ी।

मृणाल व्याकुल सी दिखाई दी। आँचल के अन्दर से ही उसकी दृष्टि मनोहर पर पड़ी जो उसी की ओर देख रहा था पर सम्भवतः उसे पहचान नहीं पाया क्योंकि मृणाल नित्य आंचल किये रहती थी। सिवाय दीवान महिधर और आचार्य के, निकेतन के बाहर का कोई व्यक्ति उसे पहचान नहीं पाया था।

मीनाक्षी ने जब महिम को अपने कमरे में लेटा हुआ पाया तो वह झुंझला कर बोली, 'आप भी कमाल करते हैं। आंगन में गोत्रोच्चारण हो रहा है और आप यहां दुबके बैठे हैं? जैसे ब्याह में आपका कोई योग ही न हो।'

'मेरा कोई योग नहीं, मीनाक्षी देवी ! मैं अभिभावक नहीं बनूंगा।' महिम का नपा तुला उत्तर था।

मीनाक्षी हैरान हो गई, बोली, 'यह क्या कह रहे हैं आप ? नीचे आप की प्रतीक्षा हो रही है। सारे लोग आ गए हैं। आचार्य, दीवान साहब—सभी।'

'मेरा निश्चय अटल है, मीनाक्षी देवी !'

मीनाक्षी घबरा गई, बोली, ' यह आप दीदी को बता दीजिएगा। भगवान् के लिए मेरे साथ नीचे तो चले चलो। ब्याह मण्डप तक जाने में क्या बुराई है ?'

महिम मीनाक्षी के आग्रह पर व्याह मण्डप में चला आया। सबकी नजरें उसकी ओर घूम उठीं।

महिम और मनोहर ने एक दूसरे को देखा तो पल भर उनकी नजर लड़ी और अलग हो गई।

महिम शांत और स्थिर रहा पर मनोहर आश्चर्य में डूब गया... घोर आश्चर्य में। आचार्य और दीवान साहब की दृष्टि महिम पर टिक गई।

महिम ने उन्हें नमस्कार किया तो आचार्य बोले, 'आप ने आने में विलम्ब कर दिया। शायद अभिभावक के कर्त्तव्यों से अवगत नहीं हुए अभी ?'

महिम बोला, 'इसकी अभी आवश्यकता ही नहीं पड़ी, वरना कर्त्तव्य--विमुख होना मैं पाप समझता हूं।'

महिम के उत्तर को सुन कर सभी एक बार उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगे। मीनाक्षी मृणाल के कान में बोली, 'आज अचानक इनको यह क्या हो गया ?' मृणाल ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह स्थिति की गम्भीरता से अवगत थी।

आचार्य महिम को संबोधित करते हुए बोले, 'क्या इनके उत्तर में अनुशासन के प्रति विद्रोह की चिनगारियां तो नहीं हैं, बेटी ?'

मृणाल आँचल के अन्दर से ही बोली, 'अनुशासन के प्रति तो नहीं, आचार्य ! पर आदर्शों के प्रति विद्रोह कर बैठे हैं...निकेतन के आदर्शों के प्रति। सम्भव है अपनी भूल महसूस करें.........।'

मृणाल अपना वाक्य भी समाप्त न कर पाई थी कि महिम सचमुच विद्रोह के स्वर में बोल उठा 'भूल होती तो प्रायश्चित करता, पर यह

भूल नहीं, अपितु विश्वास है कि वैश्याओं को ब्याह करने का तब तक कोई अधिकार नहीं, जब तक कि वे पत्नी के संस्कार नहीं अपना लेतीं। निकेतन की छात्रायें मेरी पुत्री के समान हैं। मैं अपनी पुत्रियों को उचित संस्कार देने से पूर्व ससुराल भेजना सहन नही कर सकूंगा क्योंकि मुझे भय है कि बिना संस्कारों के, सफल दाम्पत्य जीवन उनके लिए एक स्वप्न ही रहेगा.........उनके फिर उसी धुरी पर लौट आने की पूर्ण सम्भावना बनी रहेगी, जिस धुरी से वह चली थीं।'

महिम के शब्दों ने सभा मण्डप में एक बम का सा विस्फोट पैदा कर दिया। विषाद का धुआं सबके चेहरों पर मंडराने लगा। मृणाल विचार मग्न दिखाई दी और दीवान महिधर गम्भीर और शान्त मनोहर को भृकुटि तन उठी थी। और आचार्य ?

आचार्य प्रत्युत्तर देते हुए गरज उठे, बोले, 'निकेतन की मेरी इन पुत्रियों में अपनी आन और मर्यादा को अक्षुण्ण रखने की क्षमता भरी पड़ी है। संस्कारों की दुहाई देने वालों ने यदि उन पर आघात किया तो वह कटी हुई टहनी की भांति मुरझा कर गिर नहीं पड़ेगी। उन की अपनी जडें हैं। वे फिर भी खड़ी रहेंगी और अपना मार्ग प्रशस्त करेंगी। धुरी पर आने की अपेक्षा— वह प्रतिघात करेंगी।'

'बिना संस्कारों के क्या कभी उनके अन्दर स्थिरता आ सकेगी ?' महिम पूर्व जोश में बोला।

'वह इतनी भी अस्थिर न रहेंगी जितनी कि बेचारी वे लड़कियां होती हैं, जिन को अवलम्बन प्राप्त नहीं। निकेतन का एक ही लक्ष्य है और वह यह कि उसकी पुत्रियाँ परालम्बी बन कर ससुराल न जायें, क्यों कि किसी भी समय वे आश्रय से वँचित होने पर फिर कल्पनातीत नारकीय जीवन अपनाने को वाध्य हो सकती हैं, चाहे उनके अन्दर कितने ही गहरे संस्कार क्यों न पड़े हों !'

'यह संदिग्ध विश्वास है—बिल्कुल गलत धारणा। सीता सावित्री

की जीवनी इस धारणा को निर्मूल सिद्ध करती है।'

आचार्य अपने पर नियन्त्रण न रख सके। होटों को चबाते हुए बोले, 'वर्तमान के प्रति आँख मूंद कर भूत को देखने वाला व्यक्ति केवल अपने रूप से डरता है। व्याह के समय ऐसी दलीलें सामयिक भी नहीं समझी जाती।'

महिम आचार्य की फटकार सुन कर कुछ ऐंठ सा गया।

दीवान महिधर बोले, 'आपको निकेतन के आदर्शों में विश्वास नहीं है ?'

'बिल्कुल नहीं' महिम अपनी हठ पर दृढ़ रहा।

'तो फिर आप जा सकते हैं।'

मण्डप में खलबली मच गई। छात्राओं में कानाफूसी चल पड़ा। सब अपने २ विश्वास व्यक्त कर रहे थे।

महिम चल पड़ा। धीमे २ पग बढाता हुआ चिन्तनशील मुद्रा में... —कि तभी उसने देखा कि अभिभाविका रास्ता रोके खड़ी थी। मुख को उसी प्रकार आँचल में छुपाये हुए वह गिड़ गिडाती हुई बोली, 'आप नहीं जा सकते, वरना यह आपकी तीसरी महान भूल होगी।'

फिर आचार्य की ओर मुड़ कर वह बोली, 'आदर्शों में सामंजस्य की भी तो गुंजाइश होती है, आचार्य ! वरना वह जड़ न कहलायेंगे क्या ? काल और समय के अनुसार उनमें भी संशोधन आवश्यक है।'

महिम की हठ से जो लोगों को आश्चर्य हुआ उससे भी अधिक आश्चर्य उनको मृणाल के इस नये रुख से हुआ।

आचार्य विस्मय में बोले, 'यह मत तुम प्रतिपादित कर रही हो बेटी ?'

मृणाल दीन किन्तु गम्भीर स्वर में बोली, 'आप के लिये यह सिद्धान्तों की बिवेचना हो सकती है, आचार्य ! पर मेरे कथन में अनुभूतियों का निष्कर्ष है। यह सच है कि अवलम्बन के न होने पर

अबला पतोन्मुख होती है पर यह भी उतना ही सच है कि संस्कारों का अभाव भी नारी के रूप को निकृष्ट ही रहने देता है। मेरे कथन की पुष्टी कीजिये, आचार्य !'

आचार्य आवाक हो चले। मण्डप में फिर खामोशी छा गई।

पर मनोहर ने वह खामोशी तोड़ दी। मृणाल को संबोधित करता हुआ बोला, 'जानती हो तुम कि पिता जीं ने पूर्व ही निर्णय दे दिया है। फिर यह सिफारिश क्यों ?'

और फिर महिम को आज्ञा के स्वर में बोला, 'तुम ठहर क्यों गये ? जल्दी से चले जाओ।'

मनोहर को उत्तर मिला पर महिम से नहीं, मृणाल से। वह क्रोधित स्वर में बोली, 'जाना तो होगा पर उन्हें नहीं —तुम्हें–इसी समय—तुरन्त। यह अभिभाविका की आज्ञा है।'

वातावरण उत्तेजित हो उठा

मनोहर अपमान से झुलस उठा। बोला, 'मैं चला जाउं ? तुम कौन होती हो आज्ञा देने वाली ?'

मृणाल अपना सन्तुलन खो बैठी। मुख का आंचल हटा कर बोली, 'पहचान लो।'

'ओह भगवान ! मुन्नबर ?' महिम के होंठ बुदबुदाये। उसकी आंखें चमक उठी।

'मृणाल ? मनोहर के होठों में भी कम्पन हुआ। उसने तुरन्त आत्मग्लानी से सिर नीचा कर लिया।

मृणाल यूं अपना भेद खुल जाने पर हकबका गई। क्रोधित और विभ्रान्त सी वह वहां खड़ी न रह सकी और दौड़ कर अपने कमरे में चली गई। आचार्य दीवान का मुंह देखने लगे।

सब ऐसा अनुभव करने लगे कि जैसा अभी तक कोई नाटक अभिनीत किया जाता रहा हो और वह नाटक मानो सहसा 'क्लाइमैक्स' पर

पहुँच कर समाप्त हो गया ।

दीवान कुछ चेतन हुए और महिम के पास आकर बोले,' आप का नाम क्या महिम है ?'

महिम अभी तक पागल सा होश खोये खड़ा था। दीवान साहब के उत्तर में उसने गर्दन हिला कर 'हाँ' भर दी ।

दीवान महिधर महिम की ओर इशारा कर, आचार्य से बोले, 'इन्हें आराम करने दीजिए । ब्याह हम सम्पन्न करा लेते हैं ।'

सारा जन समूह फिर मण्डप में एकत्रित होने लगा । मनोहर न मालूम कब वहां से खिसक गया—किधर गया, यह भी किसी को पता न था । महिम अपने पूर्व स्थान पर खड़ा सोचता जा रहा था कि तभी मीनाक्षी पास आई और बोली, 'चलिए जीजा जी ! अपने कमरे में विश्राम करें । दीदी की तो नहीं, पर दीवान साहब की यही आज्ञा है ।' उसके मुंह पर वही शरारत थी, जिससे वह महिम को चिढ़ाती थी और महिम हस पड़ता था पर इस समय महिम बिना किसी प्रतिक्रिया के चल पड़ा जैसे रस्सी से बन्धी हुई गाय पीछे २ चल पड़ती है ।

१४

दूसरे दिन भोर होते ही जब सूर्य की किरणें खिड़की से प्रवेश कर मृणाल के कमरे में पड़ने लगी, तो द्वार पर किसी ने दस्तक दी। मृणाल ने द्वार खोला तो देखा कि महिम खड़ा था। उसका हृदय धड़कने लगा, देह कम्पायमान हो उठी और आंखों के सामने लगा कि मानो पृथ्वी घूम रही हो।

महिम धीमे २ पग बढ़ाता हुआ उसके समीप चला आया था।

वह सिमिट कर एक कोने में खड़ी हो गई।

महिम बोला, 'मैं अपने पापों का प्रायश्चित करने जा रहा हूँ। यदि क्षमा कर सको तो मैं शान्त हृदय ले कर चला जाऊंगा।'

मृणाल के कण्ठ में आवाज नहीं थी। वह पहले तो गतिशून्य रही पर फिर धीमे से मुड़ी और उसके हाथ महिम के चरणों की ओर बढ़े।

महिम उसे उठाता हुआ बोला, 'यह क्या कर रही हो? मैं तो रास्ते की धूल हूँ जिस पर सबके चरण पड़ते रहे। मेरे चरणों के स्पर्ष से किसी का उत्सर्ग सम्भव नहीं।'

मृणाल के मुख पर नव विवाहित वधु की सी लज्जा और संकोच जमा हो गया था। उसके नेत्र उठे और एक झलक महिम की ले कर

फिर पलकों के अन्दर समा गये। उसके कण्ठ से एक बारीक मधुर स्वर निकला 'मुझे चरण रज नहीं लेने दी; क्या इसीलिए कि संस्कारों के अभाव में उस रज से अपनी माँग भरने का मुझे अधिकार प्राप्त नहीं है ?'

'तुम संस्कारों से इतना ऊपर उठ गई हो कि तुम्हारा स्थान अब चरणों में न हो कर, सिर पर है।' महिम विरक्त स्वर में बोला। मृणाल कुछ उत्तर देती, पर पूर्व उसके, बाहर बराण्डे में किसी के पैरों की आहट सुनाई दी।

महिम और मृणाल कुछ थोड़ा अलग जा खड़े हुए।

दीवान महिधर कमरे में प्रवेश कर बोले, 'एक संस्कार और दूसरा अवलम्बन। तुम दोनों इन दो आदर्शों के प्रतीक हो और निकेतन वह महान अनुष्ठान का क्षेत्र है जहाँ इन दो आदर्शों का समन्वय हुआ है। तुम दोनों के विधि पूर्वक संयोग के लिए आचार्य ब्याह मण्डप में प्रतीक्षा कर रहे हैं। शीघ्रता करो।'

मृणाल और महिम लज्जा से नत्मस्तक हो गये।

महिम और मृणाल के मण्डप में पहुंचने पर आचार्य ने वैदिक रीति से उनको विवाह सूत्र में एक किया और आशीर्वाद देते हुए महिम से बोले, 'मृणाल निकेतन का संचालन करती ही आ रही है, तुम मेरे विद्यालय की देख भाल करना। मेरा कर्त्तव्य समाप्त हो चुका।'

मृणाल और महिम आचार्य के शब्दों को सुन कर चकित रह गये। वे कुछ न समझ पाये। पूर्व कि कुछ पूछत, आचार्य वहां से चले गये और वे विभ्रान्त हो एक दूसरे को देखते ही रह गये। खिन्न मन ले कर वह मृणाल के कमरे में आये तो मीनाक्षी को रोता हुआ देख कर अनिष्ठ की आशंका से कांप उठे।

'क्या बात है, मीनाक्षी ?' मृणाल घबराई हुई बोली।

'मीनाक्षी ने उत्तर देने की अपेक्षा मृणाल को एक पत्र दे दिया।

मृणाल पत्र पढ़ने लगी ।

'मृणाल, मेरी बच्ची......!'

'तुम्हें मेरे और फिर आचार्य के यूं अकस्मात लोप हो जाने का दुःख होगा पर तुम्हें क्या पता कि महिम के हाथों तुम्हें सौंप कर हम जीवित ही मोक्ष पा गये । तुम्हें अपना भेद छुपाये रखने का बड़ा अभिमान रहा है पर तुम्हें क्या पता कि इससे भी बड़े भेद छुपाये जा सकते हैं जैसे कि मैंने किया । तुम्हें ३–४ वर्ष तक अपने कलेजे से चिपकाये रखने पर भी यह पता न लगने दिया कि मैं ही तुम्हारा अभागा पिता हूँ जो तुमसे और तुम्हारी मां से बिछुड़ जाने पर जीवन भर सन्ताप में जलता रहा । आचार्य का विद्यालय और तुम्हारा निकेतन-मेरे प्रायश्चित के ही रूप हैं । अब मेरा प्रायश्चित समाप्त हो गया, अतः सन्यास ले रहा हूँ । मेरी सम्पत्ति के अब तुम और महिम ही एक मात्र स्वामी हो ।'

तुम्हारा पिता
महिधर ।

पत्र समाप्त होने पर मृणाल महिम की ओर लपकी मानो सहारा ढूंडने लगी हो । महिम ने उसे छाती से लगा लिया । संध्या को गोष्टी में सम्मिलित होने जब दोनों आंगन में पहुँचे तो मृणाल बोली, 'न मालूम, पिता जी और आचार्य, इस समय कहां होंगे । यदि पता चल जाय तो तत्काल ही उन्हें वापिस ले आऊं ।'

लेकिन महिम के पास मृणाल के प्रश्न का कोई उत्तर न था । इस प्रश्न का यदि कोई उत्तर दे सकते थे, तो वे थे मनोहर और मां, जिन्होंने उसी शाम आचार्य और दीवान साहब को भगवा वेश में हरिद्वार के स्टेशन पर देखा था, पर जो उनकी नजर बचा कर बम्बई एक्सप्रेस में जा बैठे थे ।

उात